

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कूर्मपुराण

—:॥:—

कूर्मपुराण की ब्राह्मीसंहिता मात्र पुराणप्रेमी विद्वद्बर्ग की सेवा में गुरुमण्डलग्रन्थमाला के २२वें पुष्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। पुराण गणना क्रम में यह १५ वां महापुराण आता है।

कूर्मपुराण के प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण बृहन्नारदीय पुराण में इस प्रकार किया गया है :—

ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! आज कूर्म नामक पुराण का संक्षिप्त तथा विषय जो लक्ष्मी कल्पानुसार हुआ है सुनो:—इसमें कूर्म वपु भगवान् ने धर्मार्थ काम मोक्ष का पृथक् पृथक् माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से कृपाधिक्य द्वारा ऋषियों को सुनाया। यह मङ्गलमय पुराण १७००० श्लोकों का एवं ४ चार संहिताओं से युक्त है।

इसकी ब्राह्मी संहिता में (जो प्रस्तुत है) नानाविधधर्मों का विविध कथाओं के प्रसङ्ग से वर्णन किया गया है और वे सब अवश्य ही मनुष्यों को सुदृगति देने वाले हैं।

पूर्वभागमें :—

पूर्व विभाग में प्राचीन काल में पुराणों के उपक्रम लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का सम्वाद कूर्मरूप भगवान् विष्णु और ऋषियों का सम्वाद वर्णाश्रम की आचार संहिता सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन संक्षेप से काल परिसंख्या एवं

मुद्रक --

सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोटी
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद
सूनु. श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्मालये

गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स

नामके

स्थातम् :- ८७१ए, राजा दिनेन्द्र स्त्रीट,
कलकत्ता—६

है। तीसरी सौरी संहिता (अनुपलब्ध) है यह सम्पूर्ण मनुष्यों का इष्ट सम्पादन करने वाली छै प्रकार की कर्मसिद्धि को छै तरह से कामी (काम प्रधान लोगों) को बोधन करती है।

चतुर्थी संहिता (अनुपलब्ध) वैष्णवी है जो मोक्ष देने वाली कही जाती हैं। यह भी चारपादों में है द्विज आदि के लिये साक्षात् ही ब्रह्मस्वरूपिणी है ये क्रमशः ६ हजार ४ हजार और दो हजार श्लोकों में विभक्त है।

फलश्रुति:—

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाले कूर्म पुराण को जो लोग इन्हें पढते या सुनते हैं सभी को उत्कृष्ट गति प्रदान करता है।

जो व्यक्ति इसे अचिखल भक्तिपूर्वक लिखकर सोने की कूर्म प्रतिमा बनाकर अयनादि विशेषपर्व पर योग्य ब्राह्मण को देता है वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होगा।

इस प्रकार हमें उपलब्ध कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता हा मिली है इसे सम्पूर्ण रूप से अचिकल छपाने की आवश्यकता आ बनी है, क्योंकि १७ हजार के विशाल ग्रन्थ में केवल एक तिहाई की ही उपलब्धि हुई है। बहुत ग्रन्थ भाण्डारों के अधिकारी वर्ग से सर्वत्र ही इस विषय में विशेषतया सानु-रोध पत्राचार करने पर भी विशेष सफलता अवतक नहीं मिली है। सभी विद्वद्बर्ग से इस अपूर्व ज्ञान भण्डार को प्रयत्न पूर्वक जनता के हित से प्रकाशित करने के लिये इस एवं अभीतक प्रकाशित अन्य पुराणों की सम्पूर्ण प्रति के प्राप्त्यर्थ सादर निवेदन है। यह पुराण पूर्णरूपेण नाना उपादेय विषयों से जन मन का विशेष कल्याण कर उन्हें "सर्वभूतहितैरताः" बनाये यही हार्दिक कामना है। ग्रन्थ की आदर्शप्रति बङ्गवासी प्रेस, और एशियाटिक सोसाइटी में छपे कूर्म पुराण है। भविष्य में सभी गुरुमण्डल में प्रकाशित पुराण ग्रन्थों

[ख]

लय के अन्तमें विभु परमात्मा का स्तवन है। इसके बाद सक्षेप से सर्ग का निरूपण, शङ्करजी का शरित्व एव पार्वती के सहस्रनाम के साथ योग का प्रतिपादन है। भृगुवश के समाख्यान के बाद स्यायम्भुव का वर्णन है देवगण आदि की उत्पत्ति व दक्षयज्ञ का विध्यस फिर दक्ष सृष्टि की कथा और तत्पश्चात् कश्यपवश का वर्णन श्री कृष्ण को शुभ आश्रेय वश का कथन है। महर्षि मार्कण्डेय और कृष्ण का सम्वाद, व्यास पाण्डवों का परस्परसम्वाद युगधर्म का निरूपण, व्यास जैमिनि का सम्वाद, धाराणसी एव प्रयाग का माहात्म्य उसके बाद त्रैलोक्य वर्णन तथा वेद की शाखा का निरूपण है।

उत्तरभाग में :—

इसके उत्तर भाग में सर्वप्रथम गीतेश्वरों ईश्वरगीता व्यास गीता कही गई है जो विविध धर्मों का प्रमोदन कराती है। तत्र नाना तीर्थों का पृथक् माहात्म्य है। यह ब्राह्मी संहिता का वर्णित विषय है। इसके बाद निरूपण में भागवती संहिता का निरूपण जिसमें वर्णों की पृथक् वृत्ति का प्रतिपादन है। पाचपादों में भागवती संहिता का (अनुपलब्ध) विभाग है।

हे वत्स! इसके प्रथम पाद में सदाधारत्मक भोग और सौम्य को बढ़ानेवाने वाली ब्राह्मणों की व्यवस्थिति कही गई है। द्वितीय में क्षत्रियों की वृत्ति का वर्णन है, जिस पालन कर पापों को दूरकर स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। तृतीय में वैश्यजाति की चार प्रकार की वृत्ति बतलाई गई है जिसे पालन कर मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर लेता है। इसके चतुर्थ पाद में शूद्रवृत्ति का प्रतिपादन है। धर्माभ्यास हरि जो सबलोगों के ही ध्येय को बढ़ाने हैं इसके पालन से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके पञ्चम पाद में सङ्कर जातियों की वृत्ति बतलाई गई है जिससे भार्या जन्मों में प्राणी को जाना होता है। इस प्रकार पञ्चपादी (पाच पादों वाली) भागवती संहिता बतलाई गई

है। तीसरी सौरी संहिता (अनुपलब्ध) है यह सम्पूर्ण मनुष्यों का इष्ट सम्पादन करने वाली छै प्रकार की कर्मसिद्धि को छै तरह से कामी (काम प्रधान लोगों) को बोधन करती है ।

चतुर्थी संहिता (अनुपलब्ध) वैष्णवी है जो मोक्ष देने वाली कही जाती हैं। यह भी चारपादों में है द्विज आदि के लिये साक्षात् ही ब्रह्मस्वरूपिणी है ये क्रमशः ६ हजार ४ हजार और दो हजार श्लोकों में विभक्त है ।

फलश्रुति:—

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाले कूर्म पुराण को जो लोग इन्हें पढते या सुनते हैं सभी को उत्कृष्ट गति प्रदान करता है ।

जो व्यक्ति इसे अविचल भक्तिपूर्वक लिखकर सोने की कूर्म प्रतिमा बनाकर अयनादि विशेषपर्व पर योग्य ब्राह्मण को देता है वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होगा ।

इस प्रकार हमें उपलब्ध कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता हा मिली है इसे सम्पूर्ण रूप से अचिकल छपाने की आवश्यकता आ बनी है, क्योंकि १७ हजार के विशाल ग्रन्थ में केवल एक तिहाई की ही उपलब्धि हुई है। बहुत ग्रन्थ भाण्डारों के अधिकारी वर्ग से सर्वत्र ही इस विषय में विशेषतया सानु-रोध पत्राचार करने पर भी विशेष सफलता अवतक नहीं मिली है। सभी विद्वद्गर्ग से इस अपूर्व ज्ञान भण्डार को प्रयत्न पूर्वक जनता के हित से प्रकाशित करने के लिये इस एवं अभीतक प्रकाशित अन्य पुराणों की सम्पूर्ण प्रति के प्राप्त्यर्थ सादर निवेदन है। यह पुराण पूर्णरूपेण नाना उपादेय विषयों से जन मन का विशेष कल्याण कर उन्हें "सर्वभूतहितैरताः" बनाये यही हार्दिक कामना है। ग्रन्थ की आदर्शप्रति बङ्गवासी प्रेस, और एशियाटिक सोसाइटी में छपे कूर्म पुराण हैं। भविष्य में सभी गुरुमण्डल में प्रकाशित पुराण ग्रन्थों

[४]

को भयने वहाँ उपलब्ध प्रामाणिक दस्तलिखित ग्रन्थों से तुलना कर जो विद्वान् मेरा मार्ग प्रदर्शन कर अधिक प्रथम पाठ लिख भेजने की कृपा करने उन्हें परिशिष्ट रूप से छपाकर सादरता मित्रि की सेवा करूँगा। आगे जिन महापुराणों को छपवाना है उनके लिये विशिष्ट छातप्य गृहना भेजने यात्रे विद्वद्गण का मैं आभार मानूँगा।

इस ग्रन्थ की अरशिष्ट तीन संहिता, भागवती सौरी और वैष्णवी जिन महानुभावों के पास हों कृपाकर मुझे पत्र द्वारा गृहना दें उनकी सुविधा के अरुरूप ही इन संहिताओं का प्रतिलिपीकरण कर छपवाने का विद्वान् आग्रह जन किया जायगा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन उत्साहपराशीलता में श्रीपिभनाथजी शास्त्री के सदृशसे नरदुर्गनिवासि श्री रामनाथजी दाधीच पुराण साङ्गण स्मृतिनीय साहित्य शास्त्री व सम्पादकत्व में हुआ है तदर्थ यह धन्यवादाहं है अम प्रभादादिपरा समागत दुष्टियों के लिये सशोधन करने की प्रार्थना है।

शुभमिति द्वितीय श्लेष शुक्ल
१. पुष्यवार
२०१८ विजयसप्तम्यन्त

{ मनसुखराय मीर
५. कृष्ण रो,
कच्छता -१

कूर्मपुराण की विवेचना

पुराणेधर्मनिर्णयः (पद्मपुराणम्)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणों का एक विशिष्टस्थान है, वेद, और स्मृति के अनन्तर पुराणों काही प्रमाणरूपसे आस्तिकजनग्रहण करते हैं। इनमें वेदार्थ का स्पष्टीकरण तो है ही, साथसाथ कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सिद्धान्त अतिसरल भाषा एवं अनेक कथाओंके द्वारा समझाये गये हैं। जिनको पढ़ने सुननेसे साधारण बुद्धि का मनुष्यभी वेदों एवं उपनिषदों में वर्णित जटिलतम सिद्धान्त समझकर अपने आवरणों में ला सकता है।

उपनिषदों के पदार्थों को सुननेसे पढालिखामनुष्य भी जवयहमालूम करता है किब्रह्मतत्त्व-भगवान्-देश, काल, और वस्तुभेदों के परे बुद्धि एवं इन्द्रियों से अतीत अपने स्वतः सिद्धस्वरूपमें स्थित है, तब कुछ निराश एवं भययुक्त हो जाता है कि जो हमारे चित्तवृत्तियों के आकलन से सर्वथा अतीत है, उसकी उपासना और स्मरण कैसेकरें, उसे हम अपने हृदयमन्दिर में लाकर कैसे स्थिर करें। मनुष्य की इस विवशताको भगवान् व्यासजीने भली-भाँति अनुभव किया और भगवान् की दयाका साक्षात् अनुभव कर सब प्राणिमात्रका हित हो इसबुद्धि से परमेश्वरकी सर्वव्यापकता, एवं सर्वात्मताके यथार्थ स्वरूपको देश, काल और वस्तुओं के भीतर अपने हृदय में भी स्थापित करनेका अर्थात् अनुभव करने का अति सरल मार्ग पुराणों द्वारा प्रदर्शित किया जिसका आश्रय लेकर गरीब, अमीर समर्थ, असमर्थ, अन्ध, पङ्गु, सभी परमेश्वरकी दयाके पात्र हो सकते हैं। श्री व्यासजी की इस पुराणरूपी कृति को देखकर कृतज्ञता के भारसे मस्तक स्वयं ही उनके चरणों में झुक जाता है।

पुराणों में जो साधन प्रदर्शित किये हैं, उनमें अनेक तीर्थों, व्रतों, पूजा-अर्चनादिकों एवं अनेक पवित्र वस्तुओंका वर्णन किया है। दृढनिश्चय और श्रद्धा से उनमें से अपने योग्य कोई साधन चुनकर अखण्डरूपसे उसका परिशीलन करने से अत्यन्तपापीभी पुण्यात्मा, हिंसक अहिंसाशील, इन्द्रियों का दास, इन्द्रियों को वशी करनेवाला एवं चञ्चलचित्त स्थिर बुद्धिहोकर अन्तमें परमेश्वर की दया का पात्र हो जाता है।

पुराणों के अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सभ्यता, सस्कृति एवं सदाचारको सर्वसाधारण जनता में प्रचार का ध्येय इन्हीं पुराणों को है । प्रत्युत इस समय वेदों और स्मृतियों की अपेक्षा वेदों के अविरोधि पौराणिक धर्मका ही अधिक प्रचार है, अतएव वेदों के यद्यार्थ अभ्यास में पुराणों का अति महत्त्व है । अतएव पुराणों का यह सिद्धान्त है कि :—

इतिहासपुराणान्यां वेद समुपतृ ह्येत् ।

विभेत्पटपभ्रुतावुवेदो मामय प्रहरदिति ॥ अस्तु ।

ऐसे सरल एवं सुलभ पुराणान्वित उपायों का श्रद्धा से श्रवण एवं आचरण करने से परमेश्वर की भक्ति तथा दया द्वारा अरण्य, अनन्त ज्ञानरूप परमगति—मुक्ति—की प्राप्ति होती है, पुराणों का श्रवण भी सदाचारशील, निर्लोक एवं परमेश्वर के भक्त के द्वारा सुनने से शीघ्र फल होता है । पञ्चपुराण में लिखा है :—

साधुसङ्घादु मयेदु विप्र! शास्त्राणा श्रवण सदा ।

हरिमिक्तिर्भवेत्समाप्ततो ज्ञान ततो गति ॥ ब्रह्मसू० ॥ १,६

ज्ञान, कर्म एवं कर्मगत उपासनात्मैर्भी श्रवणत सरल तथा मनुष्यमात्र के लिये सहजआचरणीय ऐसे मन्त्रितत्त्वका विशुद्ध आविष्कार एवं विशुद्ध स्वरूप पुराणों में ही अनेक भक्तों का कथा द्वारा हुआ है । जिसको सुनकर श्रवणत दरिद्र भी केवल श्रद्धासे परमेश्वर का स्मरणकर उसकी कृपाका पात्र हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ।

ऐसे पुराणों का प्रचार और उसमें प्रतिपादित तत्त्वों का आचार केवल सपूर्ण भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी हो जाय तो मनुष्यों में धार्मिकमनुष्यता जागृत होगी और वाजका मानव केवल मानव और प्राणिमात्र में ही नहीं किन्तु वृक्षादिका में भी सत्य तत्त्व का अपने में के समान अनुभव करने लगेगा और सम्प्रति आधुनिक भक्तों के प्रयोग से येतज जड़ के महार का जो विभाषिका श्रद्धा है वह सदा के लिये मिट जायगी ।

इसप्रकारके सत्य एवं जगन्के कल्याणकारा विचारों से प्रेरित होकर विद्वान् एवं पुराणों के प्रमंज्ञ भक्तप्रवर धना एवं सुविचारक कल्पकता निवासी श्री मनसुखराय मोर पुराणों व धर्मशास्त्रकी स्मृतियों का प्रकाशन एवं विद्वानों को चिन्तामूक्य चितरण कर रहे हैं ।

सम्प्रति कूर्म पुराण प्रकाशनके लिये प्रस्तुत है, कूर्मपुराण की चार संहिताओं में से ब्राह्मी संहिता ही इस समय उपलब्ध होती है, और भागवती, सौरी एवं वैष्णवी दुष्प्राप्य हैं। सभी पुराणों की श्लोक संख्या, स्वरूप एवं विषयों का संक्षिप्त वर्णन नारदपुराण में उपलब्ध होता है, उसके अनुसार कूर्म पुराण में ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोकों में तथा पूर्व एवं उत्तरभाग में विभाजित है। भागवती पांच पादों में और ४ हजार श्लोकों से युक्त है। सौरी २ हजार से युक्त तथा वैष्णवी चारपादों से और पांच हजार श्लोकों से युक्त है। नारद पुराणके वर्णनानुसार प्रकाशन के लिये प्रस्तुत कूर्म पुराण की ब्राह्मीसंहिता सर्वांशसे मिलती है। ब्राह्मीसंहिता के ऊपर भाग में ईश्वरगीता है उसपर विज्ञान भिक्षुका भाष्य है, डा० विलसनको जो कूर्मपुराण मिला था उसकी श्लोकसंख्या ६ हजार देखकर एवं अन्यत्र पुराणों में दी हुई १७ या १८ हजार श्लोक संख्या देखकर उन्होंने इसको अमली कूर्मपुराण रूप से ग्रहण नहीं किया, परन्तु नारदपुराण के वर्णनानुसार कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोक वाली उनको मिली थी, और वह संहिता नारदपुराण के अनुसार निश्चित कूर्म पुराण की एवं अतिशुद्ध बर्ती हुई प्रति है। क्योंकि कूर्मपुराण में ही लिखा है:-

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदंश्च सम्मिता ।

भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्रसङ्ख्यया ॥ १,३४

ब्राह्मीसंहिता में कुछ तान्त्रिक विषय आ जाने से कुछ लोक उसको आधुनिक समझने हैं, परन्तु उनका यह मत एकदम गलत है। श्रीशङ्कराचार्यजी के समय ६४ तन्त्र विद्यमान थे। उन्होंने आनन्दलहरी में “चतुःषष्ट्यातन्त्रैः सकलमभिसन्धायभुवनम्” इसप्रकार ६४ तन्त्रों का उल्लेख किया है। एवं ईसा के द्वितीयशतक में पंडा हर नागार्जुन ने अपने कक्षापुटी नामक ग्रन्थ में :-

शाम्भवे यामले शाक्ते मौले कौलेयडामरे ।

स्वच्छन्दे लाकुले शैवे राजतन्त्रेऽमृतेश्वरे ॥ ६ ॥

...

...

...

...

...

...

... ॥ ६ ॥

इत्येतदागमोक्तञ्च षक्त्रात् षक्त्रेण यच्छ्रुतम् ॥

तत्सर्वं तु समुद्भृत्य दध्नो घृतमिवादरात् ॥ १० ॥

इसप्रकार २१-३० तन्त्रों का उल्लेख किया है। इसपुराण में ईश्वर-

गीता और व्यासगीता के 'श्लोक' श्रीशङ्कराचार्यजीने विष्णुसहस्रनाम भाष्य एव सन-सुजातीय भाष्य में प्रमाण रूप से लिये हैं। ईश्वर गीता के ऊपर विज्ञान भिन्नु का भाष्य प्रस्तुत कूर्मपुराण के अन्त में जोड़ दिया गया है। व्यासगीता में प्रायः स्वपूर्ण वर्णाश्रमधर्म का निरूपण हुआ है। और अनेक अपूर्व विषय गृह्यविषय सूची को देखने से ज्ञान हो जायेंगे। अस्तु।

अनेक पुराणों, स्मृतियों और निरुक्तादि ग्रन्थों का अन्वेषण, सम्पादन सुन्दर प्रकाशन और विद्वानों को विना मृत्यु चितरण आदि अनन्य साधारण कार्य श्रीमान् भक्तप्रवर मोर कुलभूषण श्रीमनसुखरायजी करते हुए राष्ट्र का एव परमेश्वर का अतिमहन्व का सेवा कर रहे हैं। इनका यह कार्य और धार्मिकों के लिये निःसशय आदर्शभूत है।

भारतीय विशिष्ट विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि पुराणों का प्रकाशनरूप राष्ट्रीय कार्य निर्लोभ वृत्तिसे लाखों रुपयों का व्यय कर श्रीभक्तप्रवर पुराणज्ञ श्रीमनसुखरायमोरजा कर रहे हैं। अत आदरणीय पण्डित लोग अपने प्रान्तों में अनुपलब्ध असंपूर्ण हस्तलिखित पुराणों एव पुराणों के भागों को खोजकर उसकी सूचना श्रीमोरजी को दें। जिससे वे उसकी प्रतिलिपिकराकर अपने योग्य विद्वान् सम्पादक द्वय श्रीपण्डितवर रामनाथजा मिश्र एव श्रीपण्डितवर ब्रह्मदत्त जीप्रियदीशास्त्री द्वारा सम्पादन एव प्रकाशन करा सकेंगे। अपनेअपने नगर आदि में स्थित लिखित पुराणों के संग्रह का ज्ञान विद्वान् पण्डितों को रहता ही है, अत थोड़ासा समय निकाल कर श्रीमनुसुखराय द्वारा प्रचारित इस राष्ट्रीय कार्य में वे हाथ प्रदा सकत हैं। प्रायः स्वभ्रामान्तों में श्रीमोरजी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ विद्वानों के पास विनामूल पहुँचनेही है। अन्तमें मैं श्रीमनसुखराय मोरजी के इस निर्लोभ राष्ट्रीय कार्यका प्रशंसा कर उनको अनेक धन्यवादा देना हूँ। और उनके पुत्रादि को मैं धर्मप्रेम एव राष्ट्रीय कार्य करने की बुद्धि उत्तरोत्तर बढ़े ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

प० श्रीअनन्त शास्त्री फडके

वाराणसी

सितम्बर २५।१९६१

आश्विनकृष्णा १।२०१८

व्याकरणाचार्य, श्रीमासार्तीय, वेदान्तकेशरी

अध्यक्ष—पुराणेतिहासविभाग

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ कूर्मपुराणान्तर्गतब्राह्मीसंहितायाः

विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते

—:०:—

अध्यायः

विषयः

- १ इन्द्रद्युम्नस्यमोक्षप्राप्तिवर्णनम्
- २ इन्द्रद्युम्नेन कूर्मपुराणश्रवणवर्णनम्
- ३ इन्द्रद्युम्नकृता भगवत्स्तुतिवर्णनम्
- ४ इन्द्रद्युम्नेनैश्वरं तेजःप्रदर्शनवर्णनम्
- ५ चर्णाश्रमधर्मवर्णनम्
- ६ गृहस्थधर्मवर्णनम्
- ७ गृहस्थवानप्रस्थयोर्भेदवर्णनम्
- ८ चर्णाश्रमक्रमवर्णनम्
- ९ प्राकृतसर्गवर्णनम्
- १० कालसङ्ख्याविवरणम्
- ११ पृथिव्युद्धारवर्णनम्

| | | |
|----|--|----|
| ७ | सृष्टिवर्णनम् | २५ |
| " | प्राकृतपैटमसृष्टिवर्णनम् | २५ |
| " | वेदानामुत्पत्तिवर्णनम् | २७ |
| ८ | मुख्यादिसर्गबंधनम् | २८ |
| " | दशकन्यानाम्वशवर्णनम् | २९ |
| ९ | पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनम् | ३० |
| " | ब्रह्मविष्णवोपरम्परमुदत्पत्तेशवर्णनम् | ३१ |
| " | ब्रह्मणाशिवशरणगमनवर्णनम् | ३३ |
| १० | रुद्रसृष्टिवर्णनम् | ३५ |
| " | ब्रह्मरुता शिवस्तुतिवर्णनम् | ३७ |
| " | मरीच्यार्दीनामुत्पत्तिवर्णनम् | ३९ |
| ११ | दिव्यवतारवर्णनम् | ४० |
| १२ | देवीमाहात्म्यवर्णनपूर्वकं देवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम् | ४१ |
| " | ध्रीदेव्याहिमालयायदिव्यदृष्टिप्रदानवर्णनम् | ४३ |
| " | हिमालयवृतदेवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम् | ४५ |
| " | हिमालयवृता देवीस्तुतिवर्णनम् | ५३ |
| " | दिव्यज्ञानोपदेशवर्णनम् | ५५ |
| " | हिमालयेन माहेश्वरयोगविषये प्रार्थनकरणम् | ५७ |
| १३ | दशकन्यानाम्वशवर्णनम् | ५९ |
| १४ | स्वायम्भुवमनुवशवर्णनम् | ६० |
| " | पृथुवशवर्णनम् | ६१ |
| " | सतीदेहत्यागवर्णनम् | ६३ |
| १५ | दशवशविध्यवर्णनम् | ६४ |
| " | दशवशे ब्रह्मणोऽन्तधानवर्णनम् | ६५ |

| | | |
|----|--------------------------------------|-----|
| १५ | दक्षेणशिवशरणगमनम् | ६६ |
| १६ | दक्षकन्यापंद्राघर्षणम् | ७० |
| " | देवान्प्रतिचिष्णुवाक्यवर्णनम् | ७१ |
| " | प्रहादेन चिष्णुप्रभावर्णनम् | ७३ |
| " | गौतमेनपिन्धुः शापदानवर्णनम् | ७५ |
| " | देवगणैःशिवदर्शनायमन्दिरगमनम् | ७७ |
| " | अन्तर्दक्षचरैर्भैरवस्तुतिवर्णनम् | ७६ |
| " | अन्धककृता पार्वतीस्तुतिवर्णनम् | ८१ |
| १७ | त्रिविक्रमचरितवर्णनम् | ८३ |
| " | घमनोत्पत्तिवर्णनम् | ८५ |
| " | वलिना पाताललोकगमनम् | ८७ |
| १८ | कश्यपचंशानुकीर्तनम् | ८८ |
| १९ | ऋषिचंशकथनम् | ८९ |
| २० | राजचंशवर्णनम् | ९१ |
| " | हृयश्चनृपात्यानवर्णनम् | ९३ |
| " | हृयश्चस्यशिवपदप्राप्तिवर्णनम् | ९५ |
| २१ | इक्ष्वाकुचंशवर्णनम् | ९६ |
| " | श्रीरामचरितवर्णनम् | ९७ |
| २२ | सोमचंशवर्णनम् | १०० |
| " | जयध्वजेन चिष्णुप्रशंसनवर्णनम् | १०१ |
| " | चिश्वामित्रेण चिष्णुमाहात्म्यवर्णनम् | १०३ |
| २३ | जयध्वजचंशानुकीर्तनम् | १०५ |
| " | दुर्जयस्य धाराणसीगमनवर्णनम् | १०७ |
| २४ | यदुचंशवर्णनम् | १०८ |

| | | |
|----|---|-----|
| २४ | अन्धकचंशवर्णनम् | १०६ |
| " | श्रीकृष्णजन्मपर्यन्तचंशवर्णनम् | १११ |
| २५ | यदुचंशकीर्तने कृष्णतपश्चरणवर्णनम् | ११३ |
| " | श्रीकृष्णेन शिरस्वरूपदर्शनवर्णनम् | ११५ |
| " | श्रीकृष्णकृता शिवस्तुतिवर्णनम् | ११७ |
| २६ | लिङ्गोत्पत्तिवर्णनम् | ११६ |
| " | श्रीकृष्णसमीपे मार्कण्डेयागमनम् | १२१ |
| " | ब्रह्मविष्णुभ्यां शिवस्तुतिवर्णनम् | १२३ |
| २७ | राजवंशानुकीर्तने श्रीकृष्णस्य स्वधामगमनवर्णनम् | १२५ |
| २८ | पार्थाय व्यामदर्शनवर्णनम् | १२७ |
| २९ | युगवशानुकीर्तनम् | १२७ |
| " | पुष्पफलादीनामुत्पत्तिवर्णनम् | १२६ |
| ३० | व्याम्बानुं नसम्बार्द्धं युगधर्मनिरूपणम् | १३१ |
| " | ऋतुंनेन शिवभक्तिधारणवर्णनम् | १३३ |
| ३१ | घाराणसीमाहान्म्यवर्णनम् | १३५ |
| " | घाराणस्या गङ्गामाहान्म्यवर्णनम् | १३७ |
| ३२ | घाराणसीमाहान्म्ये वृत्तिवासेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम् | १४० |
| ३३ | कपर्दीश्वरमाहान्म्यवर्णनम् | १४२ |
| " | शङ्कुकर्णोपाख्यानवर्णनम् | १४३ |
| " | वतदुपाख्यातफलवर्णनम् | १४५ |
| ३४ | मध्यमेश्वरमाहान्म्यवर्णनम् | १४६ |
| " | मध्यमेश्वरेस्तानादिमहत्त्ववर्णनम् | १४७ |
| ३५ | नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | १४८ |
| " | वार्धत्या व्यामसमीपे प्रादुर्भाववर्णनम् | १४६ |

| | | |
|----|---|-----|
| ३६ | प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् | १५० |
| ३७ | मार्कण्डेयेन युधिष्ठिरम्प्रतिप्रयागमाहात्म्यकथनम् | १५१ |
| ३७ | प्रयागमाहात्म्ये तीर्थयात्राविधिकमवर्णनम् | १५३ |
| ३८ | प्रयागमाहात्म्येऋषमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | १५५ |
| ३९ | प्रयागमाहात्म्ये गङ्गायमुनयोर्माहात्म्यवर्णनम् | १५६ |
| ४० | मार्कण्डेयगमनवर्णनम् | १५७ |
| ४० | भुवनविन्यासप्रकरणवर्णनम् | १५८ |
| ४१ | वर्षाणाम्बर्णनम् | १५९ |
| ४१ | ज्योतिःसन्निवेशवर्णनम् | १६१ |
| ४१ | सूर्यस्यपरमद्रैवत्ववर्णनम् | १६३ |
| ४२ | आदित्यव्यूहवर्णनम् | १६४ |
| ४३ | भुवनकोशवर्णनेग्रहरथवर्णनम् | १६५ |
| ४३ | चन्द्रवर्णनम् | १६७ |
| ४४ | भुवनविन्यासऊर्ध्वाधोलोकानाम्बर्णनम् | १६८ |
| ४४ | शेषाख्यनागवर्णनम् | १६९ |
| ४५ | भुवनकोशे पर्वतादिसङ्ख्यावर्णनम् | १७० |
| ४६ | भुवनविन्यासेलोकपालानां स्थानवर्णनम् | १७२ |
| ४७ | भुवनकोशे केतुमालादिवर्षाणाम्बर्णनम् | १७५ |
| ४७ | भुवनकोशवर्णनम् | १७७ |
| ४८ | जम्बूद्वीपवर्णनम् | १७८ |
| ४९ | भुवनविन्यासवर्णने प्लक्षादिद्वीपानाम्बर्णनम् | १८१ |
| ४९ | शाकद्वीपवर्णनम् | १८३ |
| ५० | पुष्करद्वीपवर्णनम् | १८५ |
| ५१ | मन्वन्तरकीर्त्तनेविष्णुमाहात्म्यवर्णनम् | १८७ |

| | | |
|----|-------------------------------------|-----|
| ५२ | चैत्रशाखाप्रणयनम् | १६० |
| ५३ | धैर्यस्थितेऽन्तरे शिवाद्यतारवर्णनम् | १६२ |
| ५४ | सशिष्ययोगेश्वरवर्णनम् | १६३ |

उत्तरार्द्धम्

ईश्वरगीतामाहात्म्यारम्भः

| | | |
|----|--|-----|
| १ | ऋषिपुत्र्याससम्वादवर्णनम् | १६५ |
| २ | शिवविष्णुसम्वादवर्णनम् | १६७ |
| ३ | ईश्वरेणशुद्धपरमात्मस्वरूपवर्णनपूर्वकयोगवर्णनम् | १६८ |
| ४ | ईश्वरेणप्रवृत्तिपुरणवर्णनम् | २०१ |
| ५ | शिष्यमाहात्म्यवर्णनम् | २०३ |
| ६ | शिवकृत्यवर्णनपूर्वकशिवस्तुतिवर्णनम् | २०५ |
| ७ | मुनिवृत्ता शिवस्तुतिवर्णनम् | २०७ |
| ८ | शिष्यमाहात्म्यवर्णनम् | २०८ |
| ९ | सर्पत्रशिष्यशासनवर्णनम् | २०९ |
| १० | शिष्यविभूतियोगवर्णनम् | २११ |
| ११ | पशुपाराधिमोक्षणवर्णनम् | २१३ |
| १२ | ईश्वरेणससारतरणोपायवर्णनम् | २१४ |
| १३ | निष्कलस्यरूपवर्णनम् | २१५ |
| १४ | शिष्यस्य परब्रह्मस्यरूपवर्णनम् | २१७ |
| १५ | पशुपाराधिमोक्षणयोगवर्णनम् | २१८ |
| १६ | जपविधावर्णनम् | २१९ |
| १७ | ध्यानवर्णनम् | २२१ |
| १८ | ज्ञानिनो शिष्यपद्मानिवर्णनम् | २२३ |

| | | |
|----|---|-----|
| ११ | ईश्वरगीताश्रवणफलवर्णनम् | २२५ |
| | व्यासगीतारम्भः | |
| १२ | कर्मयोगवर्णनम् | २२६ |
| १३ | ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम् | २२७ |
| १४ | सदाचारवर्णनम् | २३० |
| १५ | ब्रह्मरारिधर्मवर्णनम् | २३३ |
| १६ | गायत्रीमहत्त्ववर्णनम् | २३५ |
| १७ | ब्रह्मचारिणां गार्हस्थ्यधर्मवर्णनम् | २३८ |
| १८ | ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणम् | २४१ |
| १९ | भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णनम् | २४६ |
| २० | अभक्ष्यवस्तुनाम्बर्णनम् | २४७ |
| २१ | ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणम् | २४८ |
| २२ | आदित्यहृदयवर्णनम् | २५१ |
| २३ | सन्ध्योपासनवर्णनम् | २५३ |
| २४ | वैश्वदेवप्रकरणवर्णनम् | २५५ |
| २५ | नित्यकर्तव्यकर्मसु भोजनादिप्रकारवर्णनम् | २५६ |
| २६ | श्राद्धमल्पवर्णनम् | २५६ |
| २७ | श्राद्धकल्पवर्णनम् | २६२ |
| २८ | श्राद्धेऽनर्हचिप्राणाम्बर्णनम् | २६३ |
| २९ | श्राद्धकल्पवर्णनम् | २६५ |
| ३० | श्राद्धे ब्राह्मणभोजनवर्णनम् | २६६ |
| ३१ | अशौघकल्पवर्णनम् | २७१ |
| ३२ | अग्निचिपादिभिर्मुतानामशौचवर्णनम् | २७५ |
| ३३ | द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यवर्णनम् | २७७ |

| | | |
|----|---------------------------------------|-----|
| २५ | द्विजादीना वृत्तिवर्णनम् | २७६ |
| २६ | दानधर्मवर्णनम् | २८० |
| " | तिलसुवर्णादिदानमहस्ववर्णनम् | २८१ |
| " | सतिद्रव्ये दानाकरणे दोषवर्णनम् | २८३ |
| २७ | वानप्रस्थाधर्मवर्णनम् | २८५ |
| २८ | यतिधर्मवर्णनम् | २८८ |
| २९ | यतिधर्मवर्णनम् | २९१ |
| ३० | प्रायश्चित्तविधिवर्णनम् | २९३ |
| ३१ | ब्रह्मण कपालस्थापनवर्णनम् | २९५ |
| " | ब्रह्मवृता सोमशिवस्तुतिवर्णनम् | २९७ |
| " | विष्णुना शिवप्रतिवाराणसीगमनायकथनम् | २९९ |
| ३२ | प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम् | ३०१ |
| ३३ | प्रायश्चित्तप्रथमम् | ३०३ |
| ३४ | प्रायश्चित्तवर्णनम् | ३०५ |
| " | सीतावृता भद्रिस्तुतिवर्णनम् | ३११ |
| " | एतच्छ्रवणफलवर्णनम् | ३१३ |
| ३५ | गयादिनाताविध्वर्तीर्धमाहात्म्यवर्णनम् | ३१४ |
| " | कुब्जाधममाहात्म्यवर्णनम् | ३१५ |
| " | मड्डुणकाख्यानवर्णनम् | ३१७ |
| ३६ | रुद्रमोटिकालअरतीर्यवर्णनेकालवधवर्णनम् | ३१८ |
| " | शिवमकरप्रेतवृषाख्यानवर्णनम् | ३१९ |
| ३७ | महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | ३२१ |
| " | द्वैवदाख्यनमाहात्म्यवर्णनम् | ३२३ |
| ३८ | दाख्यनाख्यानवर्णनम् | ३२४ |

| | |
|---|-----|
| ऋषिभिर्ब्रह्मणःसमीपेगमनम् | ३२७ |
| देवदारुवनप्रवेशवर्णनम् | ३२६ |
| देवदेवेन साधनस्यद्वैविध्यवर्णनम् | ३३१ |
| ऋषीणांसमीपे देवीप्रादुर्भाववर्णनम् | ३३३ |
| मार्कण्डेययुधिष्ठिरसम्वादे नर्मदामाहात्म्यवर्णनम् | ३३४ |
| नर्मदामाहात्म्यवर्णनेनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | ३३६ |
| नर्मदामाहात्म्यवर्णनेनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | ३४२ |
| जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम् | ३४५ |
| नन्दीश्वरविवाहप्रसङ्गवर्णनम् | ३४७ |
| विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् | ३४८ |
| चतुर्विधप्रलयवर्णनम् | ३४६ |
| प्रलये मेवानाम्बवर्णनम् | ३५१ |
| प्रतितर्गवर्णनम् | ३५३ |
| सयीजनिर्घोजयोगवर्णनम् | ३५५ |
| एतत्पुराणानुक्रमणिकावर्णनम् | ३५७ |
| कूर्मपुराणपठनश्रवणफलवर्णनम् | ३६१ |

समाप्तैषा कूर्मपुराणान्तर्गत ब्राह्मीसंहितायाविषयानुक्रमणिका

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणी लक्ष्मणदुर्गाभिजन

(लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—

नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुर-

निवासि) रामनाथमिश्रदाधीनौ ।

३

शुभमस्तसताम

प्रथमोऽध्यायः] * इन्द्रद्युम्नेनेकूर्म्मपुराणेऽथर्वणवर्णनेम् * ३

पुराऽमृतार्थदैतेयदानवैः सह देवताः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्म्मरूपी जनार्दनः । चमार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया
देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः । कूर्म्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ॥
तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीनारायणवल्लभा । जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥
तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः । मोहिताः नहश्क्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन् ॥
भगवन् देवदेवेश! नारायणजगन्मय । कैरा देवीविशालाक्षी यथाचद् ब्रह्मिपृच्छताम्
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः ।

प्रोवाच देवीं नमःप्रेक्ष्य नाग्दादानकल्मषान् ॥ ३३ ॥

इयं सा परमाशक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी । मायामम प्रियानन्ता ययेद् ध्याच्यंते जगत्
अनर्थैव जगत्सर्वं सदेवानुरमानुषम् । मोहयामि द्विजश्रेष्ठा त्रसामि विमृजामि च
उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिङ्गतिम् ।

विद्यया वीक्ष्य चाऽऽत्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ॥ ३६ ॥

अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः ।

ब्रह्मेशानादयः सर्व्वे सर्व्वशक्तिरियं मम ॥ ३७ ॥

सैषा सर्व्वजगत्सृतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।

प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्तास्त्रगन्विता । काटिसूर्य्यप्रतीकाशामोहिनीसर्व्वदेहिनाम्
नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च । मायामेतांसमुत्तत्तुं श्रेवान्येभुविदेहिनः
इत्युक्त्वा वासुदेवेनमुनयो विष्णुमब्रुवन् । ब्रूहित्वं पुण्डरीकाक्ष! यद्विकालक्षयेऽपि च
अथोवाचहृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः । अस्तिद्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इतिश्रुत
पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः ।

दृष्ट्वा मां कूर्म्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ॥ ४३ ॥

संहितां मन्मुखादिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् ।

ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥ ४४ ॥

मुनीनांपचनं धृत्या गृत्वा पौराणिकोत्तम । प्रणम्यमनसा प्राह गुरुमत्यघर्तासुतम्
रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम् ।

वश्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ १६ ॥

याश्च शपादश्ममापिगच्छेत्परमांगतिम् । ननास्ति स्वकथांपुण्यामिमांप्रया कदाचन
श्रद्धांताय शान्ताय धार्मिनायद्विजातये । इमांकथामनुश्रूयात्साक्षात्पारायणेरिनाम्
सगच्छ प्रतिमगच्छ वशो मन्यन्तराणि च । वशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्
प्राग्य पुराणं प्रथमं पात्रं वणवमेव च । शैव भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम् ॥१३॥
मारुण्डयमघानेयं ब्रह्मवैवर्तं मय च । लंका तथा च वाराह स्कान्दं धामनमेव च ॥

कूर्मं मांभ्य गारुडञ्च धायर्षीयममन्तरम् ।

अष्टाशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति सञ्ज्ञितम् ॥ १५ ॥

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु । अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा सद्दशेपतो द्विजा
नाय सत्कृत्वागेन नारामिहमतं परम् । तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारैः तु भावितम्
चतुर्थांशं धर्माय साक्षात्प्राशमापितम् । दुर्व्याससोक्तमाध्ययं नारदीयमतं परम्
कापितं वामनञ्चैव तथ्यचोशनसेरितम् । ब्रह्माण्डं वारुणञ्चैव कालिकाह्वयमेव च ॥
महाेश्वर तथासांख्यं सौरं स्याद्यथसञ्ज्ञयम् । पराशरोक्तं मारीच तथैव भार्गवाह्वयम्
इत्यनु पञ्चदश पुराणकूर्ममुत्तमम् । चतुर्धा संस्थितं पुण्यं सहितानां प्रभेदं
ब्राह्मा भागवता सौरा वणवा च प्रकाशिता ।

चतस्रं सहिता पुण्या धम्मकामाद्यमोक्षदा ॥ २२ ॥

एतन् सहिता ब्राह्मी चतुर्व्यद्वैस्तु सम्मिता ।

भरन्ति पत्रं सप्तश्याणि श्लोकानामत्र सङ्ख्याया ॥ २३ ॥

उत्तमप्राणकामाता मायम्य च मुनाश्चरा । माहात्म्यमन्विल्लह्यं ज्ञायते परमेश्वर
सगच्छ प्रतिमगच्छ वशमन्यन्तराणि च । वशानुचरितपुण्यादिव्याप्रासङ्गिकीकथा
ब्राह्मणाग्ररिष्य धाया धार्मिकरुचिदपारग । तामह वणविष्यामिव्यासेन कथितापुरा

पुराऽमृतायै देतेयदानवैः सह देवताः । मन्यान् मन्दरं कृत्वा ममन्धुः क्षीरसागरम् ॥
 मध्यमाने तदा तस्मिन्कूर्मरूपी जनार्दनः । वभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया
 देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः । कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ॥
 तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीनारायणचक्षुभा । जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥
 तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः । मोहिताः सहशक्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन् ॥
 भगवन् देवदेवेश! नारायणजगन्मय । कैवा देवीविशालाक्षी यथाचद् ब्रूहिपृच्छताम्
 श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः ।

प्रोवाच देवी सम्प्रेक्ष्य नाग्दादानकल्मषान् ॥ ३३ ॥

इयं सा परमाशक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी । मायामम प्रियानन्ता ययेदं धाव्यंते जगत्
 अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । मोहयामि द्विजश्रेष्ठा प्रसामि विसृजामि च
 उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिङ्गतिम् ।

विद्यया वीक्ष्य चाऽऽत्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ॥ ३६ ॥

अस्यास्त्वंशानश्रिष्टाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः ।

ब्रह्मेशानादयः सर्व्वं सर्व्वशक्तिरियं मम ॥ ३७ ॥

सैषा सर्व्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।

प्रागेव मत्तः सज्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्तास्त्रगन्विता । काटिसूर्य्यप्रतीकाशामोहिनीसर्व्वदेहिनाम्
 नालं देवान् पितरो मानवा वासवोऽपि च । मायामेतां समुत्तन्तुं येचान्येभुविदेहिनः
 इत्युक्ता वासुदेवेनमुनयो विष्णुमब्रुवन् । ब्रूहित्वं पुण्डरीकाक्ष! यद्विकालक्षयेऽपि च

अथोवाचहृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः । अस्तिद्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इतिश्रुत
 पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः ।

दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ॥ ४३ ॥

संहितां मन्मुखाद्विष्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् ।

ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥ ४४ ॥

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् ।

स्मृत्वा परात्परंविष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६५ ॥

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना । आराध्यद्दृष्ट्रीकेशं प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनम्
ततो बहुतिथे काले गतेनारायणःस्वयम् । प्रादुरासीन्महायोगीपीतवासाजगन्मयः
दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मनमव्ययम् । जानुभ्यामवर्ति गत्वातुष्टावगरुडध्वजम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत! गोविन्द! माधवानन्त! केशव !। कृष्णविष्णोहृषीकेशतुभ्यं विश्वात्मने नमः
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्त्तये । सर्गस्थिति विनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये ॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलाय नमोनमः । पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपाय ते नमः
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये । आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः । भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने । अनन्तमूर्त्तये तुभ्यममूर्त्ताय नमोनमः ॥
नमस्ते परमार्थाय मायार्तीताय ते नमः । नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥
नमोऽस्तु ते सुसुहृद्यमाय महादेवाय ते नमः । नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने
त्वयैतत्सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः । त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम
त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योमनिष्कलम् ।

सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं नमसः परम् ॥ ७८ ॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन वेचलम् । प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
एवं स्तुवन्तं भगवान्भूतात्प्राभूतभावनः । उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्शप्रहसन्निव
स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः । यथावत्परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम् । प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥
त्वत्प्रसादाद्दसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम !। ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम् ॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वैश्वसे । किं करिष्यामि योनेश! तन्मे च द जगन्मय ! ॥
श्रुत्वानारायणोवाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः । उवाच सस्मितं वाक्यमशेषं जगतोहितम्

श्रीभगवानुवाच

घर्णाश्रमाचारवता पुंसां देवो महेश्वरः । ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा
 विज्ञायतत्परंतत्त्वंविभूतिर्कार्यकारणम् । प्रवृत्तिश्चापिमेवान्यामोक्षार्थोऽश्वरमर्चयेत्
 सर्वसंगान्परित्यज्य ज्ञान्या मायामयंजगत् । अहंतं भावयान्मानं द्रश्यसे परमेश्वरम्
 त्रिविधामावनाद्भ्रान्त्योच्यमाना निरोधमे । एकामद्विषयानत्र द्वितीयाव्यक्तसंधया
 अन्याचमावना प्राह्लादविज्ञेया सागुणातिगा । आत्मान्यनमाश्चाथमावनाभावयेदुपुषः
 अशक्तः संधयेदाद्यामिन्येषा र्धदिनी श्रुति । तस्मान्नस्वर्धप्रयत्नेनतन्निष्ठस्तत्परायण-
 समाराधय चिन्तेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।

इन्द्रघ्न उवाच

किन्तत्परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनाद्भूतं ॥ ६२ ॥

किद्विषयं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तपः ।

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तच्च परं प्रप्रेक्षमन्ययम् ॥ ६३ ॥

निन्द्यादन्दमयं ज्योतिरक्षरतमस परम् । ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरितिर्गीयते
 कार्यं जगदध्याव्यक्त कारणं शुद्धमक्षरम् । अहं हि सर्व्यंभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः ॥
 सागन्धिव्यन्तरत्त्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते । एतद्विज्ञाय मायेन यथावदमितं द्विज ! ॥
 ततस्त्वं कर्मयोगतः शाश्वतं सम्यगर्चयेत् ।

इन्द्रघ्न उवाच

के ते घर्णाश्रमाचारा ये समाराध्यते परः ॥ ६४ ॥

आनञ्ज क्रीदरा दिव्यं भावनाश्रयमन्धितम् । कथं सृष्टिमिदं पूर्वं कथं संहियतेपुनः ॥
 कियस्य सृष्ट्योक्तोक्तेषुशा मन्वन्तराणिच । कान्तिनेयां प्रमाणानिपावनात्रियतानिच
 सीर्यान्वकारिसंस्थानं पृथिव्यायामधिस्तरम् ।
 कति ह्रीपासमुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः ॥ १०० ॥
 इति मे पुण्डरीकाक्ष ' यथावदपुनः पुनः ।

श्रीकूर्म्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाऽहं भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ १०१ ॥

यथावदखिलं सम्यगवोचं मुनिपुङ्गवाः ॥ व्याख्यायादोपमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु ॥
अनुगृह्यन्न तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् । सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः
आराधयामासपरं भावपूतः समाहितः । त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्हन्द्वा निष्परिग्रहः
स न्यस्य सर्व्वकर्मणि परं वैराग्यमाश्रितः ।

आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ १०५ ॥

सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्व्वकाम् । अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति
यं विनिद्राङ्गितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः ।

ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम् ॥ १०७ ॥

जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्व्वतम् । आकाशेनैव चिप्रेन्द्रो योगेश्वर्य्यप्रभायतः
विमानं सूर्य्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम् । अन्वगच्छद्देवगणा गन्धर्वाप्सरस्तांगणाः
दृष्ट्वाऽन्ये पथि योगीन्द्रंसिद्धाब्रह्मर्षयोययुः । ततःस गत्वानुगिरिविवेशानुरवन्दितम्
स्थानंतद्योगिभिर्जुष्टं यत्रास्तेपरमःपुमान् । सम्प्राप्यपरमंस्थानं सूर्यायुतसमप्रभम्
विवेश चान्तर्भवनं देवानाञ्च दुरासदम् । विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्व्वदेहिनाम्
अनादिनिधनं चैव देवदेवं पितामहम् । ततः प्रादुरभूत्तस्मिन् प्रकाशःपरमाद्भुतः ॥
तन्मध्ये पुरुषं पूर्व्वमपश्यत्परमं पदम् । महान्तं तेजसो राशिमगभ्यं ब्रह्मचिद्विषाम्
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिर्मिरुपशोभितम् । सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्यप्रणमन्तमुपस्थितम्
प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिपस्वजे । परिपस्वक्तस्यदेवेनद्विजेन्द्रस्याथ देहतः
निर्गत्य महतीज्योत्स्नाविवेशादित्यमण्डलम् । ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत्पवित्रममलंपदम्
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते ह्यव्यकच्यभुक् ।

द्वारं तद्योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ११८ ॥

ब्रह्मतेजोमयं श्रीमद्दृष्ट्वा चैव मनीषिणाम् । दृष्ट्मात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयोमुनिः
अपश्यदैश्वरंतेजः शान्तंसर्व्वत्रंगंशिवम् । स्वात्मानमक्षरंव्योम यत्रचिष्णोःपरं पदम्

भानन्दमचः ब्रह्मस्थान तत्परमेश्वरम् । सर्वमृतात्ममूलस्थः परमेश्वर्यमास्थितः ॥

शानवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमप्ययम् ।

तस्मान्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ॥ १२२ ॥

समाश्रित्यान्तिमं भाव माया लक्ष्मीं तरेद् बुधः ।

सून उवाच

व्याहता हरिणा त्रेव नारदाद्या महर्षयः ॥ १२३ ॥

शत्रेण सहिता सर्वे पञ्चदुर्गण्डध्वजम् ।

श्रय्य ऊचुः

द्वन्द्वेव ह्यारक्षेत् । नाथ । नारायणाध्ययः ॥ १२४ ॥

तद्दशशोभमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा । इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञान धम्मादिगोचरम् ॥

शुभ्रपुष्पाप्यय शत्रुं सखातत्रनगन्मयः । ततः स भगवान् विष्णु कूर्मरूपी तनाद्गन् ॥

रसातलगतो द्वयो नारदार्यमहर्षिभिः । पृष्ट प्रोवाच सकलः * पुराण कौर्ममुत्तमम् ॥

सत्रिधौ देवराजस्य तद्दृश्येभवतामहम् । धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य मोक्षप्रदं नृणाम् ॥

पुराणध्वजः विप्रकथनञ्च विशेषतः । ध्रुत्वा चाशयमेरेकं सर्वपापं प्रमुच्यते ॥

उपात्त्यानमयैकं वा ब्रह्मलोके महायते । इदं पुराणं परमकौर्मं कूर्मस्वरूपिणा ॥

उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातम्यं द्विजातिभिः ॥ १२१ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराण इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

* सकलमित्यत्र "भगवान्" इति पाठान्तरम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

कूर्म उवाच

ऋणुध्वमृषयःसर्व्व्ययत्पृष्टोऽहंजगद्धितम् । वश्यमाणंमयान्स्वमिन्द्रद्युज्ञायभाषितम्
भूतैर्भव्यैर्भवद्विश्च चरितैरुपवृंहितम् । पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्ममनुकीर्त्तनम्
अहं नारायणोदेवःपूर्व्वमासीन्नमेपरम् । उपास्यचिपुलानिद्रांभोगिशय्यांसमाश्रितः
चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्तेप्रतिबुध्यतु । ततोमेसहस्रोत्पन्नःप्रसादोमुनिपुङ्गवाः
चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।

तदन्तरेऽभवत्क्रोधः कस्माच्चित्कारणान्तदा ॥ १ ॥

आत्मनो मुनिशार्दूलान्त्र देवो महेश्वरः । रुद्रःक्रोधात्मकोजज्ञेशृलपाणिखिलोचनः
तेजसा सूर्यसङ्काशखिलोक्यं संदहन्निव । तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना ॥ ७
सुरूपासौम्यवदनामोहिनीसर्व्वदेहिनाम् । शुचिस्मितानुप्रसन्नामङ्गलामहिमाम्पदा
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ।

नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया ॥ ६ ॥

स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पाश्र्वं समुपाविशत् ।

तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिम् ॥ १० ॥

मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम् येनेयं विपुला सृष्टिर्वद्धने मम माधव!!
तथोक्तोऽहं त्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव । देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्
मोहयित्वा ममादेशात्सन्सारे विनिपातय ।

ज्ञानयोगरतान्दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥

अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ।

ध्यायिनो निर्म्ममान् शान्तान्धार्मिकान्त्रेदपारगान् ॥ १४ ॥

आनन्दमचलं ब्रह्मस्थानं तत्परमेश्वरम् । सयमृतात्ममृतस्य परमेश्वर्यमाश्रितम् ॥

प्राणवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाध्यमध्ययम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थित ॥ १२२ ॥

समाश्रित्यान्तिमं भाय माया लक्ष्मीं तरेदु बुधम् ।

सून उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेव नारदाद्या महर्षयः ॥ १२३ ॥

शम्भुः सहिता सर्वे पञ्चदशगण्डध्वजम् ।

ऋषय ऊचुः

द्वयदेव हृषीकेश ! नाथ ! नारायणाध्ययः ॥ १२४ ॥

तद्दशोपमस्मार्कं यदुक्तं भवता पुरा । इन्द्रघ्न्याय विप्राय ज्ञानं धम्मादिगोचरम्

शुभ्रपुत्राध्ययं शक्यं सखातवनगन्मयम् । ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी तनाद्भूतः

रसातलगतो द्रवो नारदाद्यमहर्षिभिः । वृष्टः प्रोवाच सकलः * पुराणं कूर्ममुत्तमम्

सन्निधौ देवगणस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम् । अन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्

पुराणध्वजं विशाक्यनञ्च विशारदम् । श्रुत्वा चाप्ययमेवंकं सर्वपापं प्रमुच्यते ।

उपायानमप्येकं धा ब्रह्मलोके मर्हस्यते । इदं पुराणं परमं कूर्मं कूर्मस्वरूपिणा ।

उक्तं च देवदेवेन धर्मान्त्यं द्विजातिभिः ॥ १२१ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराण इन्द्रधुम्नमोक्षवर्णन नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

* सकलमित्यत्र 'भगवान्' इति पाठान्तरम् ।

ततः कालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् ॥ ३३ ॥
 अधर्म्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्म्मप्रतिबन्धकः ।
 ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीघ जायते ॥ ३४ ॥
 रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन् ।
 तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः ॥ ३५ ॥
 चात्तोपायं पुनश्चक्रुर्हन्तसिद्धिञ्च कर्मजाम् ।
 ततस्तासां विभुः ब्रह्मा कर्म्मजीवमकल्पयत् ॥ ३६ ॥
 स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं धर्म्मन्प्रोवाच सर्व्वदृक् ।
 साक्षात्प्रजापतेर्मुक्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणो द्विजाः ॥ ३७ ॥

भृगवादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्म्मनथोचिरे । यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः
 अध्यापनं चाध्ययनं पठ्कर्मणिद्विजोत्तमाः । दानमध्ययनं यज्ञो धर्म्मः क्षत्रियवैश्ययोः
 दण्डो बुद्धं क्षत्रियस्य कृपिवैश्यस्य शस्यते । शुश्रूषं वद्विजानीनां सूद्राणां धर्म्ममाधनम्
 कारुर्कर्मतथा जीवः पाकयज्ञादिधर्म्मतः । ततः स्थिते पुत्रवर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्
 गृहस्थञ्च वनस्थञ्च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम् । अग्रयोऽतिथिशुश्रूषायज्ञो दानं सुराचर्चनम्
 गृहस्थस्य समासेन धर्म्मोऽयं मुनिपुङ्गवाः । होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च

संविभागो यथान्यायं धर्म्मोऽयं वनवासिनाम् ।

भैक्षशासनञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ॥ ४४ ॥

सम्यग्ज्ञानञ्च वैराग्यं धर्म्मोऽयं भिक्षुके मतः ।

भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वध्याय एव च ॥ ४५ ॥

सन्ध्याकर्मप्रकार्यञ्च धर्म्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ।

ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः ॥ ४६ ॥

साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भवः । ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारे पुनचान्यतः
 पर्व्ववज्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् । आगर्भधारणादाज्ञा कार्या तेनाप्रमादतः
 अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्राभ्रूणहातूपजायते । वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्याश्राद्धञ्चातिथिपूजनम्

याचितम्लापसान्विशान्दूरत परिपञ्चय । वेदयेदान्तपिज्ञानमञ्जिप्रशोभशायान्
महायज्ञपरान्विशान्दूरत परिपञ्चय । ये यन्ति जर्षहर्मिर्देवदेव महेश्वरम् ॥ १६ ॥

स्याज्यायेनेत्यथा दूरानान् प्रयत्नेन वारज्य ।

मनियोगममायुक्तानाश्वरपितनानमात् ॥ १७ ॥

प्राणायामादिषु रतादूरान्विशिष्टगमनान् । प्रणयामकर्मतस्यो रद्रुज्यपरायणान् ॥

अथरशिरमो घेतन् धम्मज्ञान् परिपञ्चय । बहूनाप्रथिमुनेनस्वधर्मपरिपाठकान्

श्रवणगणनतन्मन्त्रियात्माश्र मोहय । एव मया महामाया प्रेरिता दृग्बिह्वना ॥ १८ ॥

यथाश्रवणारासांतस्मत्पृथ्वीममस्वदेव । त्रियन्दातिचिपुत्रां पुष्टिमेधायशोबलम्

अजिता मगवन्पत्नी तन्महाहृषी ममस्वयेत् ।

ततोऽमृतम भगवन् प्रया गोकपितामह ॥ -२ ॥

शराशरणि भूतानि यथापूज्य ममाश्रया । मनीषिभृषद्भिर्गर्भं पुलस्तपपुत्रह कर्तुम्

दक्षमग्नि वसिष्ठञ्च सोऽमृतप्रागाविधया । तर्बत प्रचण पुत्रप्रह्वणा ब्राह्मणोत्तमा

प्रचरन्ति तर्बत मराच्याद्यास्तु साधका ।

समञ्ज प्राचरणास्वकप्रान क्षत्रियाश्च भुवाद्भिषु - १ ॥

यस्यानन्दयाव पटुका दुष्टान् पितामह । यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा वृद्धवर्ने ससज ह ॥

गुणये स्वयद्वाना नभ्या यज्ञाहितिरमी । अद्योयन् पिमामानितर्षेधाधयणानिध

प्रह्वण महन रूपनिस्वपराशक्तिरव्यया । अनादिनिधनादिव्यावागु सृष्टाम्ययम्भुवा

वार्त्तं यन्मयी भूतामृत सव्या प्रवृत्तय ।

अतोऽशानि हि शास्त्राणि प्रथित्यां यानि कानिचिन् ॥ २६ ॥

न तपु रमत धार पाखण्डा रमने युध । यथाधयित्तर्मे कायैयम्भुमुनिभिर्पुरा

सतय परमाधर्मोनान्यशास्त्रपुसन्धियत । यावेदवाद्यास्तुतयोयकाश्चकुटुम्ब

मच्चास्ता निष्कण्य प्रय तमानिष्ठा हि ता स्मृता ।

पुत्रबलं प्रजा जाता स्वयवाधाविर्बिता ॥ ३२ ॥

शुद्धान्तकरणा सत्या स्वधर्मपरिपालिका ।

गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वचन्ताम् । अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्

स्मृतं नेषान्तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।

सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतं तद्द्वै घनीकृत्याम् ॥ ७१ ॥

प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुजा ।

यतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ७२ ॥

हिरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्त्ततेपुनः । योगिनाममृतं स्थानंध्योमात्यं परमक्षरम्

धानन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा न्ना परा गतिः ।

ऋषय ऊचुः

भगवन्देवताभिन्ना! हिरण्याक्षनिपूतन ! ॥ ७४ ॥

सत्त्वानां ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ।

कूर्म उवाच

सर्वकर्माणि नन्यग्न्य समाधिमन्त्रलं ध्रितः ॥ ७५ ॥

य धाम्ने निश्चलो योगी न सन्यासी च पञ्चमः ।

सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मवाच्युं पकुर्वाणोर्नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः । योऽर्थात्यविधिवद्देवान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत्

उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ।

उदासीनः सायकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ॥ ७८ ॥

कुटुम्बभरणायत्तः सायकोऽसौ गृही भवेत् ।

ऋणानि श्रेण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ॥ ७९ ॥

पकाकीयस्तु विचरेद्गुदासीनःसमौक्षिकः । तपस्तप्यतियोऽरण्येयजेद्देवान्जुहोतिच

स्वाध्यायेच्चैवनिर्गोवतस्थस्तापसोमतः । तपसाकार्पितोऽत्यर्थयस्तुध्यानपरोभवेत्

सांग्यासिकः स चिज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ।

योगाभ्यासरतो निरयमारुद्भुजितेन्द्रियः ॥ ८२ ॥

ज्ञानाय वर्त्ततेभिक्षुः प्रोच्यतेपारमेष्ठिकः । यस्त्वात्मरतिरेवस्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः

सम्पद्दानसम्पन्न सयोगीभिर्बुद्ध्यते । ज्ञानसन्त्यासित वैर्चिर्द्वैतसन्त्यासिनोऽपरे
कृष्णसन्त्यासिन केचित्त्रिविधा पारमेष्ठिका ।

योगी च त्रिविधो ज्ञयो भौतिक सारय एव च ॥ ८५ ॥

तृतीयोहाश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रित । प्रथमा भावनापूर्वे सात्त्व्ये त्वक्षरभावना
तृतीयेवान्तिमा प्रोक्ताभावना पारमेश्वरी । तस्मादेतद्विजानीध्वमाश्रमाणा चतुष्पथम्
सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमोनोपपद्यते । एव वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जत ॥ ८८
दशार्दी प्राहविश्वात्मासृत्तन्धविविधा प्रजा । ब्रह्मणोवचनात्पुत्राद्दशायामुनिसत्तमा
असृजत्त प्रजा सव देवमानुषपूर्वका । इत्येव भगवान् ब्रह्मास्त्रपट्टे स यवस्थित
अहव पात्र्यामीद महरिप्यति शूलभृत् । तिस्रस्तु मृत्यय प्रोक्ताब्रह्मविष्णुमहेश्वरा
रज सत्त्वतमोयोगात्परस्य परमात्मन ।

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविन ॥ ९२ ॥

अन्योन्यप्रणताश्च लालया परमेश्वरा । ब्राह्मी माहेश्वरी चव तथैवाक्षरभावना ॥
तिस्रस्तु भावना रुद्र वत्तन्त सतत द्विजा । प्रवतत मज्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना
द्विताया ब्रह्मण प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना । अह चैव महादेवो न भिन्न परमार्थत
विभज्य स्वेच्छयामान सोऽन्तयामीश्वर स्थित ।

त्रंलोक्यमखिल स्रष्टु सदेवासुरमानुषम् ॥ ९६ ॥

पुत्र्य परतोऽन्यक्तो ब्रह्मत्वे नमुपागमत् । तस्मान्ब्रह्मामहादेवोविष्णुर्विश्वेश्वर पर
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तद्व कायवशात्प्रभो ।

तन्मासावप्रय नेत घन्द्या पू या विशेषत ॥ ९८ ॥

यत्प्राग्देविरास्थान यत्तमोक्षायम ययम् । वणाधमप्रयुक्तनधर्मणप्रीतिसयुत ।
पूजयेद्वावयुक्तन यावज्जाव प्रतिज्ञया । चतुणामाश्रमाणान्तुप्रोक्तोऽयविधिवद्विजा
नाश्रमो वर्णवा ब्राह्मो हराश्रम इतित्रय । तद्विद्गंधारीनियत तद्वत्तजनवत्सल ॥
यावेदधाद्येदतान् ब्रह्मविद्यापरायण । सद्यपामेव भक्ताना शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम् ॥
मितनमस्मना काय ललात् तु त्रिपुण्ड्रकम् । यस्तुनारायण द्य प्रपन्न परम पदम्

धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः । प्रपन्ना ये जगद्व्याजं ब्रह्माणं परमंष्टिनम्
तेषां ललाटे तिलकं धार्ष्णीयन्तु सर्वदा ।

योऽस्नावनादिभूतादिः कालात्माऽर्त्ता भृतो भवेन् ॥ १०१ ॥

उपर्यधोभावयोगात्त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात् ।

यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ १०३ ॥

धृतन्तु शूलधरणाद्भवत्येव न संशयः । ब्रह्मतेजोमयं शूलं यदेतन्मण्डलं रथः ॥ १०७
भवत्येव धृतं स्वानमोभवरं तिलकं कृते । नस्मात्कार्यं त्रिशूलाङ्गं तथाच तिलकंशुभम्
आयुष्यञ्चापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् । यजेततद्गुण्यदमो जपेद्दद्यात्तन्त्रियः

शान्तो दान्तो जितक्रोधो घर्णाश्रमविधानचित् ।

एवं परिसरेद्देवान् यावर्जीवं समाहितः ॥ ११० ॥

तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति ॥ १११ ॥

इति श्री कूर्म्ममहापुराणे घर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

घर्णाश्रमक्रमवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

घर्णाश्रमगतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा । इदानीं क्रममस्मकमाश्रमाणां च द्प्रभो!

कूर्म्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत्
उत्पन्नज्ञानविज्ञानी वैराग्यं परमं गतः । प्रयजेद्ब्रह्मचर्यान्तु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥

द्वारानाहत्य विधिवदन्यथा विधिभ्रंखैः । यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तोयदिसंन्यसेत्

अनिष्टा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथाऽऽत्मजान् ।

न गार्हस्थ्य गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विज ॥ ५ ॥

अथचैराग्यवेगेन स्थातु नोत्सहते गृहे । तत्रैव संन्यसद्विद्वाननिष्ठापि द्विजोत्तम ॥६॥
 तथापि विविधैश्शक्तिषु धनमथाश्रयन् । तपस्तप्त्वात्तपोयोगाद्विरक्त संन्यसेदुद्यहि
 घानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत्पुनः । न संन्यासी धनञ्जाय ब्रह्मचर्यञ्च साधक
 प्राजापत्याश्रिरूप्येष्मिन्नेयीमथवाद्विजः । प्रवृत्तेतुगृहाविद्वान्धनाद्वाश्रुतिचोदनात्
 प्रकृतु मसमर्थाऽपि जुहोति यजनित्रिया । अन्ध पद्भुदरिद्रोवाचिरक्त संन्यसद्विज
 सर्वेषामेव वैराग्य संन्यासे तु विधीयते । पतत्येवाचिरको य संन्यासं मनुमिच्छति
 एकस्मिन्नथवा सम्यगवर्तेतामरणान्तिकम् । ब्रह्मायानाश्रमयुक्त सोऽमृतत्वायक्त्पते
 न्यायामत एव शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः । स्वयमपालकोनित्यं ब्रह्मभूयाथ कल्पते
 ब्रह्मण्यायायकम्माणि नि सङ्गं कामयजितः । प्रसन्नेनैव मनसाकुर्वाणोयातितत्पदम्
 ब्रह्मणा वीर्ये देव ब्रह्मणे सम्प्रदीयते । ब्रह्मैवदीयतेचेतिब्रह्मापणमिदं परम् ॥ १५ ॥
 नाहकता सधमत्तद्ब्रह्मैव कुरुते तथा । एतद्ब्रह्मापणं प्रोक्तमृपिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
 प्राणातुभगवताशं कम्मणानेन शाश्वतः । करोतिसततं बुद्ध्या ब्रह्मापणमि परम्
 यद्वाफलानां संन्यासं प्रकुर्यात्परमश्वरे । कम्मणामतदप्याहुर्ब्रह्मापणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥
 कायमिथेव यत्कम्मं नियतं सङ्गयजितम् । क्रियतं विदुपाकर्मतद्भवेदपिमोक्षदम्
 अथवा यदि कर्माणि कथाश्रित्यान्यपिद्विजः । अष्टत्वाफलसंन्यासवध्यततः फलेन तु
 तस्मात्सवप्रयत्नेन त्यक्त्वा कम्माश्रितं फलम् ।

अविद्वानपि कुर्वीत कम्माऽऽप्नोति चिरात्पदम् ॥ २१ ॥

कम्मणा क्षीयत पापमैहिकं पौर्विकं तथा । मनःप्रसादमभ्येति ब्रह्मविज्ञायते नरः
 कम्मणा महिताज्ज्ञानान् सम्यग्योगोऽभिवायते ।

ज्ञानं च कम्ममहितं जायते दोषयजितम् ॥ २३ ॥

तस्मात्सवप्रयत्नेन यत्रतत्राधमं रतः । कर्माणीश्वरतुष्यथैतुष्यार्त्रैष्वभ्यमाप्नुयात्
 मन्त्राप्य परमं ज्ञानं नष्कम्यत प्रसादतः । एकाकीनिभमं शान्तो नीचत्रेयविमुच्यते
 चाक्षते परमात्मानं परब्रह्म महेश्वरम् । नित्यानन्दी निराभास तस्मिन्नेषल्लयव्रजेत्

तस्मात्सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः । तृपयेपरमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम् ॥
एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दतिमानवः
इति श्रीकूर्ममहापुराणे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

प्राकृतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वाऽऽश्रमविधिं शूद्रस्त्रमृपयो हृष्टचेतसः । नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्
मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । इदानींश्रोतुमिच्छामो यथासम्भवतेजगत
कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेप्यति । नियन्ता कश्चसर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपधृक् ।

प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४ ॥

कूर्म उवाच

महेश्वरःपरोऽव्यक्तः चतुर्व्यूहः सनातनः । अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्वततोमुखः ॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानंप्रकृतिश्चेति यमाहुस्तस्वचिन्तकाः
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शचिचर्जितम् ।

अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥ ७ ॥

जगद्योनिर्महाभूतं परब्रह्म सनातनम् । विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत् ॥ ८
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् । असाग्रतमचिज्ञेयंब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ९
गुणसाम्ये तदातस्मिन् पुरुषेवात्मनिस्थिते । प्राकृतःप्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः
ब्राह्मी रात्रिरियंप्रोक्ता ह्यहःसृष्टिरुदाहता । अहर्न चिद्यते तस्य न रात्रिर्ह्यपचारतः ॥

निशान्तेप्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान् । भर्षभृतमयोऽव्यक्तादन्तर्यामीश्वर पर-
प्रवृत्तिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वर । क्षोभयामास योगत परेण परमेश्वर ॥ १३ ॥

यथा मदो नरस्त्रीणा यथा वा माधवोऽनिल ।

अनुप्रविष्ट क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्तिमान् ॥ १४ ॥

सपञ्चभक्त्याविप्रा क्षोभ्यश्चपरमेश्वर । समकोचविकासाभ्याप्रधानश्चैव्यवस्थित
प्रधानाश्रोभ्यमानाच्च तथापु स पुरातनान् । प्रादुरासीन्महद्बुवाञ्ज प्रधानपुरुषामकम्
महानात्मा मतिप्रज्ञा प्रबुद्धि ख्यातिरीश्वर ।

प्रज्ञा धृति स्मृति सविदेतस्मादिति तन्स्मृतम् ॥ १७ ॥

वैकारिकमूर्तेनसश्च भूताश्चैव तामस । त्रिविधोऽयमहकारो महत सप्तभूष ह ।
अहकारोऽभिमानश्च कर्त्ता मन्ता च स स्मृत ।

आत्मा च मत्परो नीचो गत सर्वा प्रवृत्तय ॥ १६ ॥

पञ्चभूतान्यहकारात्तन्मात्राणिच जज्ञिरे । इन्द्रियाणिचसर्वाणिसर्वतस्या मननगत्
मनन्त्यन्यत्तत्र प्रोक्तविकार प्रथम स्मृत । येनासौनायनेकर्त्ता भूतादीधानुपश्यति
वैकारिकाहकारात्सर्गोवैकारिकोऽभवत् । तैवसानीन्द्रियाणिस्युर्वावैकारिकाश
एकादश मनस्तत्र स्वगुणेनोभया मकम् । भूततन्मात्रसर्गोऽय भूतादस्मद्वद्विना
भूतादिस्तुचिकुवाणश द्मात्रं समन्वह । आकाशोनायतनस्मात्तस्यश दोगुणोमत
आकाशान्नु चिकुवाण स्पर्शमात्र सप्तन्वह ।

वायुरुपचने तन्मात्तस्य स्पर्शं गुणं विदु ॥ २० ॥

वायुश्चापि चिकुवाणो रूपमात्रमसन्वह । योतिरुपचने धायोस्तद्रूपगुणमुच्यते
ज्यातिश्चापि चिकुवाण रसमात्रं समन्वह ।

सम्भवन्ति ततोऽम्भामि रसाधाराणि तानि च ॥ २१ ॥

आपश्चापिचिकुवाणाग रसाश्रमसर्तिचरे । सद्गतोजायतेतस्मात्तस्यग दोगुणोमत
आकाश शब्दमात्र तु स्पर्शमात्र समावृणान् ।

द्विगुणमनु तता वायु शब्दस्पर्शा मकोऽभवत् ॥ २६ ॥

रूपंतथैवाविशतः शब्दस्पर्शागुणाबुभौ । त्रिगुणःस्यात्ततो वह्निःसशब्दस्पर्शरूपवान्
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत् ।

तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥ ३१ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपञ्चरसो गन्धं समाविशत् । तस्मात्पञ्चगुणाभूमिः स्थूलाभूतेषु शब्दयते
शान्ता घोराश्चमूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्
एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समा प्रयात् । नाशकनुवनप्रजाः चन्द्रमसमागम्य दृत्स्नशः
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च । महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते
एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् । विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकेशयम् ॥ ३६

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं परमेष्ठिनः ।

प्राकृतेऽण्डे चिबुद्धे तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसञ्ज्ञितः ॥ ३७ ॥

। वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥
माहुः पुरुषं हंसं प्रधानात्परतः स्थितम् । हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्त्तिं सनातनम्
मेरुखल्वमभूत्तस्य जरायुश्चापि पर्वताः ।

गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्परमात्मनः ॥ ४० ॥

। स्मिन्नण्डेऽभवद्विश्वं सदेवासुरमानुषम् । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सहवायुना
प्रद्विर्द्देशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम् । अपोदशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् । आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्
भूतादिर्महतातद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । एते लोका महात्मानः सर्वे तच्चाभिमानिनः
वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः ।

ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४५ ॥

सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः । एतैरावरणैरण्डं प्राकृतैः समभिर्चृतम् ॥
एतावच्छस्यते वक्तुं मायैषा गहनाद्विजाः । एतत्प्राधानिकं कार्यं यन्मया रीजनीरितम्
प्रजापतेः परा मूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः । ब्रह्माण्डमेतत्सकलं सप्तलोकबलान्वितम्
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः । हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः

तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्धेदार्यवेदिन । रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तन्मयैव धीमतः ॥ ५० ॥
 अतुमुंखस्तु भगवान्जगत्सृष्टौ प्रवर्तते । सृष्टञ्च पातिसकलं विभ्वात्माविभ्वतोमुखं
 सत्त्वं गुणमुपाधित्यं विष्णुर्विश्वम्भरं स्वयम् ।

अन्तकाले स्वयं देव सवात्मा परमेश्वरः ॥ ५२ ॥

तमोगुणसमाधित्यं रद्रसहरतेजगन् । एकोऽपि सन्नमहादेवस्त्रिधासीत् समवस्थितः
 सगरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः । एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च चतुर्धागुणैः
 योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च । नानावृत्तिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया
 हिताय च ये मत्तानां न एव प्रसतेषुन । त्रिधा विमज्यं स्यात्मानं त्रैलोक्ये सप्रवर्तते
 सृजते प्रसते चैव वाक्षते च विशेषतः । यस्मात्सृष्टानुगृह्णाति प्रसते च पुनः प्रजा
 गुणात्मकं धार्त्रकाल्ये तस्मादेकं स उच्यते । अग्ने हिरण्यगर्भं स प्राहुर्भूतसनातन
 आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वाद्जः स्मृतः ।

पाति यस्मात्प्रजा सर्वा प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ५६ ॥

द्वेषु न महादेवो महादेव इति स्मृतः । बृहत्याश्च स्मृतो ब्रह्मा परत्यात्परमेश्वर
 षशिवात्प्यवश्यत्वादाश्चर परिभाषितः । ऋषिः सर्वप्रगत्येन हरिः सर्वहरोयत
 अनुत्पादाश्च पूर्वतन्वास्वयभूरिति स स्मृतः । नराणामयनयस्मात्तेन नारायणः स्मृतः
 हरः ससारहरणाद्दिभुवाद्दिष्णुरुच्यते । भगवान्सर्वविज्ञानादधनादोमिति स्मृतः
 सच ज्ञः सच विज्ञानात्सच सच प्रयोयतः । शिवः स्यान्निर्मलो यस्माद्दिभुः सर्वगतोयत
 तारणात्सच दुःखानां तारकः परिगीयते । चतुर्नाऽप्रविमुनेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥
 अनेकभेदभिन्नस्तु वाडत परमेश्वरः । इत्येव प्राहृतं सर्गं सक्षेपाकथितो मया ॥

अनुद्विपूर्विका विभा' ब्राह्मी सृष्टिं निबोधत ॥ ६६ ॥

इति धाकृष्णमहापुराणे प्राहृतभगवणननाम अतुर्धोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः कालसंख्याविवरणम्

कूर्म उवाच

(अनुत्पादाच्च पूर्वस्मात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥ १ ॥

नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः । हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ॥ २ ॥

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्व्वः सर्व्वमयो यतः ।)

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम् । कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता
स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते सृज्यतेपुनः । निजेन तस्यमानेन श्वायुर्वर्षशतं स्मृतम्
तत्परार्द्धं तदूर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते । काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः

काष्ठा त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्त्तिकी गतिः ।

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम् ॥ ७ ॥

अहोरात्राणि तावन्ति मासःपक्षद्वयात्मकः । तैः पद्भिरयनं वर्षं द्वेऽयनेदक्षिणोत्तरे
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम् ॥
चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत । श्रुत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणांतत्कृतंयुगम्

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु ।

त्रिशतीद्विशती सन्ध्या तथा शैकशती क्रमात् ॥ ११ ॥

अंशकं पद्शतं तस्मात्कृतसन्ध्यांशकैर्विना ।

त्रिद्वयेकथा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेन तु ॥ १२ ॥

त्रेताद्वापरतिप्याणां कालज्ञानेप्रकीर्तितम् । एतद्द्वादशसाहस्रं सात्रिकंपरिकल्पितम्
तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते । ब्रह्मणोदिवसे विप्रा मनवश्च चतुर्दश ॥ १४ ॥

षष्ठोऽध्यायः

पृथिव्युद्धारवर्णनम्

कूर्म उवाच

आसीदेकार्णवं शोरमविभागं तमोमयम् । शान्तवातादिकं सर्वं न प्राजायत किञ्चन
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । तदा समभवद्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।

ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुप्वाप ललिते तदा ॥ ३ ॥

चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम्
पो नाराइति प्रोक्ता आपोवैनरसूनवः । अयनंतस्य ता यस्मात्तेन नारायणःस्मृतः
यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥
तस्तुसलिलेतस्मिन्विज्ञायान्तर्गतामहीम् । अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुं कामःप्रजापति
लक्रीडासु रुचिं चाराहं रूपमास्थितः । अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयंब्रह्मसंज्ञितम्
थिव्युद्धारणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् । दंप्रयाभ्युज्जहारंतामात्माधारो धराधरः

दृष्ट्वा दंप्राप्रचिन्त्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम् ।

अस्तुचञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम् ॥ १० ॥

ऋषय ऊचुः

तमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने । पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च ॥ ११ ॥
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वाथर्वेदिने । नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने ॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवेविश्वयोनये । नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे ॥
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र! शार्ङ्गश्चक्रासिधारिणे । सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थायनमोनमः
नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेद्योनये ।

नमो बुद्धाय शुद्धाय तमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥ १५ ॥



तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरंप्रभुः । तस्याभिध्यायतःसर्गं तिर्यक्क्षोतोऽभ्यवर्तत
यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्क्षोतः ततः स्मृतः ।

पश्वाद्यस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वासर्गमन्यंससर्ज ह । ऊर्द्धक्षोत इतिप्रोक्तो देवसर्गस्तुसात्त्विकः
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंशिताः
ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।

प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्क्षोतस्तु साधकः ॥ ६ ॥

तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।

दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

इं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्गवानजः । तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्
नेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताःपुनः । खादिनश्चाप्यशालाश्च भूताद्याःपरिकीर्त्तिताः
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः । प्रथमोमहतःसर्गाविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गो हि संस्मृतः ।

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गं पेन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥

इत्येप प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥

तिर्यक्क्षोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ।

तथोर्द्ध्वक्षोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥

ततोऽर्वाक् क्षोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्वमे । प्राकृतास्तुत्रयःपूर्वसर्गास्तेबुद्धिपूर्वकाः
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्तेमुख्याद्यामुनिपुङ्गवाः । अग्रेससर्ज्जवैब्रह्मामानसानात्मनःसमान्
सनकं सनातनं चैवतयैवचसनन्दनम् । क्रतुं (ऋभुं) सनत्कुमारं चपूर्वमेवप्रजापतिः
पञ्चैते योगिनो विप्राः परं चैरायमाश्रिताः । ईश्वरासकमनसोतसृष्टीदधिरे मतिम्

नमोऽम्बानन्दरूपाय साक्षिणे जगदानमः । अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च
 नमस्ते पञ्चमृताय पञ्चमृतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥ १७
 नमोऽस्तु ते धराहाय नमस्ते मन्त्ररूपिणे । नमो योगाधिगम्याय नमः सक्त्वायने
 नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं त्रिप्राप्ते दिव्यनेत्रमे । नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने
 नमोऽम्ब्यादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोक्तये । नमोऽमूर्त्ताय मूर्त्ताय माधवाय नमो नमः
 त्वयैव सृष्टमक्षिलं त्वयैव सकलं स्थितम् । पालयैतज्जगत्सर्वं प्रातान्वं शरणगति
 इत्थं स भगवान् विष्णुः भवतः परमिष्टुतः । प्रमादमकरोत्तेरा धराहवपुरांभरः ॥

ततः स्वस्थानप्रार्त्ताय पृथिवीं पृथिवीं परः ।

मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥ २३ ॥

तस्योपरि जलौकस्यमहतौ नीरिवस्थिता । विततत्वाद्यदेहस्य न महीपातिममृतम्
 पृथिवीं स मर्मारुह्य पृथिव्या सोऽचितोऽङ्गीरन् ।

प्राक् सगद्गधान्नखिलान्ततः सर्वोऽदधन्मदः ॥ २५ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे पृथिव्युद्धारवर्णननामष्टौऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

सृष्टिरर्णनम्

कूर्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्त्वस्य कलादिपुरुषाणुगः । अद्भुदिदं कः सर्वः प्रादुर्भूतस्तप्तमोमर
 तमोमाहो महामोहस्त्वामिन्द्रध्यानमच्छिनः । अविद्यापञ्चमोतेराप्रादुर्भूतामहात्मन
 पञ्चधाऽप्रस्थितः सर्वो ध्यायत सोऽभिमानितः ।

भवतस्त्वमसा र्धं वः रीजकूर्मप्रदासुतः ॥ ३ ॥

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यद्गर्गप्रभुः । तस्याभिध्यायतःसर्गं तिर्यक्स्त्रोतोऽभ्यवर्त्तत
यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्त्रोतः ततः स्मृतः ।

पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वासर्गमन्यंससर्ज ह । ऊर्द्धस्त्रोत इतिप्रोक्तो देवसर्गस्तुसात्त्विकः
ते सुखप्रीतिवहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।

प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्त्रोतस्तु साधकः ॥ ६ ॥

तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिका रजोऽधिकाः ।

दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्गवानजः । तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्
नेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताःपुनः । खादिनश्चाप्यशालाश्च भूताद्याःपरिकीर्त्तिताः

इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः । प्रथमोमहत्ःसर्गाविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गो हि संस्मृतः ।

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥

इत्येप प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ।

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥

तिर्यक्स्त्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ।

तथोद्भ्र्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥

ततोऽर्वाक् स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्वमे । प्राकृतास्तुत्रयःपूर्वसर्गास्तेबुद्धिपूर्वकाः
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्तेमुख्याद्यामुनिपुङ्गवाः । अग्रेससर्ज्जवैब्रह्मामानसानात्मनःसमान्
सनकं सनातनं चैवतथैवचसनन्दनम् । ऋतुं (ऋभुं) सनत्कुमारं चपूर्वमेवप्रजापतिः
पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः । ईश्वरासकमनसोऽसृष्टौदधिरे मतिम्

तेऽप्यं निरपेक्षेषु लोकमूर्त्तौ प्रजापतिः । मुमोह मायया सद्यो भायितः परमेष्ठिनः
सम्प्रोत्थामाम च तं जगन्मायो महामुनिः । नारायणोमहायोगीयोगिचित्तानुरञ्जनः
वोधितस्त्वेन विभ्वात्मा तताप परमं तपः । स तप्यमानो भगवान्प्रकिञ्चित्प्रत्यपन्नत
ततो र्द्यौष कालेन दुःशाक्रोधोऽभ्यजायत ।

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्या प्रापतश्च्युविन्दवः ॥ २५ ॥

श्रुत्वादीकृद्विगतस्य त लोटात्परमेष्ठिनः । समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः
सण्डमगर्गर्नाशस्नेजोराशि मनातनः । यं प्रपश्यन्तिविद्वान् स्यात्प्रस्यं परमेस्वरम्
ॐ नमः समनुस्मृत्य प्रपन्नपचकृताञ्जलिः । तमाहभगवान्प्रह्लासृजेमाविचिधा प्रजाः
निशम्य भगवद्वाक्य शङ्करो धर्मवाहनः । आत्मना सदृशान्स्टान्मससर्जं प्रतमाशिव
कपर्दिनो निगतदृक्स्त्रिनेत्रात्नीललोहितान् ॥ २६ ॥

तमाहभगवान्प्रजाजन्मसृ ययुता प्रजा । सृजेतिनोऽर्थादीशोताहमृत्युजगन्विता
प्रजा च. ते जगजाय ' सृजन्वमगुभा. प्रजा' । निवार्यसतदा रद्र ससर्जकमलोद्भव
स्याताभिमानिनः सर्वान गहनस्ताधिवोधत ।

प्रापाऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुं पृथिवीं तथा ॥ २७ ॥

नद्यः समुद्रा शंखाश्चक्षुषावाग्धप्य च । लया काष्ठा कलाश्चैवमुहूर्तादिवसा क्षपा
ज्जमासाश्च मासाश्च त्रयतादयुगादयः । स्याताभिमानिनः सृष्ट्वा साधकान्मृजत्पुन
मराचिभ्रम्यद्विरमः पुलस्त्यं पुलहः प्रतुम् । दक्षमग्निं पस्मिष्टं च धर्म्मसङ्कल्पमेव
प्राणादप्रह्लाऽसृजद्वध चभुभ्यां चमरार्चिनम् । शिरसोऽद्विरसदंबोद्दृष्ट्यात्भृशुमेव
नेत्राभ्यामग्निनामन धम्मं च व्यवसायत । सङ्कल्पं च सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामह
पुलस्त्यचतभाडाताद्वपनाश्चतुल्लमुनिम् । धपानातदनुमध्यप्रंसमानात्सवसिष्टक
दृष्टेन प्रप्रणा सृष्ट्वा प्रापकागृहमेधिनः । आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्त्वं सप्रवर्तित
तनादेवामुर्गपितृनमनुप्याश्चतुष्टयम् । मिश्रभुर्भगपार्नाश म्वमानमानप्रयोजय
युक्तामन्मृतमोमात्रा हाद्रिकाभृत्प्रजापतेः । ततोऽस्यजयनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेसुतः
उन्मसजामुरात् सृष्ट्वा ता तत्रुं पुरुयोत्तमः । साचोऽसृष्टान्तुस्त्वेनमद्योरात्रिजजायत

सा तमोवहुला यस्मात्प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ।

सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तेनमन्यां गृहीतवान् ॥ ४३ ॥

ततोऽस्यमुगतो देवादीव्यतःसम्प्रजगिरे । न्यक्तासापितनुस्तेनसत्त्वप्रायमभूद्दन्म्
तस्माद्दहो धर्मयुक्ता देवतःसमुपासते । नस्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्यांजगृहेतनुम्
पितृवन्मन्यमानस्यपितरः सम्प्रजगिरे । उत्ससर्ज पितृन्सृष्टानतन्तामपिविश्वदृक्

साऽपविदा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत ।

तस्माद्दहद्देवनानां रात्रिः स्याद्देवचिह्नियाम् ॥ ४७ ॥

तयोर्मध्येपितृणांतुमृत्तिःसन्ध्यागर्ग्यर्था । तस्माद्देवानुगःसर्वेमुनयोमानवास्तदा
उपासते सदा युक्ता रात्र्यहोर्मध्यमां तनुम् ।

रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽसृजन ॥ ४६ ॥

ततोऽस्य जगिरे पुत्रा मनुष्या रजमावृताः । तामथाशु सतत्याजतनुंसयःप्रजापतिः
ज्योत्स्ना सा चाऽभवद्विप्राः प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते ।

ततः स भगवान्ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुत्रावाः ॥ ५२ ॥

मृत्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्यपृजयन् । अन्धकारं क्षुभ्राविष्टा राक्षन्नास्तन्यजगिरे
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्तेनिशाचराः । सर्पायक्ष्मास्तथाभूतागन्धर्वाःसम्प्रजगिरे

रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत्प्रभुः ।

वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवीन्व्यं वक्षमोऽसृजत् ॥ ५४ ॥

मुसताऽजान् ससर्जान्यान् उदराद्वाश्च निर्म्ममे ।

पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गाग्रासभान् गवयान्मृगान् ॥ ५५ ॥

उद्गानश्वतरांश्चैव अरत्नेश्च प्रजापतिः । ओषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जगिरे
गायत्रं चक्रच्चर्चैव त्रिवृत्स्तोमंरथन्तरम् । अग्निष्टोमं च यजानां निर्म्ममेप्रथमान्मुखात्
यजूं पि त्रैष्टुभंछन्दोस्तोमं पञ्चदशं तथा । बृहत्सामतथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात्
सामानि जागतं छन्दस्तोमंसप्तदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्
एकविंशमथर्षाणमासोर्यामाणमेव च । अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ६० ॥

उच्चावधानि भूतानि गात्रेभ्यस्त्वन्यजक्षिरे । ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजनस्तुप्रजापते
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसश्च शुभा ।

सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम् ॥ ६२ ॥

ततोऽसृजच्चभूतानि स्थावरानिचराणि च । नरविज्ररक्षासि च य पशुमृगोरगाश्च
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयंस्थावरजङ्गमम् । तेपायेयानि कर्माणि प्राक्सृष्टे प्रतिपिदिरे
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमाना पुन पुन । हिंसाहिंसो मृदुक्कुरी धर्माधर्मावृताश्रते ॥
तद्वायिता प्रपद्यन्ते तस्मात्तस्य रोचते । महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु
चिन्तियोगं च भूतानाघातैव्यदघातस्त्वयम् । नामरूपं च भूतानां प्राटतानाप्रवक्ष्यन्म
वेदशाब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर । आपाणिचैव नामानि याश्च वेदेषु सृष्ट्य
शर्वयन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यज ।

यावन्ति प्रतिलिङ्गानि नानारूपाणि पत्यये ॥ ६६ ॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भाषा युगादिषु ॥ ७० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे सृष्टिप्रकरणवर्णननाम

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

सुगन्धादिभर्गकथनम्

कूर्म उवाच

एवभूतानिसृष्टानि स्थावरानिचराणिच । यदाभ्यता प्रजा सृष्टानव्यवदन्त धीमत्
तमोमात्रावृत्तो प्रत्यानशरोचनं तु खिल । तत्र स विदधे बुद्धिमथनिश्चयगामिनी
अथत्वनिसमद्राक्षीत्तमोमात्रा नियामिनाम् । रजसर्गं चमवृत्तं यत्समाप्तस्वधर्मत
तमस्तु व्यनुदत्पश्चाद्भुज सरयेन संयुत । तत्तम प्रतिनुष्य वै मिथुनं समजापत् ।

अधर्माचरणोचिप्रा हिंसाच्चाशुभलक्षणा । स्वांतनुंसततोब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्
द्विधाकरोत्पुनर्देहमर्देन पुरुषोऽभवत् । अर्देन नारी पुरुषो विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ६
नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं सरसृजे शुभाम् ।

सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता ॥ ७ ॥

योगैश्वर्यवलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता । योऽभवत्पुरुषात्पुत्रो विराड्व्यक्तजन्मनः ॥
स्वायंभुवोमनुर्देवः सोऽभवत्पुरुषोमुनिः । सा देवी शतरूपाख्यातपःकृत्वासुदुश्चरम्
भर्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत । तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ १० ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम् । तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददे पुनः
प्रजापतिरथाकृतिं मानसो जगृहे रुचिः । आकृत्यामिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेःशुभम्
यज्ञस्यदक्षिणां चैवयाभ्यांसंवर्द्धितं जगत् । यज्ञस्य दक्षिणायां चपुत्राद्वादशजज्ञिरे
यामाइतिसमाख्याता देवाःस्वायंभुवेऽन्तरे । प्रसूत्यांचतया दक्षश्चतस्रोविशर्तितया
ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निवोधत ।

श्रद्धा लक्ष्मीधृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ १५ ॥

बुद्धिर्लज्जा षपुः शान्तिःसिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ।

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दक्षायणीः शुभाः ॥ १६ ॥

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।

ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ १७ ॥

सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा । भृगुर्भवोमरीचिश्च तथाचैवाङ्गिरामुनिः
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित् । अत्रिर्वसिष्ठो बह्विश्च पितरश्च यथाक्रमम्

ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः ।

श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥ २० ॥

धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते ।

पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा ॥ २१ ॥

क्रियायाश्चाभवत्पुत्रो दण्डश्चनय एवच । बुद्ध्याबोधः सुतस्तद्वदप्रमादोऽप्यजायत

तज्जायाविनयपुत्रो वपुशोप्यवसायक । क्षेमःशान्तिमुनश्चापि सिद्धमिद्धैरनायत
यश कीर्त्तिमुतन्तउदित्येते धर्मसुतव । कामस्यदर्पं पुत्रोऽमृद्देवानन्दोऽप्यजायत
इत्येव मे सुखोदर्शं सर्गो धर्मस्य कीर्त्तितः ।

जज्ञे हिंसा त्यधर्माद्दे निगतिं चाकृत सुतम् ॥ २० ॥

निरृतेभ्यस्तनयो यज्ञे भयं नररमेव च । माया च घेदता चैव मित्रुनं त्विदमेतयो ॥
अयाज्जज्ञेऽप्येमाया मृत्युंभूतागहारिणम् । घेदताचमुनश्चापि दुःखजज्ञेऽप्यरीरयान्
मृत्योर्व्याधिर्वराशोर्की कृणा प्रोषध जज्ञिरे ।

दुःखोत्तराम्मृता होने सर्वे धाधर्मलक्षणा ॥ २१ ॥

नेत्रा भार्यास्ति पुत्रो धा भवेतेहृद्भरेतम । इत्येवतामम सर्गोज्ञे धर्मनियामकं
मक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिमुंनिपुङ्गवा ॥ ३० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे मुख्यादिमर्गकथनंतामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भावरर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनतारदाया महर्षय । प्रणम्यधरद् विष्णुं पद्मच्छु सशयान्विता
मुनय ऊचुः

कथितोभवता सर्गो मुख्यादीना जनार्दन ! । इदानीं सशय जेममन्माक छेतुमर्हसि ॥
कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिताकधूक । पुत्रत्वमगमच्छमुर्ल्लणोऽव्यक्तजन्मनं
कथं च भगवावज्ञे ब्रह्मा लोकपितामह । अण्डतो जगतामीशस्तत्रो वक्तुमिहार्हमि
कूर्म उवाच

शृणुष्वमृतय सर्वे शङ्करस्यामितीजस । पुत्रत्व ब्रह्मणान्तस्य पद्मशोनिचमेव च

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम् । आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्ययः
तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे । आश्रित्य शेषशयनं सुष्वापपुरुषोत्तमः ॥
सहस्रशीर्षा भूत्वाससहस्राक्षःसहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः
पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।

ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः ॥ ६ ॥

कदाचित्तस्यसुतस्यलीलार्थदिव्यमद्भुतम् । त्रैलोक्यसारंविमलंनाभ्यांपङ्कजमुद्भवमौ
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।

दिव्यगन्धमयं पुष्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्त्तमानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे
सतंकरेणविश्वात्मा समुत्थाप्यसनातनम् । प्रोवाचमधुरंवाक्यं माययातस्यमोहितः
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाकी को भवांश्चेति ब्रूहि मे पुरुपर्यभ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेवगम्भीरनिःस्वनः
भोभो नारायणं देवलोकानांप्रभवाव्ययम् । महायोगीश्वरं मांचै जानीहिपुरुषोत्तमम्
मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहः । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्
एवमाभाष्य चिश्वत्माप्रोवाचपुरुंहरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानितिवेश्रसम्

नतः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।

प्रत्युवाचाऽम्बुजामाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥ १६ ॥

बहंधाताविध्राता चस्वयम्भूःप्रपितामहः । मन्येवसंस्थितंविश्वं ब्रह्माहंविश्वतोमुखः
श्रुत्वा वाचंसभगवान्विष्णुः सत्यपराक्रमः । अनुज्ञाप्याथयोगेन प्रविष्टोब्रह्मणस्तनुम्
त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम् । उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा चिस्मयमागतः ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।

अथापि भगवान्विष्णुः पितामहथाव्रवीत् ॥ २३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् । प्रविश्य लोकान्पश्यंतान्विचित्रान्पुरुपर्यभ
नतः प्रहादिर्नो वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरम्भूयःप्रविशेशकुशाश्वजः

लज्जायाचिनय पुत्रो वपुषोव्यवसायक । क्षेम शान्तिसुतश्चापि सिद्ध सिद्धेरजायत
यश कीर्त्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसुतय । कामस्यद्वयं पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत
इत्येष वै सुखोदकं सर्गो धर्मस्य कीर्त्तित* ।

जज्ञे हिंसा त्वधर्माङ्गैर्निर्गतिं चावृत सुतम ॥ २० ॥

नितृतेस्तनयो यज्ञे भय नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुन त्विदमेतयो ॥
भयाज्जज्ञेऽधवेमाया मृयु भृतापहारिणम् । वेदनाश्चसुतस्यापि दुःखजज्ञेऽथरीरपात्
मृत्योर्व्याधिर्जराशोको तृष्णा क्रोधश्च जज्ञिरे ।

दुःखोत्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणा ॥ २१ ॥

ज्ञेया भार्यामित्र पुत्रो वा सर्वेतेहूर्द्धरेतस । इत्येयतामस सर्गोजज्ञे धर्मनियामकं
सक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिमुनिपुङ्गवा ॥ ३० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे मुख्यादिसर्गकथननामाऽष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भावरर्णनम्

सुत उवाच

पतच्छ्रुत्वा तु वचननारदाया महर्षय । प्रणम्यवरदं चिष्युं पप्रच्छु संशयान्वितां
सुतय उचुः

कथिनोभवता सर्गो मुत्पयादीना जनार्द्धन । इदानीं संशयं त्वेममस्माकं त्वेत्सुमर्हसि ॥
कथं स भगवानीश पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । पुत्रत्वमगमच्छ मुर्ध्वल्लणोऽप्यकजन्म
कथं च भगवा वज्ञे ब्रह्मा लोकपितामह । अण्डतो जगतामीशस्तजो वन्मुमिहाहति

कूर्म उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे शङ्करस्यामितीजस । पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनिस्त्वमेव च

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम् । आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न स्वर्ग्यः
तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे । आश्रित्य शेषशयनं मुष्वापपुरुषोत्तमः ॥

सहस्रशीर्षा भूत्वाससहस्राक्षःसहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।

ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः ॥ ६ ॥

कदाचित्तस्यनुत्तस्यलीलार्थं दिव्यमद्भुतम् । त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्वभौ

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।

दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे

सतंकरेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम् । प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाकी को भवांश्चेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चिह्नस्य गरुडध्वजः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः

भोभो नारायणं देवलोकानां प्रभवान्वयम् । महायोगीश्वरं मां वै जानीहि पुरुषोत्तमम्

मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहः । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिवृतम्

एवमाभाष्य विश्वत्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानिति वैश्वसम्

नतः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।

प्रत्युवाचाऽम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥ १६ ॥

अहंधाताविधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः । मध्येव संस्थितं चिश्वं ब्रह्माहं चिश्वतो मुखः

श्रुत्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः । अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणास्तनुम्

त्रैलोक्यमेतत्सकलं स देवासुरमानुषम् । उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा चिस्मयमागतः ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पद्मगेन्द्रनिक्षेतनः ।

अथापि भगवान् विष्णुः पितामहथावर्षात् ॥ २३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् । प्रविश्य लोकान् पश्यंतां न्विन्नित्रान् पुरुषर्षभ

सतः प्रह्लादिनीं वार्णीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरसभयः प्रविते

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोक्य ।

तस्य तत्क्रोधजं चाक्यं भ्रुत्वाऽपि न तथा प्रभुः ॥ ४६ ॥

मामेवं च द कल्याण परिचार्द्रं महात्मनः । न मे एचिदितं ब्रह्मन् नान्यभाणं च क्षमि ते
किन्तुमोहयति ब्रह्मज्ञनन्ता पारमेश्वरी । मायाशेषविशेषाणां हेतुगन्तमनुद्गवा ॥४८

पतावद्वयत्वा भगवान्विष्णुस्तृष्णीत्रभूवह । प्रात्वातत्परमंतत्त्वं स्वमात्मानं सुरेश्वरः
कुतोत्पत्तिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः । प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुगर्सीत्ततो हरः ॥५०

ललाटनश्रनो देवो जटामण्डलमण्डितः । त्रिशूलपाणिभंगर्वास्तेजसां परमो निधिः
विद्याविलान्नप्रधितां श्रांः मार्केन्दुतारकः ।

मालामल्यद्रुताकारां धारयन्पादलविर्नाम् ॥ ५२ ॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मालोकपितामहः । मोहितो माययान्यर्थं पीतवाससमप्रधीत्
क एव पुरुषो नीलः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । तंजोराशिवमेयात्मा समाधाति जनाद्भन
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानचमर्द्दनः । अपश्यवर्दाश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलंऽग्नि
ज्ञात्वा तं परमं भावमेश्वरं ब्रह्मभावनः । प्रावाचात्स्थाय भगवान्देवदेवं पितामहम् ॥

अयं देवो महादेवः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।

अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान् ॥ ५७ ॥

शङ्करः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः । भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः
पद्मधाता विधाता च प्रधानः प्रभुरव्ययः । यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः
सृजत्येव जगत्कल्मसं पाति संहरते तथा । कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः । वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शङ्करः
अस्म्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम् । घासु देवामिधानं मामवेहिं प्रपितामह
हि न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् । दिव्यं भवतु ते च भुव्यं न द्रक्ष्यसि तत्परम्
लब्ध्वा चैवं तदा च भुविष्णोर्लाकपितामहः । बुबुधे परमज्ञानं पुरतः समवस्थितम्
स लब्ध्वा परमं ज्ञानमेश्वरं प्रपितामहः । प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ॥६५
ओङ्कारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना । अथर्षशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वर । अवाप परमासीति ध्याजहारस्मर्याधय ॥
 म'समस्त्यतसन्देहोवत्स' भक्तश्चमभवान् । मर्यावोत्पादित'पूर्वं लोकसुखधर्ममन्यय
 त्वमान्माहादिपुराणा ममदेहसमुद्भव । धरधरय चिश्वात्प्रन्वरदोऽह तवान् ॥ ६६ ॥
 स देवदेवचचन निशम्यकमलोद्भव । निरीक्ष्य विष्णुं पुरुष प्रणम्योवाच शङ्करम्
 भगवन्भूतमन्येश महादेवाभिरुक्तापते । त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशमुत्तम
 मोहितोऽस्मि महादेव मायया मुक्षमया त्वया । न जाने परममाययापातप्येननेशिव
 त्वमेव देवदत्ता माता भ्राता पितामुद्भव । प्रसीदतवपादाब्जं नमामि शरणागत
 स तस्य चचन ध्रुत्वा जगन्नाथोवृषभ्यज । व्याजहार तदापुत्र समालोक्यजनद्वन्द्वम्
 यदर्थित भगवता तत्करिष्यामि पुत्रक' । विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यतितथालम्
 त्वमेव सवभूतानामादिकर्ता नियोजित । सुरेश्वनेषु देवेश माया लोकपितामह
 एतन्नाथणो मत्ता ममैव परमा तनु । भविष्यति त्वेशान योगश्रेमवहो हरि ॥७५
 एव व्याहृत्य हस्ताभ्या प्रीत स परमेश्वर । ससृश्य देव ब्रह्माणहरिं वचनमज्जीव
 तुष्टाऽस्मि सवधाऽह ते भक्तस्य च जगन्मय ।

वर वृणीष्य नावाभ्यामन्योऽस्ति परमार्थत ॥ ७६ ॥

धृत्याऽथ देवचचन विष्णुर्विभ्रमयजगन् । प्राह प्रसन्नयाशाचासमालोक्यघतन्मुखम्
 एषएव धर श्लाघ्योयदह परमेश्वरम् । पश्यामि परमात्मान भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥
 तथेत्युक्त्वा महादेव पुनर्विष्णुममागत । भवान्तर्जस्य कार्यस्य क्त्वाहमधिदैवतम्
 त्वन्मय मन्मथ धव सवमेत्तन्न संशय । भवान्सोमस्त्वहं सूर्यो मवात्रात्रिरहदिनम्
 भवान् प्रकृतिरन्यक्तमह पुरुष एव च । भवान् ज्ञानमह ज्ञाता भवान्मायाहर्माश्वर ॥

भवान्विद्यात्मिका शक्ति शक्तिमानहमाश्वर ।

योऽह स निष्कलो देव सोऽसि नारायण प्रभु ॥ ८५ ॥

एकाभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिन ।

त्वामनाधिन्य चिश्वात्मन्न योगी मानुषैष्यति ॥

पालयंतजगन्कृत्स्न सदेवानुरमानुषम् ॥ ८६ ॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः स्वमायया मोहितभूतभेदः ।

जगाम जन्मर्द्धिचिनाशहीनं धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥ ८७ ॥

इतिश्रीकूर्ममहापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशमोऽध्यायः

रुद्रसृष्टिवर्णनम्

कूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामहः । तदेव सुमहत्पद्मं भेजेनाभिसमुत्थितम् ॥ १ ॥

अथदीर्घेणकालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ । महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२॥

क्रोधेन महताचिष्टौ महापर्वतचिग्रहौ । कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥

तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः । त्रैलोक्यकण्ठकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि

तदस्यवचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः । आज्ञापयामासतयोर्वधार्थं पुरुषाद्युभौ ॥३॥

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभृद् द्विजाः !

व्यजयत्कैटभं जिष्णुः विष्णुश्च व्यजयन्मधुम् ॥ ६ ॥

ततःपद्मासनासीनं जगन्नाथः पितामहम् । वभापे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः

अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्माद्वतर प्रभो । नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयंगुरुम्

ततोऽवतीर्य चिश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः ।

अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूतोऽथ विष्णुना ॥ ६ ॥

सह तेनतथाविश्य शङ्खचक्रगदाधरः । ब्रह्मानारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा

सोऽनुभूय चिरंकालमानन्दं परमात्मनः । अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसञ्ज्ञितम्

ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वादेवश्चतुर्मुखः । ससर्जसृष्टितद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः

पुरस्तादसृजद्देवः सतन्द्रं सनकं तथा । ऋभुं सनत्कुमारञ्च पूर्वजं तं सनातनम् ॥

ने ह्यहमोहनिर्मुक्ता परं वैराग्यसाध्यता । विदिरथापरमभाष छानेविदधिरेमनिम्
 तेष्येय निरपेक्षेषु लोकगृह्यो पितामहः । यभूय नष्टयता ये मायया परमेष्ठिन ॥ १५
 तत्र पुराणपुराणो जगन्मूर्ति सनातन । श्यामहाशासन पुत्र माहनाशाय पद्मजम्

विष्णुदयाध

कचिन्नु विस्मृतादय शृणुपाणि सनातन । यदुक्तो धं पुत्राशम्भु पुत्रतये भवराडूर
 प्रयुक्तवान मनोयोऽर्त्तापुत्रत्वेनतुशङ्कर । अवापमश्रुतांगोविन्द्रापमप्योनि पितामह
 प्रचा म्रष्टु मनधय तप परमदुस्तरम् । तस्यैव तत्यमानस्य न किञ्चित्समयसत
 तनोर्गणकात्तदुःखाप्रोधाऽभ्यजायत । प्रोधाविष्णुनेत्राम्यांप्रापनप्रधविन्द्रव
 तनस्त्वस्य समुद्भूता भूता प्रताम्लदाभरत । सर्वांस्तानप्रतोद्गृह्णात्प्रह्ला मानमविन्दत
 जर्होप्राणाधममवानप्रोधाविष्ट प्रजापति । तदाप्राणमयोद्ग प्रादुरार्मात्प्रमोर्मुंछादि
 सहस्राण्यगदृशायाुगान्तहृत्तोरम । रोद मुन्धरद्वोर देवदेव स्वयं शिष्य
 रात्प्रान ततो प्रचा मा रोदीरिचभायत । रोदनादुद्गत्यैवलाय स्थानि गमिष्यति
 नयानि सप्तनामानि पत्ना पुत्राश्च शाश्वतान् ।

स्थानानि तयामप्याना र्दी लोकापितामह ॥ १६ ॥

अत्र भवस्तथशान पराता पतिरय च । मामधोप्रोमहादेयस्तानि नामानि सप्तवै ॥
 सूर्यो जग मडा चह्निवायुराकाशमेव च । दक्षिणोब्राह्मणधद्र इत्येता अप्त्सूतय ॥
 स्थानपवनपु ये स्द्राध्यायन्ति प्रणमति च । तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परम धम्

स्वच्छला तथयोमा विवशा च शिवा तथा ।

म्याहान्निशध नीशा च रोहिणी चेति पत्नय ॥ १६ ॥

शतैश्चरस्तथा शुको लोहिताङ्गो मनोजव ।

स्वल् सर्गाऽथ सन्तानो बुधश्चैषा सुता स्मृता ॥ ३० ॥

पद्यप्रकारो भगवान्देवदेवो महेश्वर । प्रजाधर्मञ्च कामञ्चत्यक्त्वा वैराग्यमाधित
 ता मस्याधाय सा प्रानमेश्वरं भावमास्थित । पीत्यातदक्षर प्रह्लाशाश्वतपरमाश्रुतम्
 प्रजा सजेति चादिष्ठो पत्न्या मीरज्ज्येष्ठिनः ।

स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ॥ ३३ ॥

कपर्दिनो निरातङ्गानीलकण्ठान् पिनाकिनः ।

त्रिशूलहस्तान् रुद्रिकान् सदानन्दांखिलोचनान् ॥ ३४ ॥

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान् । वीतरागांश्चसर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभुः
तान्द्रष्ट्वा विविधान् रुद्रान्निर्ममलानीललोहितान् । जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहाग्रहरंगुरुः
मास्त्राक्षीरीदृशीर्द्वेष प्रजामृत्युविवर्जिताः । अन्याः सृजन्मभृते शजन्ममृत्युममन्विताः
ततस्तमाह भगवान् कपर्दीकामशासनः । नास्ति मे तादृशः सर्गः सृजत्वं विविधाः प्रजाः
ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते शुभाः प्रजाः । स्वात्मजैरेव तैरुद्रं निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत
स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद्वेव देवस्य शूलिनः । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः
द्रष्टृत्वमात्मसम्बन्धो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च । अव्ययानि दृशं तानित्यं तिष्ठन्ति शङ्करे
एवं स शङ्करः साक्षात्पिनाकी परमेश्वरः । ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम्
सहैव मानसै रुद्रैः प्रीतिविस्फारलोचनः । ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा ॥

तुष्टाव जगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्चलिम् ।

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव! नमस्ते परमेश्वर ! ॥ ४४ ॥

नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे । नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ॥
प्रधानगुरुपेशाय योगाधिपतये नमः । नमः कालाय रुद्राय महाप्रासाय शूलिने ॥ ४६ ॥
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमोनमः । नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणे जनकाय ते ॥
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने । नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ॥ ४८ ॥
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्त्तये । नमो बुद्ध्याय रुद्राय योगिनां गुरवे नमः ॥ ४९ ॥
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः पखृताय ते । नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ॥
अम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेश्वरिने । नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगिर्द्धिहेतवे ॥
नमो धर्मार्दिगम्याय योगगम्याय ते नमः । नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः

ब्रह्मणो विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने । त्वयैव सृष्टमखिलं त्वज्येय सकलं स्थितम्
त्वया सहियते विश्व प्रधानाद्ये जगन्मय । त्वमीश्वरो महादेव परं ब्रह्म महेश्वर-
परमेष्ठी शिव शान्त पुरुषो निष्कलो हर । त्वमश्वरपरज्योतिस्त्वकाल परमेश्वर-
त्वमेव पुरुषोऽनन्त प्रधान प्रकृतिस्तथा । भूमिरापोऽनलो वायुर्व्यामाहङ्कार एव च

यस्यरूप नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसञ्चितम् ।

यस्यद्यौ भवन्मूर्त्ता पादौ पृथ्वी दिशो भुजा ॥ ५८ ॥

आकाशमुदर तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ।

सन्तापयति यो नित्य स्वभाभिर्भासयन् दिश ॥ ५९ ॥

ब्रह्मतेजोमय विश्व तस्मै नूर्यान्मने नम । हृदय घटति योनित्यरौद्रीतेजोमर्यातनु-
कथ्य पितृगणाना च तस्मै बह्व्यात्मने नम ।

आप्याययति यो नित्य स्वधाम्ना सकल जगत ६१ ॥

पीयते देवतासङ्घैस्तस्मै चन्द्रान्मने नम । विमर्त्यशपभूतानि यान्तश्चरतिसर्वदा
शक्तिर्माहिम्नीतुभ्यं तस्मै चाध्यात्मने नम । सृजत्यशेषमेवेद् य स्वकर्मानुरूपत-
आत्मन्यवस्थितिस्तस्मै चतुर्धक्त्रात्मने नम । य शैतेशेषशयने विश्वमावृत्तमापया-
न्ध्यात्मानुभूतियोगे तस्मै विष्ण्वात्मने नम । विभर्त्ति शिरसानित्यद्विसप्तभुवनान्मकम्
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषान्मने नम ।

य परान्ते परानन्द पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम् ॥ ६६ ॥

अन्यन्यनन्तमहिमा तस्मैऋद्रान्मने नम । योऽन्तरा सर्वभूतानानि वन्तातिष्ठतीश्वर-
यस्यवेशेषु जामता नय सर्वार्हसन्धिषु । कुश्रौसमुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोषात्मने नम
त मयसाक्षिण देवनमस्यै विश्वतस्तनुम् । यं धिनिद्राजित्भवासा सन्तुष्टा ममदर्शिन-
ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगान्मने नम ।

यया सन्तरते माया योगी सङ्क्षीणमल्पम् ॥ ७० ॥

अपारतरपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नम । यस्य भासाविभात्यर्को महोपत्तमस परम्
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं तद्रूपं पारमेश्वरम् । नित्यानन्दं निराधार निष्कलं परमं शिष्यम्

प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् । एवंस्तुत्वा महादेवं ब्रह्मातद्भावभावितः ॥ ७३

प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्मसनातनम् ।

ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम् ॥ ७४ ॥

ऐश्वरं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः । कराभ्यांकोमलाभ्यांचसंसृष्टयप्रणतार्त्तिहा
व्याजहार स्मयन्नेव सोऽनुगृह्य पितामहम् । यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वेभवतामम
कृतं मया तत्सकलं सृजस्व विविधं जगत् ।

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया ॥ ७७ ॥

सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः । स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः
ममैव दक्षिणादङ्गाद्रामाङ्गात्पुरुषोत्तमः । तस्यदेवाधिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः ॥
सम्यभूवाथ रुद्रोवा सोऽहंतस्यपरातनुः । ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः ।

तथाऽन्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च ॥ ८१ ॥

अरूपःकेवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः । य एभ्यःपरतोदेवस्त्रिमूर्त्तिः परमातनुः
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा । तस्याएवपरांमूर्त्तिमामवेहि पितामह
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानं तेजोयोगसमन्वितम् । सोऽहं त्रसामिसकलमधिष्ठायतमोगुणम्
कालोभूत्वानमनसामामन्योऽभिभविष्यति । यदायदाहिमानित्यंविचिन्तयसिपद्मज
तदातदा मे सान्निध्यंभविष्यतितवानद्य । एतावदुत्त्वाब्रह्माणःसोऽभिवन्द्य गुरुं हरः
सर्हव मानसैःपुत्रैःक्षणादन्तरधीयत । सोऽपि योगं समास्थायससर्ज विविधंजगत्
नारायणख्योभगवान्यथापूर्वंप्रजापतिः । मरीचिभृशङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमर्त्रिं वशिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया । नवब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयो मतः ॥

सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधकाः ब्रह्मवादिनः ॥ ८६ ॥

सङ्कल्पञ्चैव धर्मञ्च युगधर्मांश्च शाश्वतान् ।

स्थानाभिमानिनःसर्वान्यथा ते कथितम्पुरा ॥ ९० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे रुद्रसृष्टिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनपूर्वकं देवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम्

सूत उवाच

इत्याकर्ण्यार्थं मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम् । विष्णुनापुनरेवेमं प्रपच्छुःप्रणता हरिम्
ऋषय ऊचुः

कैषाभगवती देवी शङ्करार्द्धशरीरिणी । शिवा सती हैमवती यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्
तेषां तद्वचनं श्रुत्वामुनीनां पुरुषोत्तमः । प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमम्पदम्
कूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभने । रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥
साङ्ख्यानानां परमं साङ्ख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम् । संसारार्णवमशानां जन्तानामेकमोचनम्
या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपा तिलालसा । व्योमसंज्ञा परा काष्ठासेयं हैमवती मता
शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीतातिनिष्कला । एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपा तिलालसा
अनन्या निष्कले तत्रै संस्थिता तस्य तेजसा ।

स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला ॥ ८ ॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः । परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ ॥
सेयं करोति सकलं तस्याः कार्क्यमिदं जगत् । नकार्क्यनापिकरणमीश्वरस्येति सूर्यः
चतस्रः शक्तयो देव्यास्वरूपत्वेन संस्थिताः । अधिष्ठानवशात्तस्याः शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः
शान्तिर्विद्याप्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः । चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः
अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते । चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मुर्तिर्महेश्वरः ॥ १३ ॥
अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यं मतुलं महत् । तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका । प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः
तत्र सर्वमिदं प्रोतमो तत्रैवाखिलजगत् । स कालाग्निर्हरो देवो गीयते वेद्वादिभिः

कालगृहतिभूतानिवाय मंदरनिप्रज्ञा । सर्वे वाग्यस्यशशा न वाग्यस्यचिद्वशा
 प्रधानपुराणस्यमहातात्पर्यवृत्ति । वाग्येनग्यानितस्याति समापिष्टानियोगिता
 तस्य सव्यज्ञगन्मुक्ति शक्तिमायेति विधत्ता । तदेवंभ्रामयेदीशो मायार्थापुरुषोत्तम
 संया मायात्मिका शक्ति सत्प्राकारा मत्तानती ।

विभ्ररूप मत्तेशस्य सव्यंश सम्प्रकाशयेत् ॥ २० ॥

अस्याध शक्तयो मुग्धास्तस्य देवस्य निर्दिष्टता ।

अनशक्ति क्रियाशक्ति प्राणशक्तिरितिप्रथम ॥ २१ ॥

मयासादेवशक्तताशक्तिमन्तोपिनिर्दिष्टता । मायार्थेवाथविदेष्टासाधातादिरतभरा
 सव्यशक्त्यात्मिकासायादुनिगारादुत्पद्यता । मायार्थाशयंशर्तेश कालकालकरप्रभु
 करतिवाग्य मत्तसंहरेत्कालपय हि । काल स्थापयतेविद्येकालाधीनिमिद्वज्रगत्
 लक्ष्या दृषाधिद्वयस्य सन्निधि परमेष्ठित ।

अनन्तस्यागितेशस्य शक्तौ काला मत्त प्रभो ॥ २२ ॥

प्रधान पर्या माया माया संय प्रपद्यते । एका सव्यंमत्तानन्तादेयला निष्कला शिवा
 एका शक्ति शिर्षकाऽपि शक्तिमनुच्यतेऽश्व ।

शक्तय शक्तिमत्ताऽप्ये सर्वशक्तिमद्भवा ॥ २३ ॥

शक्तिशक्तिमत्ताभं वर्तन्ति परमार्थत । भ्रमेऽज्ञानुपपद्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तका
 शक्त्यागितिकश्चा शक्तिमानधशदूर । विद्याय कथ्यते चाय पुराणे ब्रह्मवादिभि
 भोग्या विद्वज्जगत्वा महेश्वरपतिप्रजा । प्रोच्यतेप्रगवाग्मोक्ता कपर्दीनीललोहित
 मन्ताविद्वज्जगत्वा शदृगमन्तधामनक । प्रोच्यतेप्रतिरीशार्ता मन्तव्याधविचारत
 इत्येकस्मिन् विद्या शक्तिशक्तिमद्भुवम् । प्रोच्यतेसर्व्यं देषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि
 एतत्प्रगित क्रिय देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।

मत्तप्रान्तगादपु निश्चितब्रह्मजादिभि ॥ २३ ॥

एक सव्यगन मृदम कृष्टमध्यमथलध्वम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्तिमहादेव्या परम्पदम्
 धानन्मभर ब्रह्म केचन निष्कल परम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्या परम्पदम्

द्वादशोऽध्यायः] * श्रीदेव्याहिमालयायदिव्यदृष्टिप्रदानवर्णनम् * ४३

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमम्पदम्
शुभं निरञ्जनंशुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम् । आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमम्पदम्

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।

संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात् ॥ ३८ ॥

तस्माद्धिमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।

आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वाचपुत्रींशर्वाणीं तपस्तप्त्वासुदुश्चरन् । सभाच्यः शरणंयातः पार्वतीं परमेश्वरीम्
तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम् । मेना हिमवतःपत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्

मेनोवाच

पश्य बालामिमां राजब्राजीवसद्रूशाननाम् । हिताय सर्वभूतानांजाताचतपसाऽऽवयोः

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।

कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥ ४३ ॥

अष्टहस्तां विशालार्क्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ।

निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ॥ ४४ ॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चाऽतिविह्वलः ।

भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ ४५ ॥

हिमवानुवाच

कात्वंदेवि विशालाक्षिशशाङ्कावयवाङ्किते ! न जाने त्वामहं वत्सेयथा वदूहि पृच्छते
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी । व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ ४८ ॥

अनन्यामव्ययामेकायां पश्यन्ति मुमुक्षवः । अहं हि सर्वभावानामात्मा सर्वात्मना शिवा
शाश्वतैश्वर्यं विज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका । अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्य मेरूपमैश्वरम् । एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम्

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमम्पदम्
शुभं निरञ्जनंशुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम् । आत्मोपलब्धिधिपयंदेव्यास्तत्परमम्पदम्

सैपा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।

संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयान् ॥ ३८ ॥

तस्माद्धिमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।

आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वाचपुत्रींशर्वाणीतपस्तप्त्वासुदुश्चरन् । सभाच्यःशरणंयातःपार्वतींपरमेश्वरीम्
तां दृष्ट्वा जायमानाश्च स्वेच्छयैव वराननाम् । मेना हिमवतःपत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्

मेनोवाच

पश्य बालामिमंराजत्राजीवसदृशाननाम् । हिताय सर्वभूतानांजाताचतपसाऽऽवयोः

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।

कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥ ४३ ॥

अष्टहस्तां विशालार्क्षीं चन्द्रावयघभूषणाम् ।

निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्रव्यक्तिवर्जिताम् ॥ ४४ ॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चाऽतिविह्वलः ।

भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ ४५ ॥

हिमवानुवाच

कात्वंदेविशालाक्षिशशाङ्कावयवाङ्किते ! न जाने त्वामहंवत्सेयथावद्ब्रूहिपृच्छते
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी । व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा

श्रीदेव्युवाच

मां चिद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ ४८ ॥

अनन्यामव्ययामेकांयांपश्यन्तिमुमुक्षवः । अहं हि सर्वभावानामात्मासर्वात्मनाशिवा
शाश्वतेश्वर्य्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका । अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी
दिव्यं द्दामि ते चक्षुःपश्यमेरूपमैश्वरम् । एतावदुक्त्वाविज्ञानं दत्त्वाहिमवतेस्वयम्

स्य रूपं दर्शयामास दिव्यतन्परमेश्वरम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशतेजोविम्बनिरातुलम्
ज्वालामालासहस्राद्य कालानलशतोपमम् । त्र्यम्बकरालदुर्द्धपं जटामण्डलमण्डितम्
किरीटिनगदाहस्तं शङ्खचक्रधरं तथा । त्रिशूलपरहस्तञ्च घोररूपभयानकम् ॥ ४॥
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्तश्चर्य्यसयुतम् । चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्
किरीटिनगदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्
शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं वृत्तिवाससम् ।

धण्डस्य चाण्डबाह्यस्य याशमाभ्यन्तरं परम् ॥ ५१ ॥

सवशक्तिमयं शुद्धं सवाकारं सनाननम् । ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम्
सवतः पाणिपादान्तं सवतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सवमात्रस्य त्रिघूर्णीं ददश परमेश्वरीम् ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वा नदीदृष्ट्वा रूपं दद्यात् माहेश्वरम्परम् । भयेनैव समाविष्टं स राजा हृष्टमानसः ॥
नामन्त्यायाय धामानमोद्गारं समनुस्मरन् । नाम्नामणसहस्रेण तुषाथ परमेश्वरीम्
हिमवानुवाच

शिवाद्या परमाशक्तिरन्ता निकलामला । शान्तामाहेश्वरीनित्याशाश्वतीपरमाक्षरा
अचिन्त्या किंवलाऽनन्त्या शिवात्मा परमात्मिका ।

अनात्त्रियया शुद्धा देवा मा सवगाऽचला ॥ ६३ ॥

एकानेकविभागस्था मायातातासुनिर्मला । महामाहेश्वरी सन्त्यामहादेवी निरङ्गना
काष्ठा सवान्तरन्धाद्य चिच्छक्तिरतिलालसा ।

नन्त्या सवात्मिका विद्या ज्योतीरूपासृताक्षरा ॥ ६४ ॥

शान्तिं प्रतिष्ठासवपानिभुक्तिरमृतप्रदा । श्वोमर्त्तुर्लियोमलवाच्योमाधाराच्युतामरा
अनात्त्रियताऽमोराकारणात्प्राकुलाकुला । स्वैतं प्रथमतानाभिरमृतस्यमसप्रया

प्राणेश्वरप्रियामाता महामहिषवासिनी । प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ॥
महामायासुदुर्गासृतामृतप्रतिराश्वरी । सवशक्तिरालाकारान्योक्त्वाधीर्म्महिमास्पदा
सवशक्तिरन्त्याद्य सर्गभूतेश्वरी । ससायोति सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ॥

संसारपोता दुर्वारा दुर्निरीक्ष्यां दुरासदा ।

प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला ॥ ७२ ॥

महाविभूतिर्दुर्द्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा । अनाद्यनन्तविभवा परमाद्याऽपकर्षिणी ॥
सर्गस्थित्यन्तकरणीसुदुर्वाच्यादुरत्यया । शब्दयोनिःशब्दमयीनादाख्यानाद्विग्रहा
अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी । आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी
महामाया सुदुष्पारा मूलप्रकृतिरीश्वरी । प्रधानपुरपातीता प्रधानपुरपात्मिका ॥
पुराणा चिन्मयीपुंसामादिपूरुपरूपिणी । भूतान्तरस्थाकूटस्थामहापुरुषसञ्ज्ञिता
जन्ममृत्युजरार्तातासर्वशक्तिसमन्विता । व्यापिनीचानवच्छिन्नाप्रधानानुप्रवेशिनी
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता । अनादिमायासम्भिन्नात्रितत्त्वाप्रकृतिग्रहा ॥

महामायासमुत्पन्ना तामसीपौरुषी ध्रुवा ।

व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ल प्रसूतिका ॥ ७६ ॥

अकार्या कार्याजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी ।

सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी ॥ ८० ॥

ब्रह्मगर्भाचतुर्विंशतिपञ्चनाभाच्युतात्मिका । वैद्युतीशाश्वतीयोनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया
सर्वाधारामहारूपासर्वेश्वर्यसमन्विता । विश्वरूपामहागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी
महीयसी ब्रह्मयोनिः महालक्ष्मीसमुद्भवा । महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका
सर्वसाधारणी सूक्ष्माह्वविद्यापारमार्थिका । अनन्तरूपानन्तस्थादेवीपुरुषमोहिनी
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता । ब्रह्मजन्माहरेर्मूर्त्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका
ब्रह्मेशविष्णुजननीब्रह्माख्याब्रह्मसंश्रया । व्यक्ता प्रथमजाब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिणी
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता ।

अपां योनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा ॥ ८७ ॥

ईश्वराणी च शर्वाणी शङ्करार्द्धशरीरिणी । भवानीचैव रुद्राणीमहालक्ष्मीरथाभिवका
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा
'ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शङ्करेच्छानुवर्तिनी । ईश्वरार्द्धासनगता महेश्वरपतिव्रता ॥ ९० ॥

सहृदिमानामव्यासिसमुद्रपरिशोषिणी । पार्वती हिमपरसुश्री परमानन्ददायिना
गुणाट्टरा योगजा योष्या ज्ञानमूर्तिर्विशशिनी ।

सावित्री कमला लक्ष्मी ध्यानन्तोरसिन्धिता ॥ ६२ ॥

सरोजनिलयागद्गा योगनिद्रा सुगर्दिनी । सरस्वता सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठासुमङ्गला

यादेवी घरदा पाच्या कीर्ति सर्वार्थसाधिका ।

योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुराभिता ॥ ६४ ॥

गुणविद्याऽऽत्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता ।

स्वाहा विभ्रमरा सिद्धि स्वधा मेधा धृति धृति ॥ ६५ ॥

नीति सुनीति सुव्रतिमाधयी नर्याहिनी ।

पूज्याविभायती सौम्या भोगिनी भोगशायिनी ॥ ६६ ॥

शोभा च शङ्करिलोलामालिनीपरमैष्ठिनी । त्रैलोक्यसुन्दरीनभ्यासुन्दरीकामचारिणी

महानुभावा सख्यस्था भदामहिमर्दिनी । पद्मनामा पापहरा पित्रिभ्रमुकुटाङ्गदा ॥

कान्ताचित्रामरधरादिव्याभरणभूयिता । हस्ताभ्याव्योमनिलयाजगरसृष्टिविद्यार्दिनी

नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नन्दिनीभद्रकालिका । आदित्यवर्णाकौबेरीमयूरचर्याहना

चृपासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता । अदितिर्नियता रौद्रापद्मगर्भाविद्याहना

विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी । महाफलाऽनवद्याङ्गी कामरूपा विभायरी

विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्त्तिप्रभञ्जना । कौशिकी कपर्णारात्रिखिदशार्त्तिविनाशिनी

बहुरूपा स्वरूपा च विरूपारूपवर्जिता । भक्तार्त्तिरामनी भव्या भयतापविनाशिनी

निर्गुणा नित्यविभवा नि मारानिरपत्रपा । तपस्विनीसामर्गातिर्भवाङ्कनिल्यालया

दाशा विद्याधरा दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी ।

सर्वानिराशयिना विभवा सख्यसिद्धिप्रदायिनी ॥ १०६ ॥

सर्वेश्वरप्रियामार्या समुद्रान्तरवासिनी । अकलङ्का निराधाया नियसिद्धानिरामया

कामधेनुवृ हृद्भा धीमती मोहनाशिनी । नि सङ्कल्पा निरातङ्का चिनया चिनयप्रिया

ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवा मत्तोमयी । महाभगवती भगा चासुदेवसमुद्रया ॥

महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा । ज्ञानजेया जरातीता वेदान्तविषयागतिः ॥
दक्षिणा दहती दीर्घा सर्वभूतनमस्कृता । योगमाया विभागजा महामोहा गरीयसी
सन्ध्यासर्वसमुद्गमृतित्रंलविद्याश्रयादिभिः । याजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः
क्षान्तिः प्रज्ञा चित्तिः सच्चिन्महाभोगान्द्रशायिनी ।

विकृतिः शाङ्करी शास्तिर्गणगन्धर्व्वसेचिता ॥ ११३ ॥

चैश्वानरीमहाशालासहासेनागुहप्रिया । महारात्रिः शिवानन्दाशचीदुःस्वप्ननाशिनी
इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूषिणी ।

तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता ॥ ११५ ॥

गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठामरुत्सुता । हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा
जगद्योनिजगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा । बुद्धिमहाबुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता ।

सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदि स्थिता ॥ ११८ ॥

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोल्या । ब्रह्मणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणी
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्त्तिका । सुमालिनी सुरूपाचभाविनी हारिणीप्रभा
उन्मीलनीसर्वसहासर्वप्रत्ययसाक्षिणी । सुसौम्या चन्द्रवदनाताण्डवासकमानसा
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिमलत्रयविनाशिनी । जगत्प्रिया जगन्मूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिरमृताश्रया
निराश्रया निराहारानिरङ्कुशपद्मोद्भवा । चन्द्रहस्ताविचित्राङ्गीस्रग्विणी पद्मधाग्िणी
परावरविधानजा महापुरुषपूर्वजा । विश्वेश्वरप्रिया विद्युद्धिद्युज्जिह्वा जितश्रमा
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा । सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया
क्षालिनी मृण्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मत्रोधिका ।

महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ॥ १२६ ॥

व्योमलक्ष्मीः सिंहस्था चेकितानाऽमितप्रभा ।

वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ॥ १२७ ॥

अनाहता कुण्डलिनी नलिनीपद्मभासिनी । सदानन्दासदाकीर्त्तिःसर्वभूताश्रयस्थिता

वाग्देवता ब्रह्मकला कलानांता कलारणी । ब्रह्मर्षिर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया
व्योमशक्तिः त्रियाशक्तिर्जातशक्तिः परा गतिः ।

क्षोभिका शन्धिका भेदा भेदाभेदविचर्जिता ॥ १३० ॥

अभिजा भिन्नमस्थाना परिनीचशहारिणी । गुहाशक्तिर्गुणार्तातासर्वदासर्वतोमुखी
भगिनाभगवत्पत्नी सकला कालहारिणी । सर्वयित् सर्वतोभद्रागुहातीतागुहाबलि-
प्रक्रियावागमाता च गङ्गाविश्वेश्वरीश्वरी । कलिलाकपिलाकान्ताकमलामाकरान्तरा
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरम्सरा । पोरिणी परमेश्वर्यभूतिदाम्भूतिभूषणा
पञ्चमसमुत्पत्ति परमाधाधिग्रहा । धम्मोदया भानुमती योगिनेया मनोजवा
मनारमा मनारस्का तापसा वेदरूपिणी । वेदशक्तिर्चेत्माता वेदविद्याप्रकाशिनी
यागेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमया ।

विश्वाम्ब्या वियन्मूर्तिर्विद्यन्माला विहायसी ॥ १३१ ॥

किष्किरा सुग्धा विद्या नन्दिता नन्दिधहमा । भारती परमानन्दा परापरधिभेदिना
सप्तप्रहरणापता काम्या कामेश्वरश्वरी । अर्घन्त्यानन्तविभवा भूतेषा कनरप्रभा
कूर्माण्डा धनरतादरा सुगन्धा गन्धदायिनी ।

त्रिविक्रमपदान्भूता धनुष्पापि शिवोदया ॥ १४० ॥

सुदुग्धा धनाध्यक्षाध्यापिङ्गुलाघता । शान्ति प्रभावतीर्दासि पटुजायतलोचना
आद्या भू कमलाद्भूता गद्या माता रणप्रिया ।

स्वाम्ब्या गिरिरा शुद्धिर्निव्यपुष्टा निरन्तरा ॥ १४१ ॥

दुगाका वायनीचण्डा चर्चिताद्गामुविग्रहा । हिरण्यवपा जगती जगद्यन्त्रप्रवर्तिना
मन्त्राङ्गनिवासि च गण्डा स्वणमालिनी । रत्नमाला रत्नगमा पुष्टिर्विश्वप्रमाधिनी
पद्मनाभा पद्मनिना त्रियम्णामृताद्या । पुन्वती दुष्प्रकम्पा च सूर्यमाता दृग्दूती
मन्त्रभगिना सर्वम्यावरण्या धरदायिका । कल्याणा कमलावासा पञ्चशुद्धा परप्रदा
वास्य प्रमन्वरा विद्या दुष्प्रयादुरतिक्रमा । कालरात्रिर्महादेया धीरभद्रप्रिया हिता
चन्द्रकालावगमाता मनना भद्रदायिनी । कराला पिङ्गुलाङ्गा कालभेदाह्लास्यना

यशस्विनी यशोदा च पङ्ध्वपरिवर्त्तिका (पङ्क्तुपरिवर्त्तिनी) ।

शङ्खिनी पद्मिनी साङ्ख्या साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिका ॥ १४६ ॥

चैत्रा सम्वत्सराख्ण्डा जगत्सम्पूरणी ध्वजा ।

शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्पुग्रीवा कलिप्रिया ॥ १५० ॥

गध्वजा खगाख्ण्डा वाराही पूगमालिनी । ऐश्वर्यपद्मनिलया विरक्ता गरुडास-
जयन्ती हृद्गुहा गम्या गहरंष्टा गणाप्रणीः ।

सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविद्वानदायिनी ॥ १५२ ॥

कलिः कल्कविहन्त्री च गुह्योपनिपदुत्तमा ।

निष्ठा वृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती ॥ १५३ ॥

विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता । लोहितासर्पमाला चभापर्णावनमालि-
अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा । नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खस्रजगदा-
सङ्कर्षणी समुत्पत्तिरभिकापादसंश्रया ।

महान्वाला महाभूतिः सुमूर्तिः सर्वकामधुक् ॥ १५६ ॥

शुभ्राच्च सुस्तना सौरीधर्मकामार्थमोक्षदा । भ्रूमध्यनिलयापूर्वा पुराणपुराया-
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयनासमा । अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदल-
सर्वशक्त्यासनाख्ण्डा धर्माधर्मविवर्जिता । वैराग्यज्ञाननिरतानिरालोकानिरिनि-
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी । स्थानेश्वरीनिरानन्दा त्रिशूलवरुणा-
अशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता वरदेवता । गणाभिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिर्पा-
अवर्णा वर्णरहिता त्रिवर्णा जीवसम्भवा । अनन्तवर्णाऽनन्यस्थाशङ्करीशान्तमा-
अगोत्रा गोमतीगोप्त्रीगुह्यरूपा गुणोत्तरा । गौर्गोर्गोव्यप्रियागौर्णानणेश्वरनमस्

सत्यभामा सत्यसन्ध्या त्रिसन्ध्या सन्धिवर्जिता ।

सर्ववादाध्रया सङ्ख्या साङ्ख्ययोगसमुद्भवा ॥ १६४ ॥

असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्याशुद्धकुलोद्भवा । विन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुचामाश्रि

त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंधया ।

शान्ता भीता मलातीता निर्दिकारा शिवाश्रया ॥ १६७ ॥

शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी ।

दैत्यदानवनिम्माधी काश्यपी कालकर्णिका ॥ १६८ ॥

शाश्वयोनि क्रियामूर्त्तिश्चतुस्रप्रदर्शिका । नागयणीनरोत्पत्ति कौमुदीलिङ्गधारिणी
 कामुकी कलिताभावा पराधरविभृतिदा । पराङ्गजातमहिमा घञ्ज्या घामलोचना
 सुमद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा । मनश्चिनी मन्वुमाता महामन्युसमुद्भवा
 अमन्युस्मृतान्वादा पुरहृता पुरुषुता । अशोक्या भिक्षुचिपया हिरण्यरजतप्रिया
 हिरण्यरजनी हैमा हेमाभरणभूषिता । विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्मेषलप्रदा
 महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रासत्यदेवता । शीर्षाककुक्षिनी हृद्याशान्तिदाशान्तिपर्द्धिनी
 लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्त्तिका । त्रिशक्तिजननी जन्या पद्ममिपत्तिर्जिता
 सुधीताकम्मकरणी युगान्तदहनात्मिका । सकरणीजगद्धात्री कामयोनि विरीटिनी
 ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता घैष्णयी परमेध्वरी । प्रद्युम्नदयितादात्री युगमृष्टिम्बिलोचना
 मद्भो बटा हसगति प्रघण्टा घण्डधिक्रमा ।

सुपावशा घियन्माता विन्ध्यपर्व्वतवासिनी ॥ १७१ ॥

हिमचमरुनिलया कलासगिरिवासिनी । घाणूरहन्तनया नीतिज्ञा कामरूपिणी
 यद्विद्या व्रतज्ञाना ग्रन्थशैलनिवासिनी । धारमद्रप्रजा धीरा महाकामसमुद्भवा
 विद्याधरप्रिया सिद्धाविद्या ररनिरागति । आप्यायनीहरतीचपायनी पोरर्णाकला
 मातृकाममथोद्भूता धारिजा घाहनप्रिया । फरीणिणीसुधाघाणीधीयाघादनत्पर
 सपिता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मनी ।

अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्गा मान्नायिनी ॥ १७३ ॥

घसुप्रणा घसुमता घसोद्धारा घसुन्धरा । धाराधरा धारारोहा परावामसहस्रदा
 धीफला धीमती धाशा धीनिधासा शिवप्रिया ।

३३३३३३ धीधरी कला धीधरकलाधरीणिनी ॥ १७५ ॥

धनन्तद्रष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया । निहन्त्रीदैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना
 सुवर्चला चसुश्रोणी सुकीर्तिश्छिन्नसंशया । रसजा रसदारामालेलिहानाऽमृतहवा
 नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतर्जावना । वज्रदण्डावज्रजिह्वावैदेही वज्रचिप्रहा
 मङ्गल्या मङ्गला माला निर्मला मलहारिणी ।

गान्धर्वीं करुका चान्द्री कम्यलाश्वतरप्रिया ॥ १८६ ॥

सौदामिनी जनानन्दाभ्रकुटीकुटिलानना । कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी
 युगन्धरायुगावर्त्तात्रिसन्ध्या हर्षवर्द्धनी । प्रत्यक्षदेवता दिव्यादिव्यगन्धा दिवःपरा
 शक्रासनगता शाक्रीसाध्याचारुशरासना । इष्टाविशिष्टाशिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता
 शतरूपा शतावर्त्ताचिनता सुगभिःसुरा । सुरेन्द्रमाता सुद्युम्नासुपुम्नासूर्यसंस्थिता
 समीक्ष्यासत्प्रतिष्ठा चनिवृत्तिर्ज्ञानपारगा । धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञाधर्मवाहना
 धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा ।

धर्मशक्तिर्धर्ममयी चिधर्मा विश्वधर्मिणी ॥ १६५ ॥

धर्मान्तरा धर्ममयी धर्मपूर्वा धनावहा । धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा
 कापाली शकला मूर्तिःकलाकलितचिप्रहा । सर्वशक्तिविनिर्मुक्तासर्वशक्त्याश्रयाश्रया
 सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी । प्रधानगुरुपेशेशा महादेवकसाक्षिणी
 सदाशिवा वियन्मूर्तिर्वेदमूर्तिरमूर्त्तिका ।

एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान्गिरिः ॥ १६६ ॥

भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः । यदेतद्देश्वरं रूपं धोरन्ते परमेश्वरि
 भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्टारूपमन्यत्प्रदर्शय । एवमुक्ताऽथ सा देवी तेनशैलेनपाव्वती
 संहत्य दर्शयामास स्वरूपमपरम्पुनः ।

नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलमुगन्धि च ॥ २०२ ॥

द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् । रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्
 श्रीमद्विलाससद्वृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम् । भूषितं चारुसर्वाङ्गभूषणैरतिकोमलम्
 दधानमुरसामालां विशालां हेमनिर्मिताम् । ईषत्स्मितं सुविम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम्

प्रसन्नवदन दिव्यमनन्तमहिमास्फुटम् । तद्वीदृश समालोक्य स्वरूप शैलसत्तम
भीतिं सन्त्यज्य हृष्टात्मा यभावे परमेश्वराम् ।

हिमयानुवाच

अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलं तप ॥ २०७ ॥

यन्म साक्षात्त्वमभ्यस्त प्रपन्ना दृष्टिगोचरम् ।

त्वया सृष्ट जगत्सर्वं प्रधानाद्य त्वयि स्थितम् ॥ २०८ ॥

त्वय्येव लायते देवित्वमेव परमा गति । वदन्ति केचित्त्वामेव प्रवृत्तिप्रवृत्ते पराम्
अपरे परमार्थज्ञा शिष्येति शिवसत्प्रयात् । त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वर
अविद्या नियतिर्मायाकलाद्या शतशोऽभवन् । त्यहिसापरमाशक्तिरनन्तापरमेष्ठिनी
सवभेदचित्तिमुक्ता सचभेदाश्रयाश्रया । त्वामधिष्ठाय योगशिः महादेवो महेश्वर
प्रधानाद्य जगत्सर्वं करोति विकरोति च । त्वयैव सद्भूतोदेव स्वात्मानन्दसमश्नुते
त्वमेव परमातन्द्स्त्वमेवानन्दशायिनी । त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निर्जनम्
शिव सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।

त्व शब्दं सचदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि ॥ २१० ॥

वायुरल्यता दधियोगिनात्पकुमारम् । शृणीणाञ्चवसिष्ठस्त्व ध्यामोऽेद्विदामसि
सारथ्यानाकपिलोदेवोऽरुद्राणाञ्चापिशङ्कर । आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वचसनाञ्चैवपाचक
वेदानां सामयेदस्त्व गायत्रीं चउन्दमामसि ।

अध्यात्मविद्यां विद्यानां गतीनां परमा गति ॥ २१८ ॥

मायावन्मवशक्तानां कालं कलयतामसि । ओङ्कारं सचगत्यानां घणानाञ्चद्विजोत्तमं
आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वरार्णां महेश्वर । पुसात्घमेकं पुरुषं सर्वभूतहृदिस्थितं
सर्वोपनिषदां देविं गुह्योपनिषदुच्यते । ईशानश्चापि कल्पानां युगानां हृतमेव च
आदित्यं सचमाणां धात्र्यां देवीं सरस्वती ।

त्वत्सर्वमायां चरुपाणां विष्णुमायाविनामसि ॥ २२२ ॥

अरुन्धता सर्तानां त्वं सुपणं पततामसि । सूक्तानां परीर्यं सक्तसामज्येष्टं चसामसु

सावित्रीचापिजाप्यानां यजुषांशतरुद्रियम् । पर्वतानां महामेरुनन्तो भोगिनामपि
 सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ २२५ ॥ -
 रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।
 अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥ २२६ ॥
 यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितायाः ।
 आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥ २२७ ॥
 अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।
 तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणानिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २२८ ॥
 आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नमस्यं प्रकृतेः परस्तात् ।
 कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव तगामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥ ५२६ ॥
 सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रयं जन्मविनाशहीनम् ।
 सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम् ॥ २३० ॥
 आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मर्वाजम् ।
 ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि! नतोऽस्मि रूपम् ॥ २३१ ॥
 द्विसप्तलोकात्मकमभ्युसंस्थं विचित्रभेदं पुरुषैकताथम् ।
 अनेकभेदरधिवासितं ते नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसञ्जम् ॥ २३२ ॥
 अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं त्वत्तेजसा पृथितलोकभेदम् ।
 त्रिकालहेतुं परप्रेष्टिमञ्ज्रं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम् ॥ २३३ ॥
 सहस्रमूर्द्धानिमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।
 शयानमन्तः सलिले तथैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २३५ ॥
 दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्धं युगान्तकालानलकर्तृरूपम् ।
 अशेषभूताण्डविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसञ्जम् ॥ २३५ ॥
 फणासहस्रेण विगजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम् ।
 जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसञ्जम् ॥ २३६ ॥

अब्याह तैश्वर्यं मयुगमनेत्रं प्रह्लाभृतानन्दरसशमेकम् ।
 युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसञ्जम् ॥ २३७ ॥
 प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
 सुकोमलं देवि! विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि ॥ २३८ ॥
 ॐ नमस्तेऽस्तु महादेवि! नमस्ते परमेश्वरि ।
 नमो भगवतीशानि! शिवायै ते नमोनम ॥ २३९ ॥
 त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम ।
 त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि ॥ २४० ॥
 मया नाऽस्ति समो लोकैः देवो वा दानवोऽपि वा ।
 जगन्भ्रातृवै मत्पुत्री सम्भृता तपसा यत ॥ २४१ ॥
 एषा तवाऽम्बिके देवि! किलाऽभूत्पितृकन्यका ।
 मेनाऽशेषजगन्मातुरहो मे पुण्यगौरवम् ॥ २४२ ॥
 पाहि माममरशानि! मेनया सह सखदा ।
 नमामि तव पादाब्जं प्रजामि शरणं शिवम् ॥ २४३ ॥
 अहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात् ।
 आज्ञापय महादेवि! किं करिष्यामि शङ्करि ॥ २४४ ॥
 एतावदुक्तवा घघन तदा हिमगिरिश्वरः ।
 संप्रेक्षमाणो गिरिजां प्राञ्जलिं पार्श्वंगोऽभवन् ॥ २४५ ॥
 अथ सा तन्मयं वचनं निशम्य जगतोऽरणि ।
 सस्मितं प्राह पितरस्त्वृत्वा पशुर्पतिं पतिम् ॥ २४६ ॥

श्रीदेव्युवाच

शृणुष्व घतत्प्रथमं गुह्यमीश्वरगोचरम् । उपदेशं गिरिश्रेष्ठ! सेवितं ब्रह्मवादिभिः
 यन्मे साक्षात्परं रूपमेश्वरं दृष्टमद्भुतम् । सर्वशक्तिसमायुक्तमनात् प्ररक्तं परम्
 रूपं यत्प्रकृतं यत्प्रकृतं यत्प्रकृतं । त्रिप्रकृतं यत्प्रकृतं यत्प्रकृतं यत्प्रकृतं

भक्त्या त्वनन्यया तात! मद्भावं परमाश्रितः ।

सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा ॥ २५० ॥

तदेव मनसा पश्यतद्दृश्यायस्व यजस्व तत् । ममोपदेशात्संसारं नाशयामि तवानव
अहं त्वां परयाभक्त्याप्रेश्वरंयोगमास्थितम् । संसारसागराद्स्माद्बुद्धराम्यन्निरेणतु
ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्याज्ञानेनचैवहि । प्राप्याहन्ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथाकर्मकोटिभिः

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्म घर्णाश्रमात्मकम् ।

अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥ २५४ ॥

धर्मात्सज्जायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम् ।

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः ॥ २५५ ॥

नान्यतो जायते धर्मो वैदाङ्गर्मो हि निर्यमो । तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थो मद्रूपं वेदमाश्रयेत्

ममैवेया परा शक्तिर्वेदसञ्ज्ञा पुगतनी । ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादीं संवधत्ते
तेषामेवचगुणग्यर्वेदानां भगवानजः । ब्राह्मणादीन्ससर्जाथस्वेस्वे कर्मण्ययोजयत्
येन कुर्वन्ति मद्भ्रमन्तदर्थं ब्रह्मनिर्मिताः । तेषामधस्तात्तरकांस्तामिन्द्रादीनकल्पयत्

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम् ।

योऽन्यत्र रमते सोऽर्सा न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २६० ॥

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विधानि तु ।

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि त्तामर्सा ॥ २६१ ॥

कापालं भरवञ्चैव यामलं वाममाहृतम् । एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानितानि तु

येकुशास्त्राभियोगेनमोहयन्तीहमानवान् । मयात्पुत्रानिशास्त्राणि मोहार्येषांभवान्तरे

वेदार्थचित्तमैः कार्ययत्स्मृतं कर्मवैदिकम् । तत्प्रयत्नेन कुर्वन्तिमत्प्रियास्तेहिरेनराः

घर्णानामनुकम्पार्थम्मन्त्रियोगाद्विराट् स्वयम् ।

स्वायम्भुवो मनुर्द्धर्मान्मुनीनां पूर्वमुक्तवान् ॥ २६५ ॥

श्रुत्वा चाऽन्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्दर्म्ममुत्तमम् ।

चक्रुर्द्धर्म्मप्रतिष्ठार्थं धर्म्मशास्त्राणि चैव हि ॥ २६६ ॥

तेषु वाचस्मिन्नेष्वेवं युगात्तेषुमहायय । अष्टमो वचसात्तानि वरिष्यन्ति युगेयुगे
 महादगुणात्तानि व्यासायै वधितानिषु । निशोगात्प्रथमो शत्रुस्त्रेयुषमं प्रतिष्ठित
 भगवात्पुत्रराजानिषिष्यन्तं वधितानिषु । युगयुगेऽत्रमयेषां वचसांषेधमशास्त्रयिषु
 शिष्या बन्धो एव वरुणं निरुधं उन्म पयस ।

श्योति शान्ते न्यायविद्या शर्वेणमुपयु हणम् ॥ २१० ॥

एवं अनुदुःखानि तथा हि द्विजसत्त्वमा । अनुदुःखैः । मदीयानि धर्मो मान्यप्रपिपते
 एवं पलायते धर्मं मनुष्यानाद्य एवम् । न्याययन्ति ममादेशाद्यत्तदाभूतमप्ययम्
 अथना न्ना तेमपै मंत्रा प्रतिमश्रुते । एवमवात्त वृत्तात्मान प्रविशन्ति परमदम्
 नन्मात्प्रपयनेन धर्मार्थं यद्माधयेत् । धर्मो न महिम् छात्रं परं अत्र प्रजायेत्
 ये नृगङ्गा न परित्यज्येय मामप्य शरणं गता । उपाननेमदात्मनयायोगमैश्वर्यमास्मिता
 मयभूतइयायन्त शान्ता दान्ता यिमन्मरा ।

भमानिनो बुद्धिमत्प्रभाषणा शनितप्रता ॥ २११ ॥

मधिना मद्भूतप्रानामश्रान्तकचनरता । मन्मथामिनो गृहस्थाश्चनस्थाश्चप्रगारिषा
 तथा तिर्याभियुक्ताना मायातर्षं समुत्थितम् ।

नाशयामि तम वृष्णं ज्ञानदीपनो निरात् ॥ २१२ ॥

न मुनिधतनममाश्रानेन वतममपा । मदानन्दास्तु सेतारे न जायते पुन पुन ॥
 नन्मात्प्रपयप्रचारेण मद्भूता मन्परायण ।

मामवाऽश्चय सद्य मन्मता शरणं गत ॥ २१३ ॥

अशक्तो यदि म एवानुमेश्वरं कुरमस्ययम् । ततो म परम ह्यं कालार्थं शरणं मत्र ॥
 तद्यस्यरूप मतातमनसो गोचरंतय । तन्निष्ठस्यस्यरो भूया तद्वचनपरो मय ॥ २१४ ॥
 यन् म निश्चल एव वि-मायकवत्शियम् । सर्वोपाधिपिनिमुक्तमनस्तममृगं परम्
 ज्ञानेनेकन तद्भव्यकशेन परमपदम् । ज्ञानमेवप्रपश्यतोमामेय प्रविशन्ति ते ॥ २१५ ॥
 नन्मुदयन्तदात्मानन्निष्ठान्तरावयणा । गच्छन्त्यपुनरायुसिज्ञाननिर्धूतकल्मसा
 मामनाधिस्य परमं निव्याणममलपदम् । प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणप्रय

एकत्वेन पृथक्त्वेन तथाचोभयथापि वा । मामुपास्यमर्हापालततोयास्यसिततपदम्
 मामनाश्रित्य तत्तत्त्वंस्वभावविमलंशिवम् । जायते न हि गजेन्द्र ततोमां शरणं ब्रज
 तस्मात्स्वमक्षरं स्यनित्यं चारूपमेश्वरम् । आराध्य प्रयत्नेन ततोऽन्यत्त्वंप्रहान्यनि
 कर्मणा मनसा वाचाशिवंसर्वत्रमर्चदा । समाराध्य भावेनततोयान्यासि तत्पदम्
 न वै यान्यन्तितदेवं मोहिता मम मायया । अनाद्यन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम्
 सर्वभूतात्मभूतस्यं सर्वाधारं निरञ्जनम् । निन्यानन्दं निराभासनिर्गुणं तमसःपरम्
 अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम् । स्वसंवेद्यमवेद्यं तत्परैर्व्योम्निव्यवस्थितम्
 सूक्ष्मेण तमसानित्यं वेष्टिता मम मायया । संसारसागरे शोरे जायन्ते च पुनः पुनः
 भक्त्या त्वनन्ययागजन् सम्यग्जानेन वै हि । अन्येष्वन्यहितदृष्टजन्मवन्धनिवृत्तये
 अहङ्कारञ्चमात्स्वैक्यामक्रोधपरिग्रहम् । अथर्माभिनिवेशञ्चत्यन्तचार्यराग्यमान्धितः
 सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । अवेद्यचात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पने
 ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः । ऐश्वर्यं परमांभक्तिं विन्देतानन्यभाविनीम्
 वीक्ष्यते तत्परं तत्त्वमेश्वरं ब्रह्म निष्कलम् । सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते
 ब्रह्मणोऽयं प्रतिष्ठानं परम्य परमः शिवः । अतन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माधारो महेश्वरः
 जनेनकर्मयोगेनभक्त्यायोगेन वा नृप । सर्वं संसारमुक्त्यर्थमीश्वरं शरणं ब्रज॥३०१
 एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर ! । अन्यीक्ष्य चेतदखिलं यथेष्टं कर्तुमर्हसि
 ब्रह्म वै याचिता देवैः सञ्जातापरमेश्वरात् । विनित्य दक्षं पितरं महेश्वरचिन्दिदकम्
 धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात् । मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं ध्रिता
 स त्वं नियोगाद्देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे
 तत्सम्यन्धान्तरेराजन्मर्वे देवाःसचासवाः । त्वानमस्यन्तिवै तातप्रसीदतिचशङ्करः
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मां विद्मीश्वरगोचराम् । संपूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं ब्रज
 स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः ।

प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरुपवीत् ॥ ३०८ ॥

विस्तरैण महेशानियोगं माहेश्वरं परम् । ज्ञानं वै चात्मनो योगं साधनानिप्रवक्ष्यमे

तस्यैतत्परमं ज्ञानमात्मनो योगमुत्तमम् । यथायद्द्वयाजहारेशा साधनानिचविस्तरात्
निशम्यचदनाम्भोजाद्विरीन्द्रोलोकपूजित । लोकमातु परज्ञानयोगासक्तोऽभवत्पुन
प्रददीधमहेशायपार्थती भाग्यगौरवात् । नियोगाद्ब्रह्मण साध्वीदेवानाञ्चैवसन्निधौ

य इम पठनेऽऽथाय देव्या माहात्म्यकीर्तनम् ।

शिवस्य सन्निधौ भक्त्या शुचिस्तद्वाचभाषित ॥ ३१३ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः ।

उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोक देव्या स्थानमचामप्नुयात् ॥ ३१४ ॥

यर्धनत्पठति स्तोत्रब्राह्मणाना सर्मापत । समाहितमना सोऽपिसर्वपापं प्रमुच्यते
नाज्ञामष्टसहस्रन्तु देव्यायत्समुद्धारितम् । ज्ञात्वार्चमण्डलगतामावाह्य परमेश्वरीम्
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मक्तियोगसमन्वित । सस्मरन्परम भावं देव्यामाहेश्वर परम्

अनन्यमानसो नित्य जपेदामरणाद् द्विज ।

सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३१८ ॥

अथवाजायतेविप्रो ब्राह्मणम्यशचीकुले । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मविद्यामचाम्पुयात्
सम्प्राप्य योग परम दिव्य तत्पारमेश्वरम् ।

शान्त सुमयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयाम् ॥ ३२० ॥

प्रत्येकक्ष्माथ नामानि जुहुयात्सवतत्रयम् । महामारिकृतीर्देवैर्ब्रह्मदोषैश्च मुच्यते
जपेद्वाऽहरहर्नित्य सम्बत्स्मरन्तन्द्रित । र्थीकाम पार्थतीं देवीं पूजयित्वाविद्यात
सम्पुज्य पाष्यत शम्भु विनेत्रभक्तिसयुत । लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादत
तस्मान्सवप्रयत्नेन जन्व्य हि द्विजातिभि । सर्वपापापनोदायं देव्यानामसहस्रकम्

सुत उवाच

प्रसन्नाङ्कथितं विप्रा देव्यामाहात्म्यमुत्तमम् । अत परप्रजासर्गभृत्वादीना निबोधत
इति श्री कूर्ममहापुराणे देव्यामाहात्म्ये देवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनं नाम

त्रयोदशोऽध्यायः दक्षकन्यानां वंशवर्णनम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीनारायणप्रिया ।

देवो धाताविधातारो मेरोर्जामातरौ शुभौ ॥ १ ॥

आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः । तयोर्धातृविधातृभ्यां यौ च जातौ मुता शुभौ
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः । तथा वेदशिरानामप्राणस्य द्युतिमान् सुतः
मरीचिरपि सम्भूतिः पूर्णमासमसूयत । कन्याश्चतुष्टयश्चैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४ ॥

तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चाऽपचितिस्तथा । विरजाः पर्वतश्चैव पूर्णमासस्य तौ सुतौ
क्षमातु सुपुत्रे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः । कर्दमश्च चरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम् ॥
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्द्भूतकल्मषम् । अनसूया तथैवाऽत्रेर्जजे पुत्रानकल्मषान्
सोमं दुर्वाससश्चैव दत्तात्रेयश्च योगिनम् । स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्रीजज्ञे लक्षणसंयुता
सिनीवालोकिकुहश्चैव राकामनुमतीमपि । प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान्दम्भोजिमसृजत्प्रभुः
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

देवयाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामतः ॥ १० ॥

पुत्राणां पृष्टिसाहस्रं सन्ततिः सुपुत्रेकृतोः । ते चोर्ध्वरेतसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः
वसिष्ठश्च तयोर्जायां सप्त पुत्रानजीजनत् ।

कन्याश्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥ १२ ॥

रजोमात्रोर्ध्ववाहुश्च सवनश्चानगस्तथा । सुतपाः शुक इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः
योऽसौ रुद्रात्मको बह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः ॥

स्वाहा तस्मात्सुतान् लेभे त्रीनुदागन्महौजसः ॥ १४ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च रूपतः । निर्मथ्यः पवमानः स्याद्वैद्युतः पावकः स्मृतः

मतिश्चने भाग्ययोगात्सन्त्यासन्नप्रति धर्मचित् ॥ २४ ॥

म कृत्वा तार्थमेवेति स्याध्याये तपसि स्थित ।

उगाम हिमपत्नृष्टं कदाचिन्मिद्धमेवितम् ॥ २५ ॥

तत्र धर्मपत नाम धर्ममिद्धिप्रदं धनम् । अश्वघोसिनां गम्यमगम्य प्रदायिद्विदम्

तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्याविमलानदी । पद्मोत्पलपत्रोपेता सिद्धाधर्मविभूषिता

स तस्यादक्षिणेतरेमुर्नान्द्रैर्वीगिभिर्युतम् । सुपुण्यमाध्रमगम्यमपश्यन्नातिममुत

मन्दाकिनीतन्मन्त्रात्पासन्नधर्मपितृदेवता । भर्त्सयिष्यामहादेवपुत्रपद्मोत्पलादिभि

ध्यात्वाऽर्चंमन्त्रमीशानं शिरस्याधाय चाऽब्रुवन्मि ।

मग्रशमाणो भास्वन्नं तुष्टुव परमेध्वरम् ॥ ३० ॥

शशाध्यायेन गिरिशो द्रुहस्यचरितेन च । मन्येद्य विविधै स्नाथेऽगाम्यपैषेदमग्भपै

धयास्मिन्नन्तरेऽपश्यन्तमायान्तं महामुनिम् । श्येताभ्यतरनामानमहापाशुपतोत्तमम्

मन्ममन्दिमसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।

तपसा च (६) विनात्मान शुभपत्रोपर्षातितम् ॥ ३३ ॥

समाप्यमंस्नपंशमोगनन्दाम्राविनेक्षण । पश्यन्देशिरमत्वाद्दोशार्थलिपांक्रमप्रर्षात्

धन्योऽस्म्यपुष्टुर्दोतोऽस्मि धर्मे स्नाशान्मुनीधरा ।

योगीधरोऽय मगवाग्दृष्टो योगविद्वां धर ॥ ३९ ॥

धनामगुमाद्वाप्यतगामिमरुज्जाति मे । किञ्चित्कियामि शिष्योऽहं तपसांवात्पयाऽनाथ

नाऽपुष्टुपाधराज्ञानं गुणात्तर्शात्तर्शयुतम् । शिष्योऽप्येतिप्रथात्तदन्तर्शात्तर्शयुतम्

मान्स्वातिकं विधि कृत्वा चारविन्द्या निवृत्तन ।

दो नरेध्वरं ज्ञानं अज्ञानार्थाविहितममम् ॥ ३८ ॥

अन्तं वृत्तान्तमगुणाशाविमोचमम् । अगवाधममितिगतवार्तंशान्दिरिमरुदितम्

दृष्टुंशिष्यन्तर्शात्तर्शये नराधमपासित । अज्ञानं शिष्यार्थेऽवात्तर्शयं वरापला

मना प्रवृत्तितानामार्थंयैषेष्टं यावित । समानेन ददादेवप्यागतार्थाकिञ्चिद्व्यमम्

इह इहा ददादा वदन्त नहामवा । अन्तर्शाते भावार्थीयो मन्त्रानामनुकथया

इहाऽशेषजगद्धाता पुरा नारायणःस्वयम् । आराध्यन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया
इहैनं देवमीशानं देवानामपि देवतम् । आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः
इहैव मुनयः सर्वे मरोऽप्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोयलाञ्जानं लेभिरे सार्वकालिकम्
तस्मात्त्वमपिराजेन्द्रतपोयोगसमन्वितः । तिष्ठनित्यंमयासाद्धंतसिद्धिमवाप्स्यसि
एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।

आचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये ॥ ४७ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारंविमुक्तिदम् । अशिरित्यादिकं पुण्यंऋषिभिःसम्प्रवर्तितम्
सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।

साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासस्तांऽभवत् ॥ ४८ ॥

भस्मोद्भृलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।

शान्तो द्रान्तो जितक्रोधः सन्न्यासविधिमाश्रितः ॥ ५० ॥

हचिर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनवर्हिपंनाम्नाध्यनुर्वेदम्य पारगम्
प्राचीनवर्हिर्भंगवान्सर्वशस्त्रभृताम्बरः । समुद्रतनयायां वै दशपुत्रानजीजनत् ॥ ५२ ॥
प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । अश्रीतचन्तःस्वंबेदंनारायणपरायणाः
दशम्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायांप्रजापतिः । दक्षो जजेमहाभागो यःपूर्वब्रह्मणःसुतः
स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्
समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोच्चितांपूजां दक्षायप्रददौस्वयम्
तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।

पूजामनर्हामन्विच्छञ्जनाम कुपितो गृहम् ॥ ५७ ॥

ऋदाचित्स्वगृहंप्राप्तं सतीदक्षःसुदुर्मनाः । भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामासवैरुषा
अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुंस्तव पिनाकिनः ।

त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद्गच्छ यथागतम् ॥ ४६ ॥

वसिष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा मुद्गुधरम् । आराध्य पुरुषं चिप्पुं शालग्रामेजनार्द्धनम्
 रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं कपिलं वृषतेजसम् । नारायणपरान्शुङ्गान्स्वधर्मपरिपालकान् ॥१॥
 रिपोराधत्त महिषीचाक्षुपंसर्वतेजसम् । सोऽर्जीजनतपुष्करिण्यां गुरुपं चाक्षुपंमनुम्
 प्रजापतेरात्मजायां चीरणस्य महात्मनः । मनोरजायन्त दश मुतास्ते मुमहोजसः
 कन्यायां सुमहावीर्यां वैराजस्य प्रजापतेः । ऊरुःपूरुःशतद्युम्नस्तपन्वीसत्यवाक्शुचिः
 अग्निष्टुडृतिगत्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः । ऊरोरजनयत्पुत्रान्पटान्नेर्या महाबलान्
 अङ्गं सुमनसं व्याति क्रतुमाङ्गिसं शिवम् । अङ्गाद्देवोऽभवत्पश्चाद्देव्यो वंसादजायत
 योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः ।

येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया ॥ ११ ॥

नियोगाद्भद्रतणः सार्द्धं देवेन्द्रेण महोजन्मा । वेनपुत्रस्य वितते पुरा पंतामहे मन्वे ॥
 सूतः पौराणिकोयज्ञे मायारूपःस्वयंहरिः । प्रवक्तासर्वशास्त्राणां धर्मगो गुरुवत्सलः
 तं मां चित्त मुनिश्रेष्ठाः! पूर्वोद्भूतं सनातनम् ।

अस्मिन्मन्वन्तरे व्यासः कृष्णहं पायतः स्वयम् ॥ १४ ॥

श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणः पुरुयोहरिः । मदन्वये तु येसूताः सम्भूता वेदवर्जिताः
 तेषांपुराणवक्तृत्वंवृत्तिरामीदजाजया । सत्र वंन्यःपृथुर्धोमान्सत्यसन्धोजितेन्द्रियः
 सार्वभौमोमहातेजाः स्वर्मपरिपालकः । तस्यवाल्यात्प्रभृत्येव भक्तिर्नागयणेऽभवत्
 गोवर्द्धनगिरिं प्राप्तान्तपन्तेपं जितेन्द्रियः । तपसा भगवान्प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
 आगत्यदेवो राजानंप्राह दामोदरःस्वयम् । धार्मिको रूपसम्पन्नो सर्वशस्त्रभृताम्बरौ
 मत्प्रसादाद्दसन्द्रिर्धो पुत्रौतवमविष्यतः । एवमुक्त्वा हृषीकेशःस्वकीयांप्रकृतिङ्गतः
 वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन् ।

सोऽपालयत्स्वकं राज्यं चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥

अचिराद्वतन्वङ्गोभार्यातस्यशुचिस्मिता । शिखण्डिनंहविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत
 शिखण्डिनोऽभवत्पुत्रः सुशील इतिविश्रुतः । धार्मिकोरूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः
 सोऽधीत्य विश्वहृद्देवान्धर्मेण तपसि स्थितः ।

मतिञ्चक्रे भाग्ययोगात्सन्न्यासप्रति धमचित् ॥ २४ ॥

न वृत्त्या तीर्थसंसेवा स्वाध्याये तपसि स्थित ।

जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम् ॥ २५ ॥

तत्र धमवन नाम धमसिद्धिप्रदं वनम् । अपश्ययोगिना गम्यमगम्य ब्रह्मविद्विषाम्
तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्याविमलानर्दा । पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता
स तस्यादक्षिणतीरेमुनीन्द्रैर्योगिमिर्युतम् । सुपुण्यमाश्रमस्म्यमपश्यन्प्रीतिसयुत
मन्दाकिनीजलेस्नात्वासन्तर्प्यपितृदेवता । अच्छयि वामहृदिषुष्पंपद्मोत्पलादिभि
ध्यात्वाऽकसस्थमीशान शिरस्वाध्याय चाऽञ्जलिम् ।

सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्त नुष्टाद्य परमेश्वरम् ॥ ३० ॥

रद्राध्यायेन गिरिश दृष्ट्व्यचरितेन च । मन्यैश्च विविधै स्तोत्रै शाम्भवेर्वैदसम्भवे
अधास्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्त महामुनिम् । श्वेताश्वतरनामानमहापाशुपतोत्तमम्
भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादतान्वितम् ।

तपसा क (ए) पिताम्भान शुकुयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३३ ॥

समाप्यसस्तवशम्भोरानन्दारुद्राचितक्षण । ववन्देशिरस्तापादौप्राञ्चलिवाक्त्रमग्रवीत्
धन्योऽस्म्यनुगृहानोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वर ।

योगीश्वरोऽथ भगवान्दृष्ट्वा योगविद्ं वर ॥ ३५ ॥

अहोमेसुमहद्वाग्यतपामिसफलानि मे । किंकरिष्यामि शिष्योऽहृतवमापालयाऽनघ
सोऽनुगृह्याथराजानसुशीलशीलसंयुतम् । शिष्यन्व्यप्रतिजग्राहत्पमाक्षीणकल्मषम्
सान्ध्यासिक विधिं वृत्स्न कारयित्वा विचक्षण ।

— ददौ तदैश्वरं ज्ञानं श्वशाखाविहितव्रतम् ॥ ३८ ॥

अशेष वेदसारन्तपशुपाशविमोचनम् । अन्त्याश्रममितिग्यातब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्
उवाचशिष्यान्सम्प्रेक्ष्यये तदाधमचामिन । ब्राह्मणा क्षत्रियाच्चेत्याऽह्यचर्यपरायणा
मया प्रवर्तिताशाखामधीत्येवेह योगिन । समासने महादेवध्यायन्तोचिभ्रमैश्वरम्
इह देवो महाद्वा रममाण सहोमया । अध्यास्ते भगवानीशो भक्तनामनुकम्पया

इहाऽशेषजगद्धाता पुरा नारायणःस्वयम् । आराध्यन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया
 इहैनं देवमीशानं देवानामपि देवतम् । आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः
 इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्
 तस्मात्त्वमपिराजेन्द्रतपोयोगसमन्वितः । तिष्ठन्तित्यंमयासाद्धृतसिद्धिमवाप्स्यसि
 एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।

आचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये ॥ ४७ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारंविमुक्तिदम् । अन्निरित्यादिकं पुण्यंऋषिभिःसम्प्रवर्तितम्
 सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।

साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ४८ ॥

भस्मोद्भूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।

शान्तो दान्तो जितक्रोधः सन्न्यासविधिमाश्रितः ॥ ५० ॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनवर्हिपंनाम्नाधनुर्वेदस्य पारगम्
 प्राचीनवर्हिर्भगवान्सर्वशस्त्रभृतास्वरः । समुद्रतनयायां वै दशपुत्रानजीजनत् ॥ ५२ ॥
 प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । अधीतवन्तःस्ववेदंनारायणपरायणाः
 दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिपायांप्रजापतिः । दक्षो जज्ञेमहाभागो यःपूर्वब्रह्मणःसुतः
 स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शतः प्राचेतसोऽभवत्
 समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोचितान्पूजां दक्षायप्रददौस्वयम्
 तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।

पूजामनर्हामन्विच्छञ्जगाम कुपितो गृहम् ॥ ५७ ॥

कदाचित्स्वगृहंप्रातांसतींदक्षःसुदुर्मताः । भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामासवैरुपा
 अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्त्सुस्तव पिनाकिनः ।

त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद्वच्छ यथागतम् ॥ ४६ ॥

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवीशङ्करप्रिया । विनिन्द्य पितरंदक्षं ददाहात्मानमात्मना
 प्रणम्यपशुभर्त्तरंभर्त्तरं कृत्तिवाससम् । हिमवद्गुहितासाऽभूत्तत्पसातस्यतोपिता

आचा तां भगवान्द्र प्रपशसिहरो हरे । शशाप दक्षेकपित समाग-याधतदुदहम्
 त्यक्त्वा देहमिम ब्राह्म क्षत्रियाणां कु- भव ।
 स्वस्या सुताया मुदा-मा पुत्रमु-पादयिष्यासि ॥ ६२ ॥
 एवमुक्त्वा महादयो ययौ क-गसपच्यतम् ।
 स्वायम्भुवोऽ पि का-नेन दक्ष प्राचेतसोऽभवत् । ३ ॥
 एतद् कथित स-धमतो स्वायम्भुवस्य तु । निसर्ग-क्षप-प्यन्त-दृष्यतापापनाशनम्
 इति धा-कृष्णमहापुराण शानवशानुकीत्तनाम चतुदशोऽध्याय ॥ १४ ॥

पञ्चदशाऽध्याय

दक्षयत्विध्वसनानम्

नमिपया ऊउ

इवाना नानवानाञ्च ग-ध-रोगरक्षाम् । न-पति विस्तरान्ब्रह्मिस्त्ववैवस्वनऽन्तरे
 स शप्त शम्भुना पृ-च दक्ष प्राचेतसो नृप ।
 किमकार्यं महाबुद्ध धोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥ १ ॥

सुते उवाच

व-भ्ये नारायणीनोक्त प्रवच-पानुपद्विकम् । त्रिकालयद्द पापघ्न प्रजासगम्यविस्तरम्
 स शप्त शम्भुना पृ-च दक्ष प्राचेतसो नृप ।
 विनि-य पृथवरेण गङ्गाद्वारऽ(ना)यजद्वयम् ॥ ४ ॥

न्वाक्ष सव भागायमाहता विष्णुनासह । सहैव मुनिभि सर्वैरागता मुनिपुङ्गवा
 दृष्टा दक्षकुल वृ-त्त शङ्करेणविना गतम् । दधीचो नाम विप्रर्षि प्राचेतसमथाश्रवीत्
 दधीच उवाच

ब्रह्माद्यास्तु पिशाचान्ता यस्याजानुविधायिनः ।

स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किन्न पूज्यते ॥ ७ ॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु नभागः परिकल्पितः । न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येतिनेज्यते

विहस्य दक्षं क्षुपितो वचः प्राह महामुनिः ।

शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयःस्वयम् ॥ ६ ॥

दधीच उवाच

यतःप्रवृत्तिर्विश्वात्मा यश्चासौ परमेश्वरः । सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वाकिन्नशङ्करः

दक्ष उवाच

नह्ययं शङ्करोरुद्रः संहर्ता तामसो हरः । नग्नः कपाली विदितो विश्वात्मानोपपद्यते

इश्वरो हिजगत्त्रय प्रभुर्नारायणोहरिः । सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यतेसर्वकर्मसु

दधीच उवाच

कित्त्वया भगवानेव सहस्रांशुर्नदृश्यते । सर्वलोकैकसंहर्ता कालात्मा परमेश्वरः

यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः ।

सोऽयं साक्षी तीव्ररुचिः कालात्मा शाङ्करी तनुः ॥ १४ ॥

एयरुद्रो महादेवः कपाली चतुर्णाहरः । आदित्योभगवान्सूर्यो नीलग्रीवोविलोहितः

संस्तूयतेसहस्रांशुः सामगाध्वर्यु होतृभिः । पश्यन्विश्वकर्माणं रुद्रमूर्त्तिं त्रयामयम्

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः । सर्वसूर्या इति ज्ञेयान ह्यन्यो विद्यतेरविः

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षुवः । वाढमित्यव्रुवन्दक्षं तस्य साहाय्यकारिणः

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्तो वृषध्वजम् । सहस्रशोऽथशतशो बहुशोभूय एव हि

निन्दन्तो वैदिकामन्त्रान्सर्वभूतपतिहरम् । अत्रजयन्दक्षवाक्यं मोहिताविष्णुमायया

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः । नापश्यन्देवर्माशानमृते नारायणं हरिम्

हिस्ण्यगर्भो भगवान्ब्रह्मा ब्रह्मचिदाश्वरः । पश्यतामेव सर्वान् शृण्वन्तश्चरन्ति

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम् । रक्षकं जगता देवं जगाम शरणं स्वयम् ।
प्रवक्ष्यामि तव यज्ञे दक्षोऽयनिर्मयः । रक्षको भगवान्विष्णुः शरणागत रक्षकः

पुनः प्राह च तं दक्षः दर्धाचो भगवान् नृपि ।

संप्रेश्य र्पि गणान् देवान् सखांश्चै रद्रुधिद्विषः ॥ २५ ॥

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानाञ्चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र सशयः
असता प्रग्रहो यत्र सताश्चैव विमानना । दण्डो देवदृष्टस्तत्र सद्यः पतति दारण
एवमुत्पाद्य विप्रैर्पि शशापेश्वरविद्विषः । समागतान् ग्राह्येषां स्तान् दक्षसाहाय्यकारिणः
यस्माद्बुद्धिं हृतो वेदाद्बुद्धिं परमेश्वरः । विनिन्दितो महादेवः शङ्करो लोकाधिपतिः
मधिष्यन्ति त्रयीबाह्या सर्वेऽपीश्वरविद्विषः ।

निन्दन्ता ईश्वरं मागं कुशास्त्रासनवेतसः ॥ २० ॥

मिथ्यार्थी तसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ।

प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजे परिपीडिताः ॥ ३१ ॥

त्यक्त्वा तपोवत्पुत्रं हृत्स्नं गच्छन्त्य नरकान्पुनः ।

मधिष्यति हृषीकेशः स्वाधितोऽपि पराङ्मुखः ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वाथ विप्रैर्पि रिरराम तपोनिधिः । जगाम मनसा रुद्रमशेषाद्यविनाशनम् ।
एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेव महेश्वरम् । पतिं पशुपतिं देवः श्लाघ्यैतन्प्राह सर्वदृक्
धीदेव्युवाच

दक्षो यजन यन्ने पिता मे पूज्यजन्मनि । विनिन्द्यमवतो भावप्राप्तमान चापि शंकरः
देवाग्रहर्षयश्चामस्तत्रसाहायकारिणः । विनाशयाऽऽशु तं यज्ञं धरन्तं वृणोम्यहम्
एव विज्ञापितो देव्या देवदेव परं प्रभुः । ससज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघासया
सहस्रशिरसं वृद्धं सहस्राभं महाभुजम् । सहस्रपाणिं दुर्द्वैपं सुगान्तानलमतिभम्
दणकरालं दुष्प्रस्यं शङ्खचक्रधरं प्रभुम् ।

दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम् ॥ ३६ ॥

वीरभद्र इति ख्यानं देवदेवसमन्वितम् । स जातमात्रो देवेशसुपतस्यै कृतोर्ध्वलिः

तमाह दक्षस्य मसं विनाशय शिवोऽस्तुते । विनिन्य मां नयजनेगद्गाहारे गणेभ्यर
 ततो वन्यप्रमुक्तेन निहैनेकेन लीलया । वारभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमन्क्रतुः
 मत्युता चोमया नृष्टा भद्रकाली मोश्वरी । तथा च सार्द्धं वृषभं समासाययौ गणः
 धन्येनहन्शोऽदृष्टानिगृष्टान्तेनधीमता । रोमजाऽतिविगयानाम्स्तस्यसाहाय्यकारिणः
 शूलशक्तिगदाहस्ता दण्डोपलकराम्स्तथा । कालाशिरद्रसद्गाशा नादयन्तां दिशोदश
 सर्वे वृषभमान्द्रा सभार्याश्चातिभीषणाः । नमावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमगमप्रति
 सर्वे नमप्राप्य तं देशं गद्गाहारेमिनिधुतम् । न दृष्टशुभंदेशं वै दक्षस्यामिततेजसः
 देवाङ्गनासहस्राद्यमप्सरोगीननादिनम् । वैष्णुर्वाणानिनादाद्यैः वेदवादाभिनादिनम्

दृष्ट्वा सहसिभिर्द्वैर्वैः समानीनमप्रजापतिम् ॥ ४६ ॥

उवाच स प्रियो र्द्रर्वीरभद्रः नमयन्निय ॥ ५० ॥

वयं ह्यनुचराः सर्वे शवंस्यामिततेजसः ।

भागार्थं लिप्सया भागान् प्राप्ता यच्छतृत्वमीप्सितान् ॥ ५१ ॥

अथ चेत्कस्यचिदियं माया मुनिघरोत्तमाः !

भागो भवद्गुणो देयस्तु नाऽस्मभ्यमिति कथ्यताम् ॥ ५२ ॥

नम्रूताजापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः । एवमुक्त्वागणेशेनप्रजापतिपुरःसराः

देवा ऊचुः

प्रमाणं यो न जानामी भाने मन्त्रा इतिप्रभुम् । मन्त्राऊचुःपुरा श्रूयंतमोपहतचेतसः
 येनाश्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम् । ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वदेवननुर्हरः
 पूज्यते सर्व यज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः । एवमुक्त्वा महेशानमायया नष्टचेतनाः
 नमेनिरेयुर्मन्त्रा देवान्मुक्त्वास्वमालयम् । ततः सभद्रोभगवान्सभार्यःसगणेश्वरः
 स्पृशन् कराभ्यां विप्रविद्धोसंप्राहदेवहा । मन्त्राःप्रमाणं नृशतानुष्माभिर्बलदर्पितः
 यस्मात्प्रसह्यतस्माद्दोनाशयाभ्यद्यगपितान् । इत्युक्त्वा यज्ञशालां तांद्वादृशगणपुद्गवः
 गणेश्वराश्चसंक्रुद्धा यूपानुत्पाद्यन्चिक्षिपुः । प्रस्तोत्रासहहोत्रा चअश्वर्द्धवगणेश्वराः

गहीन्त्वा भीषणाः सर्वे गन्तास्योत्तच्चि निश्चिणः ।

धीरभद्रोऽपि धीमान्मा शत्रुस्यैवोद्यतं करम् ॥ ६१ ॥

व्यग्रभयदर्शिता मा तथान्येषादिर्वाञ्जसाम् । भगनेत्रे तथोत्पाद्य कर्मत्रेणैधलीत्या
निहन्यमुप्रिता इन्तान् पूष्णार्थमपातयन् । तथा चन्द्रमस देवंपादाङ्गुष्ठेन लीलया
धपयामास यत्रान् रुमयमानोगणेश्वर । घहेर्हस्तद्वय छित्वाजिह्वामुत्पाद्यलीलया
जपानमृत्पि पादन मुनीनपिमुनीश्वरा । तथा विष्णुसगरुड समाप्रान्तं महाबल
विज्याधनिशिनैषाणे स्तम्भयित्वासुदर्शनम् । समालोक्यमहाधातुरागत्यगरुडोगणम्
जयानपर्श सहसा ननादाङ्गुनिधिर्यथा । तत सहस्रशो रद्र-ससर्जगरुडान् स्वयम्
वननेयाद्भ्यधिकान् गरुड ते प्रदुदुषु ।

तान्दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजय ॥ ६८ ॥

विमन्य माधव वेगात्तदद्भुतमिधामयन् । अन्तर्हिते चैननेये भगवान् पद्मसम्भव
भागव्य वात्स्यायाम् धीरभद्रश्च केशरम् । प्रसाद्यामास च त गौरवात्परमोष्ठिव-
मन्यभगवानीश । शम्भुस्तत्रागमत्स्ययम् । धीश्यर्देवाधिदेव तमुमासचंगुणैवृंताम्
तुणवभगवान् ब्रह्मादक्ष सर्वेदिर्वाकस । विशेषान्पार्वतीं देवीमीश्वरदंशरीरिणीम्
स्तात्रनाताविर्धदक्ष प्रणम्यमत्रताडलि । ततोभगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्
प्रसन्नमनसा रद्र वचनं प्राहृणानिधि । त्वमेवजगत स्रष्टा शासिता चैव रक्षिता
अनुप्राणा भगवता इत्यश्नापिदिर्वाकस । तत प्रहस्यभगवान् कपर्दीनीलहोहिता
उवाच प्रणतान्देवान् प्रावेनसमथो हर । गरुडभ्यदेवता सर्वा प्रसन्नोभवतामहम्
सपुत्र्य भवयजपु न निरूप्योऽहविगोपत । त्वञ्चाऽपि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्
न्यनवा लोर्कपणामता मद्रुको भव यत्नत ।

मचिप्यसि गणेशान् कर्यान्तेऽनुग्रहानमम ॥ ७८ ॥

तावत्तिष्ठ ममादशात्स्वाधिकारेषु निवृत्त । एवमुनयातुभगवान्मपत्नीकसहानुग
जगानमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततैजस । अन्तर्हितं महादेवे शङ्करे पद्मसम्भव
व्याजहार स्वय दक्षमशंगजगतो हितम् ।

किञ्चायं भवतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे ॥ ८१ ॥

यदा च स स्वयं देवः पालयेत्त्वामतन्द्रितः । सर्वेषामेव भूतानां हृद्येप परमेश्वरः ॥
पश्यन्ति यंत्रह्यभूता विद्वांसो वेदवादिनः । स चात्मासर्वभूतानांसर्वाजं परमा गतिः
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः । तमर्चयन्ति ये रुद्रं म्वात्मना च मनातनम्
चेतसा भावयुक्तेन ते यान्ति परमं पदम् ।

तस्मादनादिमध्यान्तं चिन्नाय परमेश्वरम् ॥ ८५ ॥

कर्मणामनसावाघासमाराध्ययत्नतः । यतनात्परिहरेशस्य निन्द्रां म्वात्मविनाशनीम्
भवन्ति सर्वदोषाय निन्द्रकस्य क्रिया हि ताः । यन्तु चैपमहायोगी रक्षको विष्णु ग्व्ययः
स देवो भगवान् रुद्रो महादेवो न संशयः । मन्यन्ते ये जगद्यो निविभिन्नं विष्णुमीश्वरान्
मोहाद्देवद्विप्रत्वात्ते यान्ति नरकं नराः । वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते । यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः
इति मत्वा भजेद्देवं स याति परमां गतिम् । सृजत्येव जगत्सर्वं विष्णुस्तत्पश्यतीश्वरः
इत्थं जगत्सर्वमिदं रुद्रनारायणो द्वयम् । तस्मात्स्यक्त्वाहरेर्निन्द्रां हरे चापि समाहितः
समाश्रय महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम् । उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चम्य प्रजापतिः
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्स्नवाससम् । येऽन्ये शापाग्निनिर्द्गन्धाः ध्रान्त्रम्यमहर्षयः
द्विपन्तो मोहिता देवं सम्प्रभृवुः कलिष्वथ ।

त्यक्त्वा तपोवलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः ॥ ८५ ॥

पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मणो वचनादिह । मुक्तशापास्ततः सर्वकल्पान्ते रौरवादिषु
निपात्यमानाः कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्षसम् । ब्रह्माणं जगतामीशमनुजाताः स्वयम्भुवा
समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् । भविष्यन्ति यथापूर्वं शङ्करस्य प्रसादतः
एतद्गः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिवृद्धनम् । शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव सन्ततिम्
इति श्रीकृष्णमहापुराणे दक्षप्रजविध्वंसो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

दधरन्यारंशापनम्

सूत उवाच

प्रजापते मग्निश्च पूर्वदश स्वर्षभुजा । समत्रदेवानगन्धर्वांश्चैर्धियासुरोत्तान्
यदास्य सृजनं पूर्वं न व्यवर्जन्त ता प्रजा । नरा ममत्रंभूतानिमैषुनेनैव सर्व्वेन
अशिश्याजतयामासर्षारणस्यमत्रापने । सुतायाधम्मंयुनायापुत्राणान्तुमहस्यम्
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । षष्टि दशोऽनृत्रस्यन्यार्धरिष्यां र्धं प्रजापतिः
ददौ म दश धम्माय कश्यपाय त्रयोदश । विशम्भेन च सोमाय घनस्योऽरिष्टैर्मरै
हे र्धय बहुपुत्राय हे हृशाश्याय धीमते । हे धीरागिरमेतद्रक्षामावश्येऽद्यविम्भरम्
मदस्यनाममुयामालम्बामनुरदधर्ता । सकलयाचमहसांश्च माध्याविन्वावनामिनी
धम्मयन्त्या दश त्वेतास्तासां पुत्राश्चिद्योधत ।

विश्वेदेवान्नु विश्वाया साध्या साध्यातर्जाजतम् ॥ ८ ॥

मरुधन्यामरुधन्तोषम्वोऽनुषमवस्तथा । भानोऽनुमानपार्धवमुर्ताऽनुमुहसंजा
लम्बायाऽभाषयोरोवेनागर्षाया तु यामिजा । पृथिवीविषयसर्व्वमरुधन्यामत्रापत
सङ्कपायान्तु सङ्कलो धम्मंपुत्रा दश स्मृता ।

ये त्वनेकवसुत्राणां देवा ज्योतिपुरोगमा ॥ ११ ॥

वसवोऽर्षी समाख्यातान्तेषा वक्ष्यामि विम्भरम् ।

आपो भरध सोमश्च धरर्धवाऽनलोऽतिला ॥ १२ ॥

प्रपूरश्च प्रभासश्च वसवोऽर्षी प्रवर्त्तिता ।

भापस्य पुत्रो धनण्ड्यः धमः शान्तोऽथनिस्तथा ॥ १३ ॥

ध्रुवस्य पुत्रोऽगवान्कालोलोकप्रकालन । सोमस्यमगवान्धर्वाधरस्यद्रविणः सुन
मनोत्रयो नलम्बासीर्दविष्ठातगतिस्तथा ।

कुमारो ह्यनिलस्यासीत्सेनापतिरिति स्मृतः ॥ १५ ॥

देवलो भगवान्योगी प्रत्यूपस्याऽभवत्सुतः ।

विश्वकर्मा प्रभासस्प्रशिल्पकर्त्ता प्रजापतिः ॥ १६ ॥

अदितिर्द्विदित्द्वंस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्राक्रोधवशात्त्विरा
कद्रुमुनिश्चधर्मज्ञातपुत्रान्चैनिवोधत । अंशो धाताभगस्त्वष्टामित्रोऽथवरुणोऽर्च्यमा
चिवस्वान्प्रवितापूयाहांशुमान्विष्णुरेव च । तुषितानामतेपूर्व्वंस्वाश्रुपस्यान्तरेमनोः
चैवस्वतेऽन्तरेप्रोक्ताश्रादित्याश्चादिनेःसुताः । दितिःपुत्रद्वयंलेभेकश्यपाद्बलगर्हितम्
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथानुजम् । हिरण्यकशिपुर्देवो महाबलपराक्रमः

आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेश्वरम् ।

दृष्ट्वा लेभे वरान्दिव्यांस्तुत्वाऽसौ विचित्रैस्तवैः ॥ २२ ॥

अथ तस्यबलाद्देवासर्वेष्वमहर्षयः । चाधितास्ताडिताजग्मुर्द्वेदेवंपितामहम् ॥ २३ ॥
शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम् । ब्रह्माणं लोककर्त्तारं त्रातारं पुरुषं परम्
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् । स याञ्चितो देववरं मुनिभिश्च मुनीश्वराः
सर्वदेवहितार्याय जगाम कमलासनः । संस्तुयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि ॥ २६ ॥
क्षीरोदस्योत्तरं कूलंयत्रास्नेहरिरोश्वरः । दृष्ट्वा देवंजगद्योनिविष्णुं विश्वगुरुं शिवम्
वचन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभापत ।

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः ॥ २८ ॥

व्यापी सर्वांस्त्वपुर्महायोगी सनातनः । त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानप्रकृतिः परा
वैराग्यैश्चैर्व्यनिरतोवागतीतोन्निरञ्जनः । त्वं कर्त्ताचैव भर्त्ता च विहन्ता च सुरद्विषाम्
त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वरः । इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणासम्प्रयोधितः

प्रोवाचोन्नित्प्रज्ञाक्षः पीतवासाः सुरान्द्विजाः ।

किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः ॥ ३२ ॥

इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः ।

पोडशोऽध्यायः

दशरन्याषंशवर्णनम्

सुत उवाच

प्रनाम्नजति मन्दिष्टपूर्वदक्ष स्वयमुरा । ससतदेवान्गन्धर्वान्दृर्षाश्चैवासुरोरगात्
यदास्य सृजनं पूर्वं न व्यवर्जन्त ता प्रजा । तदा ससजंभूतानिमैधुनेनैव सध्वत
ऋशिकन्धाजनयामामर्षारणस्यप्रजापते । सुतायाधर्मयुक्तायापुत्राणान्तुसद्वृत्तम्
नेषु पुत्रेषु नपेषु मायया नादस्य तु । षष्टि दक्षोऽमृजत्कन्यावर्णिष्या वै प्रजापति
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । विशन्मत्र च सोमाय चतस्रोऽस्तिष्ठनेमये
द्वे षंघ बहुपुत्राय द्वे वृशाश्वाय धीमते । द्वे घंवागिरसेतद्वृत्तासावश्येऽधविस्तरम्
मरुवतावमुयामालम्बाभानुररुन्धता । सकल्पाद्यमहत्तांघ साध्याविश्वाधमामिनी
धर्मपन्थ्यो दश त्र्येतास्तासापुत्रान्निरोधत ।

विश्वेदेवास्तु विश्वायां साध्या साध्यान्तर्जाजनन् ॥ ८ ॥

मरुत्वयामरुन्धन्ताविन्धोस्तुवसयस्तथा । भानोस्तुभानवाध्वंभुहत्तांस्तुमुहत्तांजा
लम्बायाध्वाथपोरोर्वनागर्वाधा तु यामिजा । पृथिवीविषयसध्वंभरुन्धत्यामजायत
सद्रूपपायान्तु सद्रूपो धर्मपुत्रा दश स्मृता ।

ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिपुरोगमा ॥ ११ ॥

धमवोऽष्टौ समाख्यातान्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ।

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवाऽनलोऽनिल ॥ १२ ॥

प्रथूपरश्च प्रभासश्च धमवोऽष्टौ प्रकीर्त्सिता ।

भापस्य पुत्रो वैतण्ड्य श्रम शान्तोऽध्वनिस्तथा ॥ १३ ॥

ध्रुवस्य पुत्रोभगवान्कालोलोकप्रकालन । सोमस्यभगवान्चर्वाधम्यद्रविण सुत
मनोजवो नलम्यासीद्विशालगतिस्तथा ।

पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली । स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः
 अदृश्यः प्रययौ तूष्णं यत्र नारायणः प्रभुः । गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा
 सञ्चिन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः । नरस्यार्द्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्द्धतनुं तथा
 नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे । आविर्बभूव सहसा मोहयन् दैत्यदानवान्
 दंप्राकरालोयोगात्मा युगान्तदहनोपमः । समाख्याऽऽत्मनः शक्तिसर्वसंहारकारिकाम्

भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः ।

दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रहादं ज्येष्ठपुत्रकम् ॥ ५७ ॥

वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः । इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्माद्भूतशक्तिकम् ॥
 सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाऽऽशुभयेरितः । सतन्नियोगादसुरः प्रहादो विष्णुमव्ययम्
 युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः । ततः संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः
 ध्यात्वा पशुपतेरखं ससर्ज च ननाद च । तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
 न हानिमकरोदखं तथा देवस्य शूलिनः । दृष्ट्वापराहतं त्वखं प्रहादो भाग्यगौरवात्
 मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् । सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा
 ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।

स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवं ॥ ६४ ॥

निर्वार्य पितरं भ्रातॄन् हिरण्याक्षं तदा ब्रवीत् । अयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवान्जः
 पुराणः पुहरो देवो महायोगी जगन्मयः । अयं धाता विधाता च स्वयं ज्योतिर्निर्जितः
 प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्यया । ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ॥
 गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् । एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्
 प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।

अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ॥ ६६ ॥

समागतोऽस्मद्भवन्मिदानीं कालचोदितः । विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामतिः
 मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् । कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः
 कालेन हन्यते विष्णुः कालात्मा कालहण्यकः । तत्र सत्त्वयुक्तेन चेतसा

द्वेषा ऊचुः

हिरण्यकशिपुनां प्रलयणो परम्पित ॥ ३३ ॥

धापते भगवन्दैत्यो द्वेषान् सव्यान् सदापिभिः ।

अवध्यं सत्यमृतानां त्वामृते पुनरीक्ष्यते ॥ ३४ ॥

हन्तुमहसि सव्येषां प्राणाऽपि त्य जगन्मय । ध्रुव्यात्तद्देवतैस्तस्य विष्णुर्गोविन्मायन
पथाय दैत्यमुष्यस्य सोऽग्नौ न पुरुषं स्वयम् । मत्पत्यतवधर्माणं धोरूपप्रपातकम्

शङ्खवज्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः । हन्या तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः

इमं देशममागतु क्षिप्रमहसिर्षोऽग्नौ । निशम्य धैर्येण्यथाकथं प्रणम्य पुरुगान्तनम्

महापुरुषमपक ययौ सत्यमहापुरम् । विमुञ्चन् भैरव नादं शङ्खवज्रगदाधरम् ॥ ३६

आम्य गच्छ द्यौं महामेघस्त्रिपर । आकण्ठ्य दैत्यप्रवरा महामेरखोपमम् ॥ ४०

समं च चरित्ते नादं तथा दैत्यपतेभ्यान् ।

अमुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषा देवतोदित ॥ ४१ ॥

विमुञ्चन् भवत्तनादीनामो वनाङ्गनम् । ततः सदासुरवरहिरण्यकशिपुं स्वयम्

सञ्चद सायुधैःपुनः सप्रहादस्त्विदा ययौ । दृष्ट्वा तं गरुडाकृद सूर्यकोटिमप्रभम्

पुरुषं पञ्चताकार नारायणमिवापरम् । दुद्रुतु केषिदन्वोन्यमत्रु सम्भ्रान्तगोचरा

अथस द्यौं देवानां गता नारायणोरिषु । अस्माकमप्ययो नूनतः सुतोषासमागतः

इत्युक्त्वा शङ्खत्रयाणि समृन्तु पुरुगवते । सतातिचाक्षतो देवोत्तारायामासलीलया

हिरण्यकशिपो पुत्राश्चचार प्रधितोत्तमः । पुत्रनारायणोद्भूत युयुधुर्मेघनि स्वता

प्रदात्तध्यानुराञ्च सहादा हाद एव च । प्रदाद प्रादिणोद्ब्रह्ममनुहादोऽथ धैर्यधन

सहादधापि कौमारमाग्नेय हाद एव च ।

तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि धैर्यधनम् ॥ ४६ ॥

नशङ्कन्धात्तु विष्णुं गामुर्ध्वं यथातथम् । प्रधासौचतुरं पुत्रान्महायादृम्महाबलं

प्रगृह्य पादेषु कश्चिदक्षेप च तनाद च । विमुनेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुं स्वयम्

पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं वली । स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः
 अद्भुतः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणःप्रभुः । गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा
 सञ्चिन्त्य मनसादेवःसर्वज्ञानमयोऽमलः । नरस्यार्द्धतनुं कृत्वासिंहस्यार्द्धतनुं तथा
 नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे । आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्
 दंप्राकरालोयोगात्मा युगान्तदहनोपमः । समारुह्याऽऽत्मनःशक्तिसर्वसंहारकारिकाम्
 भानि नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः ।

दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रहादं ज्येष्ठपुत्रकम् ॥ ५७ ॥

वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः । इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्माद्नशक्तिकम् ॥
 सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाऽऽशुमयेरितः । सतन्त्रियोगादसुरःप्रहादोविष्णुमव्ययम्
 युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः । ततः संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः
 ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च । तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
 न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिनः । दृष्ट्वापराहतं त्वस्त्रं प्रहादो भाग्यगौरवात्
 मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् । सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेनचेतसा
 ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।

स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवं ॥ ६२ ॥

निर्वार्यपितरंभ्रातृन् हिरण्याक्षंतदाप्रवीत् । अयंनारायणोऽनन्तःशाश्वतो भगवानजः
 पुराणःपुरुषोदेवो महायोगी जगन्मयः । अयंभ्राताविभ्राता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः
 प्रधानं पुरुषं तस्त्रं मूलप्रकृतिरव्यया । ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ॥
 गच्छध्वमेनंशरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् । एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुःस्वयम्
 प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।

अयं सर्वात्मना बध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ॥ ६६ ॥

समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः । विहस्य पितरं पुत्रो वचःप्राहमहामतिः
 मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् । कथं देवो महादेवः शाश्वतःकालवर्जितः
 कालेनहन्यतेविष्णुःकालात्मा कालरूपधृक् । ततःसुवर्णकशिपुर्दुरात्माकालचोदितः

निगारितोऽपिपुत्रेण युयुधे हरिमथ्ययम् । संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्
 नर्वविदारयामास प्रहादस्यैव पश्यत । हने हिरण्यकशिपीं हिरण्याशो महाबल
 विमृत्यु पुत्र प्रहादं दुद्रुवे भयविह्वल । अनुतादादयः पुत्रा भन्ये च शतशोऽसुप्त
 वृसिहदेहसम्भूते सिद्धेर्नोता यमक्षयम् । तत मंहस्य तद्रूप हरिकारायण प्रभु ॥
 स्वमेव परम रूप ययो नारायणाह्वयम् । गते नारायणे दैत्य प्रहादोऽसुस्तनम
 अभिभक्तेषुपुत्रेण हिरण्याक्षमयोऽजयन् । स बाधयामास सुराग्रणे जित्वा मुनीनपि
 सन्ध्याऽन्धक महापुत्रं तपसाऽऽराध्य शङ्करम् ।

देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् मुञ्च्यवा च धर्णांमिमाम् ॥ ७६ ॥

नात्वारमातलक्षके देवान्निष्प्रमास्तथा । तत सत्रप्रकादेवा परिभ्रानमुपधिय
 गत्वा विज्ञापयामामुर्विष्णवे हरिमन्दिरम् ।

स चिन्तयित्वा विभ्वान्मा तद्बधोपायमथ्यय ॥ ८१ ॥

सवदेयमय शूत्र वागहञ्ज पुरा दधे । गन्धा हिरण्यनयन हत्वा त पुण्योत्तम ॥
 द्रुणोद्धारयामास कल्पादौ धर्णांमिमाम् ।

एकन्धा वागहसंस्थान सत्थाप्यैव सुरद्विपः ॥ ८३ ॥

स्वामेवप्रवृत्तिदिव्याययोर्विष्णुः परंपरम् । तस्मिन्हनेऽमररिपीप्रहादोविष्णुतत्पा
 क्षपालयन्स्वकरान्यभावत्यक्त्वातशसुरम् । यजतेविधिवद्देवान्विष्णोराशधनेरत
 नि सप नसदाराज्यंतस्यासाद्विष्णुर्भवत् । तत कदाचिदसुरोऽज्ञानं गृहमाननम्
 न च सम्भाषयामास देवानाञ्जैव मायया । स तेन तापसोऽत्यर्थमोहितेनाद्यमानिन
 शशापासुरराज्ञान क्रोधमंरक्तलोचन । यन्नद्रुवल समाधित्य ब्राह्मणानचमन्यसे ॥

सा शक्तिर्वेष्णवा दिव्या विनाशन्ते गमिष्यति ।

इत्युतवा प्रयथो नृप प्रहादस्य गृहाद् द्विज ॥ ८६ ॥

मुमोह गन्धसक्त सोऽपि शापरलान्तत । बाधयामासविष्णोऽभयिषेदजताईनम्
 पितृवधमनुस्मृत्य क्रोधञ्जैव हरिं प्रति । तयो समभवचुङ्ग सुघोरं रोमहर्षणम् ॥
 नारायणस्य श्वस्य प्रहादस्यामरद्विप । हत्वा स सुमहद्यञ्जं विष्णुना तेननिजित

पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात्परस्मिन्पुरुषे हरी । सञ्जातं तस्य विज्ञानंशरण्यं शरण्ययौ
 ततः प्रभृतिदैन्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्बहन् । नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ॥
 हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसकचेतसि । अवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः ॥
 हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्द्वैहसमुद्भवः । मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम् ॥
 पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः । ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः ॥ ६७ ॥
 ततः कदाचिन्महतीकालयोगेनदुस्तरा । अनावृष्टिरतीवोश्रा ह्यासीद्भूतविनाशिनी
 समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् ।

अयाचन्तः क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम् ॥ ६६ ॥

स तेभ्यः प्रदद्रावन्नं मृष्टं बहुतरं वृधः । सर्वे वृभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा ॥
 गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शङ्करी । बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभृज्जगत् ॥
 ततः सर्वे मुनिवराः समामन्थ परस्परम् । महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः
 निवारयामास च तान् कञ्चित्कालं यथासुखम् ।

उपित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः ॥ १०३ ॥

ततोमायामर्थी सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्वपवते । समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्यमहात्मनः
 सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः ।

गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥ १०५ ॥

स शोकेनाभिसन्तप्तःकार्याकार्यमहामुनिः । नपश्यतिस्मसहसा तमृषिमुनयोऽद्भुवन्
 गोवध्येयंद्विजश्रेष्ठ! यावत्तव शरीरगां । तावत्तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेवहि
 तेनातोऽनुमताः सन्तो देवदारुवनंशुभम् । जग्मुः पापवशनीत्वातपश्चतुं यथापुरा
 सतेपांमाययाज्जातांगोवध्यांगौतमोमुनिः । केनापिहेतुनाज्ञात्वाशशापातीव कोपतः
 भविष्यन्ति त्रयी द्राह्या महापातकिभिः समाः ।

बहुशस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः ॥ ११० ॥

सर्वसम्प्राप्यदेवेशंशङ्करंविष्णुमध्ययम् । अस्तुवन्लौकिकैःस्तोत्रैरुच्छिष्टा इवसर्वगौ
 देवदेवौ महादेवौ भक्तानामर्त्तिनाशनौ । कामवृत्त्या महायोगौ पापात्रह्यातुमर्हतः

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य पृथग्भोज ।

किमेतेषां भ्रंशकान्यं ब्राह्म पुण्यविष्णामिति ॥ ११३ ॥

तत्र समगवाविष्णु शरण्योमत्तरम् । गोपतिब्राह्मविरेन्द्रानालोक्यप्रजागृह्ण
न वेदधातो पुरुषपुण्यतेशोऽपि शङ्कर । सङ्गच्छते महादेव धर्मो वेदाद्विनिर्गमो ॥
नधाविमन्वासासाद्भक्षितध्यामहेभ्यः । भस्मामि मयं एवंते गन्तारो नरकानपि
नस्माद्विरेदयाद्यानारक्षणाधायपापिताम् । विमोहनायशास्त्राणि नरिष्यामो वृषध्वज
एवंमन्त्रो धितोऽग्रा माधयेत मुरारिणा । चकारमोहशास्त्राणि केशवोऽपिशिषेरित
कापाल नाङ्गु वाम भस्व पूवपश्चिमम् । पश्चरात्र पाशुपतं तथाऽन्यानि सहस्रा
मृदा तानाह निर्वेदा बुर्घाणांशास्त्रोदितम् ।

पतन्तो नरके घोरे घट्टकटपात्र पुन पुन ॥ १२० ॥

ज्ञापन्तो मानुषलोके क्षाणपापघनास्त्रम् । ईश्वराराधनयलाङ्गुच्छर्चं सुमताङ्गुतिम्
चत्तध्वमन्त्रमादेन तान्वधानिरुतिर्हिष । ण्वमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितान्नेमहस्य
नादशमन्त्रपद्यन्तशिरस्यासुरविष्टिम् । चक्रन्नेऽन्यानिशास्त्राणि तत्र तत्रता पुन
शिर्यानाद्यापथामासुशयिचाङ्गलानि च । मोहापसदम लोकमघतायं महीतले ॥
चकार शङ्करा भिन्ना हितायपा द्विजसह । कपालमालामरण प्रेनमस्मावगुण्डित
विमोहयज्ञाकमिमज्जटामण्डलमण्डित । निभित्यपारंतीदेवीं विष्णावमितनेजसि
नियोय भगवानाग्रा भग्घ दुष्टनिग्रहे । त्त्वा नारायणे दे यानन्दन कुलनन्दनम् ॥
मन्थाप्य नत्र च गणान्दवानिन्द्रपुरागामान् ।

प्रस्थितं च महादेवे विष्णुर्विभवतु स्वयम् ॥ १२८ ॥

स्वरूपधारा नियतं सद्यते स्म महेश्वराम् । ब्रह्माणुनाशन शक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवा
सियविरे महादेवा स्वरूप शोभनहृता । नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तयज्ञम
द्वारदश गणाध्यक्षो यथापुत्रमतिष्ठत । एतन्मिन्नन्तरे दैत्यो शन्धको नाम दुर्मति
आहूत कामो गिरिवामानगामाद्य मन्दरम् । सम्प्राप्तमन्त्रक दृष्ट्वा शङ्कर कालभैरव
म्यवधयद्मयात्मा कालरूपधरो हर । तयो समभवद्युज सुघोर रोमहर्षणम् ॥

श्रुतेनोरगिनं दैत्यमाजयान् नृपध्वजः । ततः सहस्रशो दैत्या सहस्रान्धकामङ्गिताः
 नन्दीभवगादयो दैत्यैरन्धर्करभिनिङ्गिताः । गण्टाकर्णो मंगनादहण्टैशधण्टनापनः
 चिनायकोमेववाहः सोमनन्दी च धृषतः । सर्वेऽन्धकदैत्यवरं सन्प्राप्यातिपत्तान्विताः
 युयुधुः शूलशकन्युष्टिमिङ्कटवग्भयः । क्षामयित्वा तु हान्ताभ्यांशूर्त्वाभ्यान्गणहणे
 दैत्येन्द्रेणाऽतिवलिता क्षिमास्तेऽनयोऽजम् । ततोऽन्धकनिम्नप्राशतनोऽभवाभ्यः
 कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवश्चागिदुद्रुगुः । हातिनि शकः सुमहान् चभुवानिभयदुरः ॥
 युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भैरवम् । दृष्ट्वाभ्याकानां सुखलं दृष्ट्व्यभिक्षितो हरः ॥

जगाम शरणं देवं नामुदेवमजं विभुम् ।

सोऽमुज्जह्मवान्विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम् ॥ १४६ ॥

देवीपादार्चयित्वा देवीं चिनाशायमुरक्षिताम् । तदान्धकमाह्वयन्तु देवीभिर्यमसादनम्
 नीतं केशवमाहात्म्यार्हात्पर्यवरणाक्षिरं । दृष्ट्वा पराहृतं सैन्यमन्धकोऽपि महानुरः ॥
 पराङ्मुगोष्णात्सन्मादवलायतमहाजघः । ततःश्रीं तांसादैवैः दृष्ट्वाहाशयार्पिताम्
 तिताय भक्तलोकानामाजगामाथ मन्दरम् । सन्प्राप्तमीभ्वरंशान्वा सर्वंगण गणेभ्यसः
 समागम्योपतिष्ठन्त भानुमन्तमिव द्विजाः । प्रविश्यभवनं पुण्यमयुक्तानां दुग्ममदम्
 ददर्श नन्दिनन्दैवं भैरवं केशवं शिवः । प्रणामप्रवर्णं देवं सोऽनुगृणाथ नन्दिनम् ॥
 प्रीत्येवं पूर्वमीशानःकेशवंपरिष्वजे । दृष्ट्वा देवो माहादेवीं प्रीतिचिन्कारिनेक्षणाम्
 प्रणतः शिरसा तस्पाः पादयोर्गोभ्वरस्य च । न्यधेऽयजगन्तस्मै शङ्करायाथ शङ्करः

भैरवो विष्णुमाहात्म्यप्रतीतः पादार्चनोऽभवत् ।

श्रुत्वा तं चिजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च ॥ १५० ॥

समास्ते भगवानीशो देव्यामह वरासने । ततो देवगणाः सर्वे मरुचिप्रमुखाद्विजाः
 आजगमुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् । येन तद्विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्
 समागतन्दैत्यसैन्यमीशदर्शनकाङ्क्षया । दृष्ट्वा घरासनासीनन्देव्या चन्द्रविभूषणम्
 प्रणमुगदस्तद्देव्योगायन्तिस्मात्तिलालसाः । प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपादार्चयिपिनाकिनः
 देवासनगतां देवीं नारायणमनोमयीम् । दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्यो नारायणं तथा

प्रणम्य देवमीशान पृष्टवत्यो धराङ्गना ।

कन्या ऊचुः

कस्त्व चित्राङ्गने कान्त्या केयम्यला रविप्रभा ॥ १५६ ॥

को न्ययन्भाति यपुषा पट्टजायतलोघन । निशम्यतासा घघन वृषेन्द्रवरवाहन
व्याजहार महायोगी भूनाधिपतिरव्यय । अयन्नाराणो गौरा जगन्माता सत्राप्त
विमन्यमान्स्थितादेव स्वामान वसुधेश्वर । न मे विदुः परन्तस्व देवाश्चन महर्षय
एकोऽय वेद विधात्मा भवानी विष्णुरेव च ।

अहं हि निस्पृहःशान्त केवलो निष्परिग्रहः ॥ १६० ॥

मामेव केशव प्रादुर्लक्ष्मीं देवीमघाम्यकाम् । एषाणां विधानाच्च कारणकार्यमेव च
कर्त्ताकारयिता विष्णुमुक्तिमुक्तिफलप्रद । मोक्षा पुमानप्रमेय संहर्ता कालरूपधृ
श्रया पाता वामुदेयो विधात्मा विधतोमुख ।

कृट्स्थो ह्यसुरो व्यापी योगी नाराणोऽप्यय ॥ १६३ ॥

तारक पुरयो ह्यात्मा केवल परमं पदम् । संपा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना
शान्ता मया सदानन्दा परम्यदमितिधृति । अस्यां सर्वमिदञ्जालमत्रैवलपमेत्यति
एषैव सर्वभूतानाङ्गीर्त्तामुत्तमा गति । तथाऽहं सङ्गतो देव्या केवलो निष्कल पा
एष्याम्यशोभमेवाह परमा मानमव्ययम् । तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानर्माभ्यम्
एवमेव विज्ञानीय ततो यास्यथ निवृत्तिम् ।

मन्यन्ते विष्णुमप्यकस्मान्मानं धडयान्विता ॥ १६८ ॥

येमिन्द्रपुत्रा चरात पूत्रयन्तो न मे प्रिया । द्विपत्नि ये जगत्सृष्टि मोहितारौरवाविपु
एचरमाना नमुच्यन्ते कल्पकोटिरुपरि । तस्मादशोभूतानां रक्षकोविष्णुरव्यय
यथावदिह विज्ञाय ध्येय सर्वापदि प्रभु । धृष्या मगधतोपाश्वर्य देवा सर्वे गणेश्वरा
त्रेमुनीरायर्ष इयन्देर्षा षडिमशौलजाः । प्रायं वामासुरीशाने भक्तिं मन्त्रजनमिदं
भवानीवाइयुगले नारायणपदाम्बुजे । ततो नारायणं दिवं गणेशां मानरोऽपि च ॥
अदस्यन्ति जगत्सृष्टिन्तदद्भुतमिषामपत् । तदन्तरे महादेव्यो ह्यन्धकोमन्मयागध

मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययां ।

अथानन्तवपुः श्रीमान्योगी नारायणोऽमलः । तत्रैवाचिरभृद्द्वैत्यैर्युद्धाय पुरुपोत्तमः

कृत्वाऽथ पाश्र्वे भगवन्तमीशो युद्धाय चिष्णुं गणदेवमुख्यैः ।

शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः स कालरुद्रोऽपि जगाम देवः ॥ १७६ ॥

त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।

तमन्वयुस्ते गणराजवर्या जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥ १७७ ॥

रराज मध्ये भगवान् सुराणां विवाहनो चारिजपर्वणः ।

तदा सुमेरोः शिखराधिरुद्धस्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवाकः ॥ १७८ ॥

जयन्ननादिर्भगवानमेयो हरः सहस्राकृतिराचिरासीत् ।

त्रिशूलपाणिर्गगने सुद्योपः पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः ॥ १७९ ॥

समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं दैत्यरिपुं गणेशीः ।

युयोध शक्रेण समातृकाभिर्गणैरशोपैरमरप्रधानैः ॥ १८० ॥

चिजित्य सर्धानपिवाहुवीर्यात्स संयुगे शम्भुरजन्तधामा ।

समाययौ यत्र स कालरुद्रो विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः ॥ १८१ ॥

द्रष्टृन्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः । व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम् ।

त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते ॥ १८३ ॥

त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः ।

सून्यते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्धिर्विचक्षणैः ॥ १८४ ॥

स वासुदेवस्यवचोनिशम्यभगवान् हरः । निरीक्ष्यचिष्णुं हननेदैत्येन्द्रस्यमतिन्दर्धो

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम् । स्तुवन्ति भैरवन्देवमन्तरीक्षचरा जनाः ॥

जयानन्त महादेव कालमूर्त्तं सनानन । त्वमग्निः सर्वभावानामन्तस्तिष्ठसि सर्वगः

त्वमन्तको लोककर्ता त्वन्धाताहरिरध्ययः । त्वं ब्रह्मात्वं महादेवस्त्वन्धामपरमं पदम्

:ओङ्कारमूर्त्तयो गात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः । महाविभूतिर्विश्वेशो जयानन्तजगत्पते

तत कालाग्निद्रोऽसौ शृहीत्वाऽन्धकर्माश्वर ।

त्रिशूलाग्नेषु विन्यस्य प्रतनर्त्त सताङ्गति ॥ १९० ॥

दृष्ट्वान्धकन्देवगणाऽङ्गप्रोनेपितामहः । प्रणेमुरीश्वरं देवं मैग्वम्भवमोचनम् ॥ १९१ ॥

अन्तुवन्मुतय सिद्धाजगुगन्धर्वकिश्ररा । अन्तरीशेऽप्सर सङ्घानृत्यन्तिस्ममनोदया

संस्थापितोऽथ शूलाग्ने सोऽन्धको दग्धकिलिष्य ।

उपप्रातिलिषिज्ञानन्तुष्टाय परमेश्वरम् ॥ १९३ ॥

अन्धः उवाच

तमामि मृध्नां भगवन्तमेक समाहितो य विदुरीश तत्त्वम् ।

पुगतनं पुण्यमतन्तरूप काल क्वचि योगधियोगहेतुम् ॥ १९४ ॥

दृष्ट्वाकराल दिधि मृत्यमान द्रुताशघकथं ज्वलनार्थरूपम् ।

सहस्रपादाक्षिशितोभियुक्तं भवन्तमेक प्रणमामि रद्मम् ॥ १९५ ॥

जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीतामलतन्धरूप ।

त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यो वाहादिभेदैरखिलान्मरूप ॥ १९६ ॥

त्वामेकमाहु पुंस्य पुराणमादित्यवर्णस्तमस परस्तान् ।

त्वं पश्यस्मीद् परिपास्यजस्य त्वमन्तको योगिगणानुत्तुष्ट ॥ १९७ ॥

तकोऽन्तरामा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशोपहीन ।

त्वमा मतस्य परमात्मशब्द भवन्तमाहु शिवमेव केचित् ॥ १९८ ॥

त्वमश्वर ब्रह्म पर एवित्रमानन्दरूप प्रणवाभिधानम् ।

त्वर्माभवने वेदविदा प्रसिद्ध स्वायम्भुवोऽशोपविशोपहीन ॥ १९९ ॥

त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हस प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञ ।

प्रजापतिमंगवानेकरूपो नीलप्रीव स्तूयसे वेदविद्धि ॥ २०० ॥

नारायणस्त्व जगतामनादि पितामहस्त्व प्रपितामहश्च ।

श्रेष्ठान्तगुरोपनिषत्सु गीत सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ २०१ ॥

तत्र परस्मै तमस परस्तात्परात्मने पञ्चनवान्तराय ।

त्रिशक्तयतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ २०२ ॥

त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपदात्ममूर्त्ते जगन्निवासाय जगन्मयाय ।

नमो जनानां हृदि संस्थिताय फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ २०३ ॥

मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्मपेश्वर्यधर्मसासनसंस्थिताय ।

नमः परान्ताय भवोद्भवाय सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्त्ते ॥ २०४ ॥

नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यवाहो !

नमोऽग्निचन्द्रार्कविलोचनाय नमोऽग्निवाकायाः पतये मृडाय ॥ २०५ ॥

नमोऽस्तु गुहाय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।

त्रिकालहीनामलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥ २०६ ॥

एषं स्तुतः स भगवान् शूलाग्रादवतार्य तम् ।

तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः ॥ २०७ ॥

प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेनसाम्प्रतम् । सम्प्राप्यगाणपत्यंमेसन्निधानेसदावस

अरोगश्छिन्नसन्देहो देवैरपि सुपूजितः । नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ॥

एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः । गणेश्वरं महादैत्यमन्ध्रकं देवसन्निधी ॥ २१०

सहस्रसूर्य्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिहितम् । नीलकण्ठं जटामौलिंशूलासक्तं महाकरम्

दृष्ट्वातन्तुष्टुबुद्धैर्देत्यमाश्चर्यं परमङ्गताः । उवाच भगवान्विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव ॥ २१२

स्थानेतवमहादेव प्रभावः पुरुषो महान् । नेक्षतेज्ञातिजान् दोषान् गृह्णातिचगुणानपि

इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः सकेशवःसहान्ध्रकोजगामशङ्करान्तिकम्

निरीक्ष्यदेवमागतं सशङ्करःसहान्ध्रकम् समाधवं समातुकं जगामनिवृत्तिहरः ॥

प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजं जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवह्नभा

विलोक्यसासमागतं पतिम्भवार्तिहारिणम् उवाच सान्ध्रकं सुखंप्रसादमन्ध्रकम्प्रति

अथान्ध्रको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगां पपात दण्डवत्क्षितौ ननामपादपद्मयोः

नमामि देववह्नभानादिमद्भिजामिमां यतः प्रधानपूरुषो निहन्ति याऽखिलजगत्

विभाति या शिवासने शिवेन साकमन्यया ।

हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि ता हिमाद्रिजाम् ॥

यदन्तराखिल जगद्भगन्ति यान्ति सद्भुयं,

नमामि यत्र तामुमामशेषदोषवर्जिताम् ॥ २१७ ॥

न जायते नहीयते नवद्भंतेचतामुमा नमामि तां गुणातिगागिरीशपुत्रिकामिमाम्

क्षमस्व देवि शैलजे वृतं मया विमोहितं सुरासुरैर्नमस्वृत नमामि ते पद्मवुजम्

इत्थ भगवती देवी भक्तिनम्रेण पार्व्यती । सस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वेजगृहेऽन्धकम्

तत स मातृभि सार्द्धं भैरवोऽद्रसम्भव । जगाम त्वाज्ञयाशम्भो पाताल परमेश्वर

यत्र सा तामसी चिष्णोमूर्त्तिं संहारकारिका ।

समात्ते हरिव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वर ॥ २२१ ॥

ततोऽनन्तावृति शम्भु शेषेणाऽपि सुपूजित ।

कालाग्निरुद्रो भगवान् युपोजाऽऽत्मानमात्मनि ॥ २२२ ॥

युजतस्तस्य देवस्य सर्वापवाध मातर । बुभुक्षिता महादेव प्रणम्याहुस्त्रिगोचनम्

मातर ऊचु

बुभुक्षितामहादेव त्वमनुज्ञानुमर्हसि । प्रैलोक्य भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति न

पनाचदुक्त्वा वचनमातरो विष्णुसम्भवा । भक्षयाञ्जविरे सर्वे प्रैलोक्यसचराचम्

तत स भैरवो देवो नृसिंहपुत्रं हरिम् । दर्शयान्तराथर्षं देव प्रणम्य च कृताञ्जलि

उमेशचिन्तितं ज्ञात्वा श्रणात्प्रादुरभूद्धरि । विश्रापयामास च त भक्षयन्तीह मातर

निधारयासु प्रैलोक्यं त्वदीयाभगवन्निति । सस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहपुत्राय पुन

उपतन्धुमहादेव नरसिंहावृति तत ॥ २२८ ॥

सम्प्राप्य सन्निधिं विष्णो सर्वां संहारकारिका ।

प्रदु शम्भय शक्ति भैरवायाऽतितीजसे ॥ २२९ ॥

अपश्यन्ता जगत्सृतिं नृसिंहमनिभैरवम् । क्षणादेकत्वमापद्यं शोभतिऽपि मातर

व्याजह्वार हवींशोये भक्ता शूलपाणये । येच मां संस्मरन्तीह पालनीया प्रयत्न

मर्मय मूर्त्तिरनुज्जा सप्तसंहारकारिका । महेष्वात्प्रातम्भृता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥

वनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्थामर्मेव तु । तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः

सोऽहं देवो दुरार्धः कालोलोकप्रकालनः ।

भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत् ॥ २३४ ॥

या सा विमोहिनी मूर्त्तिर्मम नारायणादृया ।

सत्त्वोद्रिक्ता जगत्सर्वं संस्थापयति नित्यदा ॥ २३५ ॥

स विष्णुः परमं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः । मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते

इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः । प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम्

पतद्ब्रह्म कथितं सर्वं मयान्धकनिपूदनम् । माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितीजसः

इति श्रीकूर्ममहापुराणे दक्षकन्यावंशानुकात्तनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

त्रिविक्रमचरितवर्णनम्

सूत उवाच

बन्धके निगृहीते वै प्रहादस्य महात्मनः । विरोचनो नाम बली यभृव नृपतिःसुतः

देवाञ्जित्वासदेन्द्रान् बह्वन्वर्षान्महासुरः । पालयामान धर्मेणत्रैलोक्यंसत्त्वगचरम्

तस्यैवंवर्त्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः । सनत्कुमारो भगवान् पुरंप्रापमहामुनिः

गतवा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः । ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरोत्तमम् ।

योगीश्वरोऽद्य भगवान्यतोऽसौ ब्रह्मचित्स्वयम् ॥ ५ ॥

किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयंदेवः पितामहः । ब्रूहिमे ब्रह्मणःपुत्र किंकार्यं कंग्वाण्यहम्

सोऽब्रवीद्भगवां देवो धर्मयुक्तं महासुरम् । द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि

सुदुर्लभानीतिरेवा दैत्यानां दैत्यसत्तम । त्रिलोकैवार्मिको नूनं त्वाद्दृशोऽन्योनचिद्यते

इत्युक्तोऽसुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम् । धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मेऽब्रह्मवित्तम्
सोऽब्रवीद्भगवान्योगी दैत्येन्द्राय महात्मने । सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम् ॥

सलब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च मुददक्षिणाम् ।

निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ११ ॥

स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः ।

ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरन्दरम् ॥ १२ ॥

कृत्वा तेन महद्युद्धं शकः सर्वानरैर्बुधैः । जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम्
तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता ।

दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ॥ १४ ॥

तताप सुमहाबोर तपोराशिं ततः परम् । प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्
कृत्वा हृत्पद्मकिञ्चने निष्कलपरमम्पदम् । चासुदेवमनाद्यन्तं मामन्दव्योमकेवलम्
प्रसन्नो भगवान्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरः । आविर्भूय योगात्मा देवमातुः पुरो हरिं
दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिभक्तिसयुता । मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास वैशम्पै

अदितिर्वाच

जयाऽशेषदुःखोचनाशंकेतो' जयानन्त' माहान्भययोगाभियुक्त' ।

जयाऽनादिमध्यान्तविज्ञानमूर्त्त' जयाऽऽकाशकल्पामलानन्दरूप' ॥ १६ ॥

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शपाय तुभ्यम् ।

नमः कालरुद्राय सहारकर्त्रे नमो चासुद्धाय तुभ्यं नमस्ते ॥ २० ॥

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् ।

नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥ २१ ॥

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्त्ते' नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य' ।

नमो भूधरायाऽप्रमेयाय तुभ्यं प्रभो' विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥ २२ ॥

नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम् ।

नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥ २३ ॥

एवं स भगवान् विष्णुर्द्वेषमात्रा जगन्मयः । तोपितश्छन्दयामास घरेण प्रहसन्निव
रणस्य शिरसा भूमौ सा चब्रे वग्मुत्तमम् । त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वर्ये वरम्
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः । दत्त्वा घरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततो बहुतिथेकाले भगवन्तं जनार्दनम् । दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्
समाचिष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम् । उदपाता जज्ञिरे घोरा वलेर्वैरोचनेः पुरे ॥२८॥

निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान्दैत्येन्द्रो भयविह्वलः । प्रहादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्

बलिरुवाच

पितामहमहाप्राज्ञजायतेऽस्मिन्पुरान्तरे । किमुत्पातोभवेत्कार्यमस्माकंकिनिमित्तकः
निशम्य तस्य वचनञ्चिरं ध्यात्वामहासुरः । नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्

प्रहाद उवाच

यो यज्ञंरिच्यतेविष्णुर्यस्यसर्वमिदञ्जगत् । दधारासुग्नाशार्थमातातंत्रिदिवोकसाम्
यस्मादभिव्रं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि ।

स चासुदेवो देवानां मातुर्द्वैहं समाचिशात् ॥ ३३ ॥

न यस्य देवा जानन्तिस्वरूपंपरमार्थतः । स विष्णुरद्वितैर्द्वैहंस्वेच्छयायसमाचिशात्
यस्माद्भवन्तिभूतानियत्र संयान्तिसंक्षयम् । सोऽवतीर्णोमहायोगीपुगणपुरुषोहरिः
न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना । सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेनजायते

यस्य सा जग्मतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी ।

माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः ॥ ३७ ॥

यस्यसातामसीमूर्ध्निःशङ्करो गजसीतनुः । ब्रह्मासञ्जायते विष्णुरंशेनैकैकसत्त्वधृक्
इतिसञ्चिन्त्यगोविन्दंभक्तिप्रेणचेतसा । तमेवगच्छशरणंततोयास्यसिनिवृत्तिम्
ततःप्रहादवचनाद्वलिवैरोचनिर्हरिम् । जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मचित् ॥
काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्द्धनम् । असूत कश्यपाच्चैनंदेवमातादितिःस्वयम्
स्वतुभुंजंविशालाश्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानंश्रियावृतम्
उपतस्थुः सुराः सर्वेसिद्धाःसाश्चाश्चचारणाः । उपेन्द्र इन्द्रप्रमुखाब्रह्मावर्षिगणैर्वृतः

हृत्नोपनयनो धेदानर्घ्येष्ट भगवान् हरि । सदाचारं भग्द्वारात्त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥
 एष च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवसते ॥

तत्र कालेन प्रतिमात् बलिर्षैरोचनि स्वयम् ।

यज्ञैर्यज्ञेभ्यश्च विष्णुमर्चयामास सार्धगम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणान्पूजयामास इत्या यदुत्तर धनम् । ब्रह्मरथं समाजमुप्यंजयात् महाभक्तम् ॥
 विनाय विष्णुभंगवान् भरद्वाजप्रचोदित ।

भास्व्याय धामन रूप यज्ञदेशमधामम् ॥ ४२ ॥

हृष्णाजिनोपर्याताङ्गं भागदेनविराजित । ब्राह्मणो जटिलोपेदानुद्गिरन्नुमहाद्यति
 सम्राज्याऽसुरराजस्य समार्षं मिथुको हरिः ।

स्वपदुभ्या यमितं देशमपावत बलिन्त्रिभिः ॥ ५० ॥

प्रथ्याल्य चरणां विष्णोर्वलिर्भावममन्वित ।

आधामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

शस्ये तथेदम्भवत् पदत्रयं प्रीणानु देवो हरिरिव्यपाकृतिः ।

विचिन्त्य देवस्य कराप्रपह्नेन निपातयामास सुशीतलं त्रयम् ॥ ५२ ॥

विचरन् गृध्रिप्रमितं रथंतामधान्तरिक्षन्दिवमादिदेव ।

व्यपेतरागन्दितिजेऽगन्तं प्रकर्तुंकाम शरणं प्रपन्नम् ॥ ५३ ॥

आक्रम्य लोकत्रयमीशापाद् प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम ।

प्रणमुशान्तिव्यमुष्ठा सुरेन्द्रा ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धा ॥ ५४ ॥

अधोपतस्थे भगवाननादि पितामहस्तोऽप्यभ्यास विष्णुम् ।

भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्द्धं जगाम त्रिव्यामरणोऽथ भूय ॥ ५५ ॥

अथाष्टभेदाग्निपयान् शीतलं महाजलं पुण्यवृद्धिश्च ज्ञुष्टम् ।

प्रवर्तिता चापि सरिद्धरा सा गङ्गैत्युक्त्वा ब्रह्मणा व्योमस्तस्या ॥ ५६ ॥

गत्वा महान्तं प्रवृत्तिं ब्रह्मयोनिं ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम् ।

अतिष्टुर्दशस्य पदं तदव्ययं दृष्ट्वा देवान् तत्र तत्र स्तुवन्ति ॥ ५७ ॥

आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं महान् बलिर्मक्तियोगेन विष्णुम् ।

ननाम नारायणमेकमव्ययं स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः ॥ २८

तमब्रवीद्भगवानादिकर्त्ता भूत्वा पुनर्चामनो वासुदेवः ।

ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥ ५६ ॥

प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे ।

दास्ये तवाऽऽत्मानमनन्तधाम्ने त्रिविक्रमायाऽमितविक्रमाय ॥ ६० ॥

प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं प्रहादसूनोरथ शङ्खपाणिः ।

जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥ ६१ ॥

समास्यतां भवता तत्र नित्यं भुक्त्वा भोगान्देवतानामलभ्यान् ।

ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्मां ॥ ६२ ॥

उत्तैवं दैत्यसिंहं विष्णुः सत्यपराक्रमः । पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौ जिष्णुस्त्वहम् ।

संस्तुवन्ति महायोगसिद्धा देवर्षिकिन्नराः । ब्रह्माशक्रोऽथ भगवान्द्रादित्यमरुद्गणाः

कृत्वैतद्दुतं कर्म विष्णुर्चामनरूपभृक् । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥

सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान्पातालं प्राप नोदितः । प्रहादेनासुरवरैर्विष्णुभक्तस्तु तत्परः

अपृच्छद्विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम् । पूजाविधानंप्रहादं तदाहासौषकारसः

अथ रथचरणं सशङ्खपाणिं सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् ।

शरणमुपययौ स भावयोगात्प्रणयगतिं शणिधाय कर्मयोगम् ॥ ६८ ॥

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः । स देवकार्यार्णिसदा करोति पुरुषोत्तमः

इति श्रीकूर्ममहापुराणे त्रिविक्रमचरितवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्याय

कश्यपसप्तशतुकीर्तनम्

सूत उवाच

बले पुत्रशतं त्वासीन्महायत्नपराङ्मम । तेन प्रधानो ह्युतिमान्बाणो नाममहारत्न

सोऽतीय शङ्करे भक्तो राजा राभ्यमपालयत् ।

त्रैलोक्यं परामानीय बाधयामास घातयम् ॥ २ ॥

तत शक्रादयो देवा गत्वोत्तु वृत्तिवाससम् ।

त्वदीयो बाधते ह्यस्मान्बाणो नाम महासुर ॥ ३ ॥

व्याहृतो देवतै सचेद्देवदेवो महेश्वर । ददाह बाणस्य पुरशरेणैवेन लीलया ॥

दक्षमाने पुरेत्तस्मिन्बाणो रद्रं त्रिशूलिनम् । ययौ शरणमी शान्तगोपतिनीलबोहितम्

मूढन्यायाय तद्विद्मं शम्भयरागवर्जित । निगत्य तु पुरात्तस्मान्नुष्टाय परमेश्वरम्

संस्तुतो भगयानीश शङ्करो नीललोहित । गाणपत्येन बाणतं योजयामासमावत

अधैवञ्चदनो पुत्रास्ताराधाध्यातिभीषणा । तारस्तथा शम्बरश्चकपि शङ्करस्तथा

स्वर्भानुवृ पपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥

सुरस्ताया सहस्रन्तु सर्पाणामभवदुद्विजा । अनेकशिरसा तद्वत्खेचराणामहात्मनाम्

अरिणजनयामास गन्धवाणासहस्रकम् । अन ताद्यामदानाया काद्रवेया प्रकीर्तिता

ताम्रा च जनयामास पट कन्या द्विजपुङ्गवा ।

शुकी श्येनाश्च भासीश्च सुग्रीवां प्रन्थिकां शुचिम् ॥ ११ ॥

गास्तथा जनयामास सूरभिमहिषीस्तथा । इरा वृक्षलतावह्नीतृणजातीश्च सवश

तथा च यक्षरक्षामि मुनिरप्सरसस्तथा । रथोगण क्रोधवशाञ्जनयामास सनमा

चिन्तायाश्च पुत्री द्वौ प्रथयाती गरुडाक्षणी ।

नयोश्च गरुडो धीमातपस्तप वा सुदुश्चरम् ॥

प्रसादाच्छूलिनः प्राप्नो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ॥ १४ ॥

आराध्य तपसा देवं महादेवं तथाऽरुणः । सारथ्यैकल्पितःपूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।

वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनम् ॥ १६ ॥

सप्तविंशसुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्याश्चसुव्रताः । अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानां ह्यनेकशः
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः । तद्ददंगिरसः श्रेष्ठा ऋषयो वृषसत्कृताः

कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवः प्रहरणः सुतः ।

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥

मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्यैः स्वनामभिः ॥ १६ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे कश्यपवंशानुकीर्तनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिवंशकथनम्

सुत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् । कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतीसुताविमौ । वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ
वत्सरान्नेध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्चसुमहायशाः । रैभ्यस्य जज्ञिरेशूद्राःपुत्राः श्रुतिमतांवराः

च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महान्मनः ।

सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै कुण्डपायिनः ॥ ४ ॥

असितस्यैकपर्णयां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत । नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः
शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थविच्छिः ।

प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुक्तमवाप्तवान् ॥ ६ ॥

शाण्डिल्यो नैध्रुवो रैभ्यः त्रयः पुत्रास्तु काश्यपाः ।

नरप्रव्रतयो विप्राः पुलस्तयस्य घदामि व ॥ ७ ॥

तृषाविन्दो मुना विप्रा नाम्ना गेलविला स्मृता ।

पुलस्त्याय तु रानपिस्ता कन्या प्रयपादयन् ॥ ८ ॥

ऋषिर्बलविलम्बस्या विध्रवा समपद्यत ॥

तस्य पत्न्यध्वतम्बस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धिका ॥ ९ ॥

पुत्रपात्कटा च वाकाचकैकसाद्रैवर्णिनी । रूपद्रावण्यसम्पन्नास्ताश्च शृणुतप्रजा

ज्येष्ठ वैध्रवणतस्य सुपुत्रे द्वैवर्णिनी । कैकम्यजनयन्पुत्रः रावण राक्षसाधिपम्

कुम्भकर्णशृपणसा तथैव चविमायणम् । पुण्योत्कटाप्यजनयत्पुत्रान्विः प्रवस शुभान्

महोदरं प्रहस्तञ्चमहाशयं परं तथा । कुर्मानतीतया कन्यावाकाया मृनतेप्रजा

त्रिशिरा दूरणध्वं चिचुञ्जिह्वो महाबलः ।

इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दराः ॥

सर्वे तपोऽलोऽवृष्टा रद्भक्ता सुभायणा ॥ १४ ॥

पुत्रहन्पृथगा पुत्राः सर्वेऽप्यालाध्वदृष्टिणः । भूताः पिशाचाःशशाध्वगृकराहस्तिनस्तथा

अनपत्यः वनुस्तस्मिन्स्मृतोर्वैवस्वनेऽन्तरे । मरीचेः कश्यपपुत्रः स्वयमेवप्रजापति

भृगोरथाभयच्छुक्रोऽप्याघायामहतया । स्वाध्याययोगनिरतो हर्षभक्तो महाद्युतिः

अत्रपुत्रोऽभयद्वह्निः सोदयस्तस्यनध्वः । कृशाश्वान्यनुचिप्रपेः पृनाच्यामितिनध्वतम्

स तस्याज्जनयामास स्यस्त्यात्रैयान्महौजसः ।

यदरदाङ्गनिरतान्तपसा हतकिल्बिषान् ॥ १६ ॥

नारदस्तु धनिष्ठाय ददौ द्वाभ्यमव्ययानाम् । ऊदरनास्तु तत्रैव शापाद्दृश्यं नारद

दयःशुभुः तुनःशुभायया नारदस्य तु । शशाप नारदं दृष्ट्वा क्रोधमरकलाचन ॥ २१ ॥

यस्मान्ममसुताः सषः भवतामाथयाद्विजः । क्षयभ्रीताम्बुधरानेननिरपत्यो भविष्यति

अरुणस्योऽपसिष्टस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम् ।

शनः पराशः श्रीमान् सप्यंशस्तपता परः ॥ २३ ॥

सर्वेनेऽप्रतिमप्रख्या-प्रपन्ना-कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोध्यामवह्नीरो विबुक्षितार्थपाधिष

येष्टपुत्र म तस्यासीदृश पञ्च च तत्सुता ।

तेषा ज्येष्ठ कुत्सुत्सोऽभूत्काकुत्सस्यस्तु सुयोधन ॥ ११ ॥

सुयोधनात्पृथु धीमान्विभ्रकश्च पृथो सुत ।

विभ्रकादार्यको धीमान्युचनाश्वश्च तत्सुत ॥ १२ ॥

स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्व प्रतापवान् । दृष्ट्वाऽसौ गौतम विप्र तपन्तमनःप्रभम्
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपति ।

अवृच्छत्कर्मणा केन धार्मिक प्राप्नुयात्सुतम् ॥ १४ ॥

गौतम तवाच

आराध्य पुरुष पूर्वं नारायणमनामयम् । अनादिनिधन देवं धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्
तस्य पुत्र स्वयं प्रह्ला पौत्र स्यान्नीललोहित ।

तमादिदृष्णामीशानमाराध्याऽऽप्नोति सत्सुतम् ॥ १६ ॥

नयस्य भगवान् प्रह्लाप्रभावं वैतितत्त्वन । तमाराध्यहर्षीशं प्राप्नुयाद्दार्मिकं सुतम्
सर्गात्मपच ध्रुव्या युवनाश्वो महीपति । आराधयन् हृषीकेश घामुदेव सनाननम्

तस्य पुत्रोऽभवह्नीर सायस्तिरिति विधत् ।

निर्मिता येन सायस्तिर् गोडदेशे महापुरी ॥ १६ ॥

तस्माच्चतुहदशवोऽभून्स्मान्कुषल्याश्वक । ध्रुव्युमार समभवन्ध्रुव्यु ह्यघामहासुरम्
ध्रुव्युमारस्यतनयास्त्रय प्रोक्ताद्विजोत्तमा । दृष्ट्वाश्वश्रियं ण्डाश्व कपिशश्वस्तयैष च

दृष्ट्वाश्वस्य प्रमोदस्तु ह्यश्वस्तस्य घामज ।

ह्यश्वस्य निबुम्भस्तु निबुम्भात्सहताश्वक ॥ २२ ॥

सृताश्वोऽधरणाश्वश्चर्महिताश्वस्यवैसुर्ता । युवनाश्वोरणाश्वस्यशकनु प्रलयुधि
श्या तु घार्णीमिष्टिमृगीणा र्धे प्रसात्त ।

लेभ त्वप्रतिमं पुरं विष्णुभक्तमनुत्तमम् ॥ २५ ॥

मा-शतार्थमहाप्राज्ञसवशस्त्रभृतास्यरम् । मान्धतु पुत्रकुत्सोऽमूदश्वरीरध्वर्यार्यवाः

वृचुकुन्दक्षपुण्यात्मासर्वेशकसमायुधि । अश्वरीयस्यदायादौयुवनाश्वोऽपरःस्मृतः

हरितो युवनाश्वस्य दारितस्तत्सुतोऽभवत् ।

पुरुकुत्सस्य दायादखसदस्युर्महायशाः ॥ २७ ॥

नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भृतिस्तत्सुतः स्मृतः ।

विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत्ततः ॥

वृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥ २८ ॥

सोऽर्तीय धार्मिको राजा तर्दमस्य प्रजापतेः । प्रसादाद्धार्मिकंपुत्रंलेभे सूर्यपरायणम्

सतुसूर्यसमभ्यर्च्य राजावसुमनाः शुभम् । लेभेत्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम्

अयजञ्चाश्वमेधेन शत्रूञ्जित्वा द्विजोत्तमाः ॥

स्वाध्यायवान्दानशीलस्तितीर्षुर्ऋमंततपरः ॥ ३१ ॥

ऋषयस्तु समाजसुर्यक्षवाटं महात्मनः । वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुंगवमाः ॥

तान्प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ चिनयान्वितः ।

समाप्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादीन्द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥

वसुमना उवाच

किंहिष्येस्फरतरंलोकैऽस्मिन्त्राहाणर्षभाः । यजस्तपोवा सन्यासोऽनमेसर्ववेदिनः

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान्विधिवत्सुतांश्चोत्पाद्ययत्नतः । इष्टा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद्धनमथात्मवान्

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनम्परमेश्वरम् । प्रव्रजेद्विधिवद्यज्ञैरिष्ट्वा पूर्णं सुरोत्तमान् ॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणम्परमेश्वरम् । तमाराध्य सहस्रांशुं तपसो मोक्षमाप्नुयात् ॥

जमदग्निस्वाच

अजो विश्वस्यकर्त्तायोजगद्वयीजंसनातनः । अन्तर्यामीचभूतानां स देवस्तपसेज्यते

विश्वामित्र उवाच

सर्षतेऽप्रतिमप्रख्या प्रपन्ना कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोश्चामयद्वीरो चिकुक्षिर्नामपार्थिव

ज्येष्ठपुत्र स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुता ।

तेषां ज्येष्ठः कुरुत्स्वोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधन ॥ ११ ॥

सुयोधनात्पृथु धीमान्विभवकश्च पृथो सुत ।

विभवकादार्षको धीमान्युवनाभ्यश्च तत्सुत ॥ १२ ॥

स गोकणमनुप्राप्य युवनाभ्य प्रतापवान् । दृष्ट्वाऽसौ गौतम धिय तपन्तमनलप्रभम्
प्रणम्य दण्डघट्ट भूमौ पुत्रकामो महीपति ।

अपृच्छत्कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम् ॥ १४ ॥

गौतम तथाच

आराभ्य पुरुष पूर्वं तारायणमनामयम् । अनादिनिधन देवं धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्

तस्य पुत्र स्वयं ब्रह्मा पौत्र स्यान्नीललोहित ।

तमादिदृष्णमीशानमाराध्याऽऽप्नोति सत्सुतम् ॥ १६ ॥

नयस्य भगवान् ब्रह्माप्रभाय वेत्तितत्त्वतः । तमाराभ्यहृषीकेशप्राप्नुयाद्दार्मिकसुतम्
सर्गात्मवच श्रुत्वा युवनाश्वोमहीपति । आराधयन् हर्षाकेश धासुदेव सनातनम्

तस्य पुत्रोऽभवद्भीर सावस्तिरिति चिधत ।

निर्मिता येन सावस्तिर् गौडदेशे महापुरी ॥ १६ ॥

तस्माच्चतुर्दशवोऽभूत्स्मान्कुपलपाश्वक । भुङ्क्षुमार समभवन्धुङ्क्षु हृत्त्वामहासुरम्
धन्धमारस्यतनयाख्य प्रोक्ताद्विजोत्तमा । इदाश्वश्चैत्रण्डाश्व कपिलाश्वस्तथैवच

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु ह्यश्वस्तस्य चात्मज ।

ह्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्सहताश्वक ॥ २२ ॥

वृताश्वोऽधग्णाश्वश्चमहिताश्वस्यवैसुती । युवनाश्वोरणाश्वस्यशक्रतुत्पथलोयुधि
कृत्वा तु धारुणीमिष्टिमृषीणां धे प्रसादत ।

लेभे त्वप्रतिम पुत्र विष्णुभक्तमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

मां प्रातारमहाप्राञ्जलवशस्त्रभृताम्बरम् । मान्धातु पुरुकुत्सोऽभूद्भयरीपश्चर्वीर्यवांश्च

ततः प्रसन्नो भगवान्विरिञ्चिर्विश्वभावनः । वरम्बरय भद्रन्ते वरदोऽस्मीत्यभाषत
राज्ञोवाच

जपेयं देवदेशे गायत्र्या वेदमातरम् । भूयो वर्षशतं साग्रन्तावदायुर्भवेन्मम ॥ ५७ ॥

वाहमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम् ।

स्पृष्ट्वा करान्यां सुप्रीतस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ५८ ॥

सोऽपि लब्धवरःश्रीमाञ्जजापातिप्रसन्नधीः । शान्तस्त्रिष्वणस्त्रायीकन्दमूलफलाशनः
तस्य पूर्णं वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः । प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः
तं दृष्ट्वा वेदवपुषं मण्डलस्थं सनातनम् । स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयङ्कृतः
तुषाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः । क्षणादपश्यत्पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ॥
चतुर्मुखं जटामौलिमग्रहस्तं त्रिलोचनम् । चन्द्रावयवलक्षमाणं नरनारीतनुं हरम्

भासयन्तं जगत्कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः ।

रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमालयानुलेपनम् ॥ ६१ ॥

तद्भाषमावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि । नत्ताम शिरसा रुद्रं सावित्र्यातेनचैव हि
नमस्ते नीलकण्ठय्य भास्वते परमेष्ठिने । त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ॥६६
तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः । इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणुञ्चानघ
सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु । नमः कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः
अधीष्व शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्भृतम् । जपस्वानन्यत्रेतस्को मय्यासक्तमनानृप
ब्रह्मचारी निराहारो भस्मनिष्ठः समाहितः । जपेदामरणाद्दुद्रं स याति परमम्पदम्
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया । पुनः सम्घटसरशतं राज्ञो ह्यायुरकल्पयत्
इत्थाऽस्मै तत्परंबानं वैराग्यं परमेश्वरः । क्षणादन्तर्द्वेषे रुद्रस्तद्भुतमिवाभवत् ॥७२

राजाऽपि तपसा रुद्रं जजापाऽनन्यमानसः ।

भस्मच्छत्रस्त्रिष्वर्णं स्नात्वा शान्तः समाहितः ॥ ७३ ॥

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णवर्षशते पुनः । योगप्रवृत्तिरभवत्कालात्कालपरं पदम् ॥ ७४
द्विवेशैतद्देदसारं स्यात्तं वै परमेष्ठिनः । भानोः सुमण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्

योऽग्निः सर्पात्मकोऽन्तः स्वयम्भूर्बिम्बतोमुखः ।
स रद्रस्तपसोमेण पूज्यते नेतरैर्मलैः ॥ ३६ ॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो धामुदेवः सनातनः । स सर्वदेवतनु पूज्यते परमेश्वरः ॥४०॥

अत्रिरवाच

अतः सर्वमिदं जानं यस्यापत्यं प्रजापतिः । तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषो यस्य शक्तिरिदं ब्रह्म । स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षीशम्भुः प्रजापतिः । प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसापरः

ऋतुदवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि । नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मं शास्त्रेषु दृश्यते
इत्याकर्ण्यं स राजविस्तान्प्रणम्याऽतिहृष्टधीः ।

विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत् ॥ ४० ॥

बाराघमिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम् । प्राणः घृहन्तः पुरपमादित्यान्तरमस्थितम्

त्वन्तु धर्मरतो नित्यं पालयंतदतन्द्रितः । चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्

एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधाया ममवे नृपः । जगामारण्यमनघस्तपस्तप्तुमनुत्तमम्

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुपनाश्रये । कन्दमूलकलाहारैरत्पत्रैर्यजत्सुरान् ॥ ४१ ॥

सर्वत्सरशतं साप्रन्तपोनिदधूतकिल्बिषः । जजापमनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्

सर्व्यन्तपतोदेवः स्वयम्भूः परमेश्वरः । हिरण्यगर्भाविम्बात्मा त देशमगमत्स्वयम्

दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणविम्बतोमुखम् । ननामशिरस्तातस्य पादयोर्नामकीर्तयन्

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने । हिरण्यमूर्त्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे ॥५३॥

नमो धात्रे विधात्रे च नमो देवात्ममूर्त्तये । साङ्ख्ययोगाधिगम्याय नमस्नेजानमृत्तये

नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं स्वप्ने सर्वाभ्यवेदिने । पुरुषाय पुराणाय योगिना सुरवे नमः ॥

अश्रमकस्योत्कलायान्तु नकुलोनामपार्थिवः । सहिरामभयाद्राजा वनंप्रापसुदुःखितः

दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत् ।

तस्माद् विलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः ॥ १४ ॥

तस्माद्विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ।

दीर्घबाहुः सुतस्तस्माद्घुस्तस्मादजायत ॥ १५ ॥

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः । रामोदाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः । सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः

जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक् । रामस्यभार्यासुभगाजनकस्यात्मजाशुभा

सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता ।

तपसा तोयिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा ॥ १६ ॥

प्रायच्छजानकींसीतांराममेवाश्रितांपतिम् । प्रीतश्चभगवानीशस्त्रिशूलीनीललोहितः

प्रददौ शत्रुनाशार्थंजनकायाद्भुतंधनुः । सराजाजनकोधीमान् दातुकामःसुतामिमाम्

अयोपयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन्ह्रजपुङ्गवाः । इदं धनुःसमादातुं यः शक्नोतिजगत्त्रये

देवो वा दानवो वाऽपि स सीतां लब्धुमर्हति । विज्ञायरामोचलवाञ्छनकस्यगृहंप्रभुः

भङ्गयामास चादायगत्वाऽसौ लीलयैव हि । उद्धवाहाथ तांकन्यांपार्वतीमिषशङ्करः

रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च पण्मुखः । ततो बहुतिथे काले राजादशरथःस्वयम्

रामं ज्येष्ठसुतं धीरं राजानं कर्तुंमारभत् । तस्याथ पत्नीसुभगा कैकेयीचारुहासिनी

निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा । मत्सुतं भरतं धीरंराजानं कर्तुंमर्हसि॥

पूर्वमेव वरौ यस्माद्दत्तौ मेभवता यतः । सतस्या वचनं श्रुत्वाराजादुःखितमानसः

वाढमित्यब्रवीद्वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मचित् ।

प्रणम्याऽथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः ॥ २६ ॥

ययौवनं सपत्नीकः कृत्वासमयमात्मवान् । संवत्सराणां चत्वारिंशच्चैव महाबलः

सवासतत्र भगवान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः । कदाचिद्दसतोऽरण्ये रावणोनाम राक्षसः

परिव्राजकवेपेण सीतां हत्वा ययौ पुरीम् ।

यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ।

स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वंभवतु चाऽक्षयम् ॥ ५१ ॥

स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापभ्रमणश्चति ।

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुःपरिष्वज्य तु राघवम् ॥ ५२ ॥

सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्नरधीयत । रामोऽपिपालयामास राज्यन्धर्मपरायणः
अभिविको महातेजा भरतेन महाबलः । विशेषेणानुज्ञायामास चैश्वर्यम्
यज्ञेन यज्ञहन्तारमभ्येवेन शङ्करम् । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥ ५५ ॥

लवश्च सुमहामागः सर्वतस्वार्यवित्सुधीः ।

अतिथिस्तु कुशाज्जने निरवस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५६ ॥

रुद्रश्चनिरवस्पर्सीत् नभान्तस्मादजायत । नभसःपुण्डरीकाक्षःश्लेमधन्वानुतत्सुतः

तस्य पुत्रोऽभवद्दीरो देवानीकः प्रतापवान् ।

अहीनगुस्तस्य सुतो महस्पर्शस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५८ ॥

तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु ताराधीशश्च तत्सुतः ।

तारार्थीशाञ्चन्द्रगिरिर्मानुवित्तस्ततोऽभवन् ॥ ५९ ॥

श्रुतायुरभवत्तस्माद्वैतेचेक्ष्वाकुवंशजाः । सर्वे प्राधान्यतःप्रोक्ताःसमासेन द्विजोत्तमाः
य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोकं महायते ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराण इक्ष्वाकुवंशवर्णनंतामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मदृष्टा लक्ष्मणो रामः सीतामातुलितेन्द्रियी ॥ ३२ ॥

दुःखशोकामित्तती बभूवतुररिन्दमो । तत्र च दक्षिण्यफिनासुप्रायण द्विजानाम् ।
घानराणामभूत्सार्थं रामस्याक्लिष्टमण । सुप्रीयस्यानुगा वीरा इन्माम्प्रामदान-
घायुपुत्रो महानजा रामस्याऽऽसीत्प्रियः सदा ।

स हृत्वा परमं धैर्यं रामाय हृत्निधय ॥ ३० ॥

आनयिष्यामि तां सीतामिदं युनवाधिचचारह । महीं सागरपथगता सीतादशनतपः-
जगामरायणपुरीत्तद्वरं सागरसंस्थिताम् । तत्रापनिरजैन्दरा वृक्षगुं शुचिस्मिताम्
अपश्यदमत्र सीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।

अधूर्णैश्शपां हृषां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् ॥ ३८ ॥

राममिन्दीपरश्यामं लक्ष्मणञ्चात्मसंस्थितम् ।

निवेदयित्वा घाऽऽमान सीताय रक्षसि प्रभु ॥ ३६ ॥

अर्मशयाव प्रदशयस्वै रामाङ्गुलीयकम् । दृष्ट्वाऽङ्गुलीयकं सीता पत्यु परमशोभनम्
मिनेसमागन् रामं प्रातिविस्तुरितक्षणा । समत्वाख्यतदामातोदृष्ट्वात्प्रमन्यचात्तिकम्
वयिष्ये त्वां महायादुमुक्त्वा रामं पर्यो पुन ।

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् ॥ ४२ ॥

तस्यो रामणपुरतो लक्ष्मणेन च पूजित । तत्र स रामो बलवान्साहं हनुमतास्वयम्
लक्ष्मणेन युदाय धुद्विञ्चनं हि रक्षसः । हृत्वाय घानरशर्नं दृष्ट्वा मां महोदध ॥
सेतुम्परमथमात्मा रावणं हतवान्प्रभु । सपत्नीकं हि सगुनं सन्नातृकमरिदम् ॥

आनयामास तां सीता घायुपुत्रसहायवान् ।

संतुमध्ये महादेवमीशानं हृत्तिपाससम् ॥ ४६ ॥

स्थापयामास त्रिदशस्य पूजयामास रावण । तस्य देवो महादेवः पार्यंत्या सह शङ्कर
प्रयक्षमेव भगवान्दत्तवान्परमुत्तमम् । यस्वयास्थापितं त्रिदशं द्रश्यन्तीदद्विजातय
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं घिनदृश्यति । अन्यानिर्धैवपापानि ज्ञातस्यात्र महोदधी
दशनादिषु त्रिदशस्य नाशं घान्तिनः सशयः । यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावद्देवाश्च मदिना

दुर्द्धमस्य सुतो धीमानन्धको नाम धीर्यवान् ।

अन्धकस्य तु दयादाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ १७ ॥

कृतवीर्यःकृताग्निश्चकृतवर्माश्च तत्सुतः । कृतौजाश्चचतुर्थोऽभूत्कार्तवीर्यमन्तथाजुं नः
सहस्रबाहुर्घृतिमान्धनुर्वेदविदाम्बरः । तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः
तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्चतत्र महारथाः । कृतास्त्रा बलिनःशूराःधर्मान्मानोमनस्विनः
शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैवच । जयध्वजश्च बलवान्नारायणपरो नृपः ॥
शूरसेनादयः पूर्वे चत्वारः प्रथितौजसः । रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्तिस्म शङ्कन्
जयध्वस्तु मतिमान्देवं नारायणं हरिम् । जगाम शरणं विष्णुं देवंधर्मतन्परः
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानय । ईश्वराराधनगतः पिताऽन्माकमिति श्रुतिः ॥
तानब्रवीन्महातेजा ह्येव धर्मः परो मम । विष्णोरंशेन सम्भृता राजानो ये मर्तानले

राज्यं पालयिताऽचश्यम्भगवान्पुरुषोत्तमः ।

पूजनीयोऽजितो विष्णुः पालको जगतां हरिः ॥ २६ ॥

सात्त्विकी राजसी चैव नामसी च स्वयं प्रभुः ।

तिम्बस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥ २७ ॥

सत्त्वात्माभगवान्विष्णुःसंस्थापयतिसर्वदा । सृजेद्ब्रह्महारजोमूर्त्तिःसंहरेत्तामर्वाहरः

तस्मान्मर्हीपतीनान्तु राज्यम्पालयतामिदम् ॥

धाराध्यो भगवान्विष्णुः केशवः केशिर्मर्दनः ॥ २८ ॥

निशम्य तस्य चचनं भ्रातरोऽन्येमनस्विनः । प्रोचुःसंहारकोरुद्रः पूजनीयोमुमुक्षुभिः

अयं हि भगवान्रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः । तमोगुणं समाश्रित्यकालान्नेसंहरेन्प्रभुः

या सा योरतमा मूर्त्तिरस्य तेजोमयी परा । संहरेद्विद्ययापूर्वं संसारं शूलभृत्तया ॥

ततस्तानब्रवीद्राजा विधिन्त्याऽसौ जयध्वजः ।

सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान्हरिः ॥ ३३ ॥

तमूचुर्भ्रातरोरुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः । मोचयेत्सत्त्वसंगुक्तः पूजयेत्सततं हरम्

अथाब्रवीद्राजपुत्रः प्रहसन्च जयध्वजः । स्वधर्मोमुक्तये युक्तो नान्यो मुनिभिरिष्यते

द्वाविंशोऽध्यायः

सौमवंशवर्णनम्

सूत्र उवाच

तेन पुरुरवाध्याय राजाराज्यमपात्यन् । तस्य पुत्रा यमृशुर्हि पडिन्द्रसमनेजस ॥
आयुर्मायुरमायुश्चिभ्यायुश्चैव वीर्यवान् । शतायुश्च धृतायुश्चैद्विद्याश्चैवोवंशीसुता
आयुपस्तिनवावीरा पञ्चधासन्महौजस । स्थर्मानुतनयाया च प्रभायामिति न धृतम्
नहुप प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविधृत ।

नहुपस्य तु दायादा पञ्चन्द्रोपमनेजस ॥ ४ ॥

उत्पन्ना पितृकन्याया चिरजाया महाबला ।

याति (य) येयाति सयातिरायाति पञ्चमोऽथक् ॥ ५ ॥

तेषा ययाति पञ्चाना महाबलपराशम । देवयार्ताःमुशनस सुता भाष्यामवाप न
शर्मिष्ठासुरीञ्च तनया उग्रपवण । यदुञ्च तुवंसुश्चैव द्वेषयानी व्यजायत ॥ ७ ॥
दुष्टञ्चानुञ्चपरञ्चशर्मिष्ठाचाप्यजीजनत । सोऽभ्यगिञ्चदतिरभ्यज्येष्टयदुमनिन्दितम्
पुरमेवचनायासम्पितुर्वचनपालकम् । दिशि दक्षिणपूर्वभ्यान्तुर्वसु पुत्रमादिशत्
दक्षिणापरयोगजा यद् श्रेष्ठ न्ययोजयत् । प्रतीच्यामुत्तराथाञ्च दुष्टञ्चानुमकत्पयत्
तेरिय पृथिवी सया धमत परिपालिता । राजापि दारसहितो वन प्राप महायशा
यदोरप्यभवत् पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा । सहस्रजित्तथाश्रेष्ठ कोटुर्नौलोजिनोरसु
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिहामपार्थिव । सुता शतजितोऽप्यामख्य परमधार्मिका
हेहयञ्च हयधैव राजा वेषुहयश्च य । हैहस्वामवत्पुत्रो धर्म इत्यभिविधृत ॥ ८ ॥
तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धमनेत्र प्रतापवान् ।

धर्मनेत्रस्य कीर्त्तिस्तु सजितस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १५ ॥

महिष्म सजितस्याभिद्रुद्धधेण्यस्तदन्वय । भद्रधेण्यस्यदापादो दुद्गमोनामपार्थिव

प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च । जयध्वजश्चकौवेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च
भक्षयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ।

ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ॥ ५८ ॥

स्पृष्टमात्रेणतरसाच्चित्रेपचननादच । सम्प्राप्यसा गदाऽस्योरो विदेहस्यशिलोपमम्
न दानवञ्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम् । दुद्रुवुस्तेभ्यग्रस्ता दृष्टातस्यातिपीरुगम्
जयध्वजस्तु मनिमान् सस्मार जगतः पतिम् ।

विष्णुञ्जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ॥ ६१ ॥

त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपनिम्पीतवाससम् । ततः प्रादुरभृच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ६२ ॥
आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणान्तदा । जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वानारायणं नृपः
प्राहिणोर्द्वेविदेहायदानवेभ्यो यथाहरिः । सम्प्राप्यतस्यधोरस्य स्कन्धदेशंसुदर्शनम्
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति । तस्मिन्हृतेदेवरिषो शूराद्याभ्रातरौ नृपाः
तद्विचक्रंपुगविष्णुस्तपसाराध्यशङ्करम् । यस्माद्वापतत्तस्मादसुराणां विनाशकम्
समाययुः पुगं रम्यां भ्रातरञ्चाप्यपूजयन् । श्रुत्वाजगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्
कार्तवीर्यसुतन्द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ।

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः ॥ ६८ ॥

समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः । उवाच भगवन्धोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः
निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ।

त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहोऽविष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ ७० ॥

प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः । यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्
कथंकेन विद्यानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः । कोऽयन्नारायणो देवः किं प्रभावश्चसुवत
सर्वमेतन्ममावक्ष्व परंकीर्तुहलं हि मे । जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः

दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत ॥ ७४ ॥

तथा च वृषादीं गन्धिकादीन्धनां मया । आराधनपरामर्शो मुरारिमितोऽस्य
 तमप्रयाद्रावपुत्र ऋणोमतिमताम्बर । यन्नुतोऽस्मत्प्रतप मधमेतदवति
 पयं विद्यां चित्तन मूर्धनताप्रयाद्रिष । प्रयाणशुभया ह्यत्र प्रमुञ्चतचर्षेव तत् ॥
 ततस्त एतशशुभोपप्रदुप्रमियात्ति । गंधामर्षे मर्षरथा मर्षीणा तपधमम्
 तानप्रयस्त मुतया धमिष्टया यथायन ।

या यस्यामिमता पुन मा हि तस्यैव हृयता ॥ ४० ॥

किन्नुवायविताणपूजिताऽप्यशक्त्याम् । विद्यामन्सवनात्पुत्रप्रियमोक्षयथाशुभा
 कर्माणां चत विष्णुस्तपराधशुभम् । विद्यापामप्रिरात्तियोप्रमर्षैवपिताकृष्ण
 श्यानाचतमिष्णुशक्त्यातांशिशुभम् । गंधराजातयासामायभाषामपिकल्पत
 विद्याधराणा धारया सिद्धाना मगवान् हरि ।

रथसा शतुग म् विप्रगणाश्च पायता ॥ ४१ ॥

मर्षीणा मगवान् प्रया महाचरित्रिगणभृत् ।

मान्या म्गणामुमा र्सी तथा विष्णुर्गणभास्करा ॥ ४२ ॥

शुभस्थानाभुस्य स्युत्प्रय च प्रप्ररागिणाम् । चर्यातमातामरुभ्यामर्षीनाभुमहप्र
 भूताना मगवान् कृष्णपणनाचिनायक । मर्षीणाभगवान्प्रज्ञा श्रेष्ठं प्रनापति
 इत्येव मगवा प्रया स्वयं श्यामभाषत । तस्मात्प्रयध्वनोन्त विष्णवागधनमहति
 तस्त म्गण तातास्य वल्ध्या पुत्रो हरितर । अत्याघातयत शतु महरिर्महरत
 मप्रगणायधन तमुपुरीमपमशोभनाम् । पात्प्राक्षुकिशुभ्याञ्चिन्वासवाप्रिपुत्रण
 तत क्त्वाचद्विन्ना चिन्हातामगतम् । मायण सधमत्त्वानापुरा तयाममाययो
 दशुभरागा र्गिणा मा युगात्तहतापम । शय्मनाय स्याम नाप्यस्य त्शिा दश
 तत्रात्प्रणा मधास्तथये निवसति न । तयत्तुञ्जोचितं त्वन्ये दुःखुभयविहला
 तत मय मयत्ता कालराधा मनास्तया । शूरसनाय पञ्च गजानस्तु महायला
 युयधुत्तवशात् गिरिकृत्तमिमुद्गर । तान्सथान् स हि चित्रेन्द्राभूत्प्रहसतिव
 युयुडाप उतसाम्भा चिद्रहन्धभिदुदुवु । शूरात्प्रप्राहिणोर्द्राद्रशूरसनस्तुवाहणम्

प्राजापत्यं तथा कृष्णो चायव्यं धृष्ण एव च । जयध्वजश्चकौवेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च
भक्ष्यामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ।

ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ॥ ५८ ॥

स्पृष्टमात्रेणतरसाचिक्षेपन्ननादच । सम्प्राप्यसा गदाऽस्योरो विदेहस्यशिलोपमम्
न दानवञ्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम् । दुद्रुवुस्तेभयग्रस्ता दृष्टातस्यातिपौरुषम्

जयध्वजन्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ।

विष्णुञ्जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ॥ ६१ ॥

त्रातारं पुरुषंयूषं श्रीपतिम्पीतवाससम् । ततः प्रादुरभृच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ६२ ॥
आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणात्तदा । जग्राह जगतां योनिं स्मृतवानारायणं नृपः
प्राहिणोद्वैविदेहायदानत्रेभ्यो यथाहरिः । सम्प्राप्यतस्यघोरस्य स्कन्धदेशंसुदर्शनम्
पृथिव्यांपातयामासशिरोऽद्रिशिखराकृति । तस्मिन्हतेदेवरिषो शूराद्याभ्रातरोनृपाः
तद्विचक्रंपुराविष्णुस्तपसाराध्यशङ्करम् । यस्माद्वापतत्तस्मादसुराणांविनाशकम्
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरञ्चाप्यपूजयन् । श्रुत्वाजगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्
कार्तवीर्यंसुतन्द्रप्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ।

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः ॥ ६८ ॥

समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः । उवाच भगवन्घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः
निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ।

त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहोऽविष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ ७० ॥

प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः । यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्
कथंकेन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः । कोऽयन्नारायणो देवः किं प्रभावश्चसुव्रत
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परंकोतूहलं हि मे । जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः

दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिभूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत् ॥ ७४ ॥

स विष्णुः सर्वभूतात्मातमाश्रित्य विमुच्यते । यमक्षरात्परतरात्परं प्रादुर्गु हाश्रयम्
 आनन्दपरमव्योमसधैवारायण स्मृतम् । नित्योदितोनिर्घिकरपोनि-यातन्दोनिरञ्जन
 धतुष्युं हधरोविष्णुख्युह प्रोच्यनेस्वयम् । परमात्मा परं धाम परं व्योम परमपम्
 त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः । स धाहुदेवो विश्वात्मा योनात्मापुरपोत्तम
 यस्यांशसम्भयो ब्रह्मा रद्रोऽपिपरमेष्ठिनः । स्वधर्माश्रमधर्मेणपु साऽयं पुभ्योत्तम
 अकामाद्दुःप्रतभायेन समाराध्यो न चाऽन्यथा ।

एताद्यदुक्त्या भगवान्विश्वामित्रो महातपा ८० ॥

शूराद्यैः पूजितो विमोजगामाऽयं स्वमाश्रमम् । अथशूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्
 यजेत यज्ञमभ्यन्तनिष्कामा रद्रमव्ययम् । तान्वसिष्ठस्तुभगवान्याजयामासधर्मवित्
 गौतमोऽगस्तिरत्रिश्च सर्वैरुद्रपराक्रमः । विश्वामित्रस्तु भगवाञ्जयञ्जमविन्दमम्
 याजयामास भूतादिमादिदेव जनार्दनम् ।

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देव स्वयं हरिः ॥ ८४ ॥

आदिरासीत्स भगवान्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८५ ॥

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रद्रस्य परमा तनुम् ।

इत्येव स्वधा बुद्ध्या यत्नेनाऽयजदच्युतम् ॥ ८६ ॥

य इमं शृणुयाश्रित्य जयध्वजपराक्रमम् । सपपापविनिमुक्तोविष्णुलोकसगच्छति
 इति धीकूर्ममहापुराणे सोमवंशानुकार्तनेजयध्वजपराक्रमवर्णननाम

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

जयध्वजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्कालजङ्घइतिस्मृतः । शनैपुत्रास्तुतस्यासन्तालजङ्घइतिस्मृताः

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो धीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ।

वृषप्रभृतयश्चान्ये यादृचाः पुण्यकर्मिणः ॥ २ ॥

वृषोवंशकरस्तेषांतस्यपुत्रोऽभवन्मधुः । मधोःपुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्यवंशभाक्

धीतिहोत्रसुनश्चापिविश्रुतोऽनन्तइत्यतः । दुर्ज्जयस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः

तस्यभार्यारूपवतीगुणैःसर्वैरलङ्कृता । पतिव्रताऽऽसीत्पतिनास्वधर्मपरिपालिका

स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् ।

अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम् ॥ ६ ॥

[ततः क्रामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै । प्रोवाच सुचिरंकालं देवि! रन्तुं मयाहंसि

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंगुतम् । रेमे तेन चिरङ्कालं कामदेवमिवापरम् ॥

कालात्प्रवृद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम् ।

गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वचः ॥ ६ ॥

न ह्येतेनोपभोगेन भवतरे राजसुन्दर ! । प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरन्पुरीम् ।

आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमहंसि ॥ ११ ॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते । नान्यथाप्सरसा तावद्रन्तव्यम्भवतापुनः

श्रोमित्युत्तवाययौर्णपुरीं परमशोभनाम् । गत्वापतिव्रतांपत्नीं दृष्ट्वाभीतोऽभवन्नृपः

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता । भीतं प्रसन्नयाप्राहवाचापीनपयोधरा

स्वामिन् किन्नमवतोभीतिरद्यप्रवर्तते । तद्बहिमे यथातत्त्वं राज्ञांकीर्त्तयेत्विदम्

स विष्णुः सर्वभूतात्मानमाधिप्य विमुच्यते । यमहरात्परतरात्परं प्रादुर्गुहाधपम्
 आनन्दपरमं प्योमसपैतारापणस्मृतः । निर्योद्दिनोतिविष्णोर्गोतिर्यातन्दोतिरुत्त
 यतुष्युं हघरोविष्णुरप्सूह प्रोच्यतेस्ययम् । परमात्मा परं धाम परं ध्योम परम्पदम्
 त्रिपादमहरं ब्रह्म तमादुर्ग्रहवादिन । स वातुदेपो विष्वात्मा योगात्मापुष्टीम
 यस्यांशसम्मयो ब्रह्मा रद्रोऽपिरत्मेभ्यः । स्वधर्माधमधर्मेणपुंसाऽय पुण्योत्तम
 मबामादु धनभायेन समाराध्यो न वाऽत्यथा ।

एताद्यदुक्त्या भगवान्बिष्वामित्रो महातपा ८० ॥

शूरायै, पूजितो विप्रोऽजगामाऽय स्वमाधमम् । अघ्नूरादयो देधमयजन्त महेभ्यम्
 यज्ञेन यज्ञगम्यन्तनिष्कामा रद्रमध्ययम् । तावमिष्टस्नुमगयान्याजयामासधर्मयिन
 गौतमोऽगास्तिरत्रिभ्य सर्वैरद्रपराश्रमा । विष्वामित्रस्नु भगपात्रयध्वजमग्निमम्
 यात्रयामाम भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ।

तस्य यज्ञे महायोगो माहादेध स्वयं हरि ॥ ८४ ॥

आधिरार्मीन्स भगवान्तरद्रुतमिवाभवत् ॥ ८५ ॥

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रद्रस्य परमो तनुम् ।

इत्येवं सर्वदा बुद्ध्या यन्नेताऽयत्तदच्युतम् ॥ ८६ ॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगरच्छनि
 इति धीकृष्णमंगुराणे सौमवंशानुक्तोत्तैरजयध्वजपराक्रमधर्षणैर्नाम

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

जयध्वजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घइतिस्मृतः । शनंपुत्रास्तुतस्यासन्तालजङ्घइतिस्मृताः

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्वृषः ।

वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः ॥ २ ॥

वृषोवंशकरस्तेपांतस्यपुत्रोऽभवन्मधुः । मधोःपुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्यवंशभाक्

वीतिहोत्रसुत्रश्चापिविश्रुतोऽनन्तइत्यतः । दुर्जयस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः

तस्यभाष्यारूपवतीगुणैःसर्वैस्लङ्कृता । पतिव्रताऽऽसीत्पतिनास्वधर्मपरिपालिका

स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् ।

अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम् ॥ ६ ॥

[ततः कामाहतमतास्तत्समीपमुपेत्य वै । प्रोवाच सुचिरंकालं देवि! रन्तुं मयाहंसि

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम् । रेमे तेन चिरङ्कालं कामदेवमिवापरम् ॥

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम् ।

गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वचः ॥ ६ ॥

न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर !। प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरम्पुरीम् ।

आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि ॥ ११ ॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशास्पते । नान्यथाप्सरसा तावद्रन्तव्यम्भवतापुनः

ओमित्युक्त्वाययौर्त्पूर्णपुरीं परमशोभनाम् । गत्वापतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वाभीतोऽभवन्वृषः

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भाष्या तस्य पतिव्रता । भीतं प्रसन्नयाप्राहवाचापीनपयोधरा

स्वामिन् किमत्रमव्रतोभीतिरद्यप्रवर्तते । तद्ब्रहिमे यथातत्त्वं राज्ञांकीर्त्तयेत्विद्म

न तस्याः वाचयन्माकण्य सञ्जायतमानसः ।

लोमान् विप्रिगृह्यतिर्जातदृग्स्या विदेह सा ॥ १६ ॥

न भक्त्याऽप्यप्राप्तं वाच्यं वाचयित्वाऽपि न । भीषेद्यमिमांसात्तं सान्द्रनेत्रामिष्यति
तत एव सा वाचयतिमांसात्तं सान्द्रनेत्रामिष्यति । तस्याः कण्यप्राप्तं गुणं दृष्ट्वात्तत्रमहाभुक्तिं
निशम्य कण्यवदनात्प्रायश्चित्तं विप्रिगृह्यति । तन्नाम हिमवत्पृष्ठं समुद्रिषं महाप्रा-
सादप्रदं पृथिवीं सचेन्द्रा सन्धयवसमुत्तमम् ।

ज्जातमानं धिया व्योमि भूतिं दिव्यमात्पणा ॥ २० ॥

वाच य मालाप्रमिष्यात् सन्माराज्यसंवेपथम् । उपसीतं हतशत्रु सन्ध्याऽप्येपमर्ति
सोऽनीय कामुको राजा सन्धयैषाद्य तेन हि । सञ्जातं सुमहद्यं मातामादातुमुत्त-
मिष्यति सस्रे मांसां उर्हत्या दृष्टपयो द्विजाः ।

ननाम तामप्यसंजातिर्न्यी द्रष्टमावरात् ॥ २३ ॥

अदृष्ट्वात्सन्धयस्य कामवाचाभिर्वाहितः । वज्रामसकलां पृथ्वीं सपत्नीपसमन्वितान्
प्राक्कथ्य हिमवत्प्रायश्चित्तं शान्तिनाम्बुज । ननामशोऽप्रवरं हेमवृष्टमिति धृतम् ॥
तत्र तत्रास्मत्सवयो दृष्ट्वा न सिद्धिविब्रमम् । कामसन्धिरं धारं भूतिं निब्रमालया
सन्मरन्तुपशीलावय सन्ध्या ससतमानसः ।

न वश्यति स्म सा यथा गिर अद्भूतिं जगिष्यथान् ॥ २७ ॥

तथा यत्प्रमत्तान्स्यामदृष्टा कामर्षाहितः । स्वलोकं महादमं यथा देवप्राप्तम् ॥
स तत्र मानसं नाम ससन्ध्यावसिधतम् । अने अद्भुमतिप्रभ्य स्वपादुयलभायित
तस्य नास्य सभगाऽज्ञानीमतितात्प्रायः । दृष्ट्यानन्तवद्याद्वी तस्य मालां सदीपुन
स मात्पया तदा इषा भूतिनाऽप्रभ्य माहितः ।

सम उताभमानमानं चातानं सुचिरं तथा ॥ ३१ ॥

प्रावशी राजपय सतान्त वाक्यमप्रवृत्तः । किं उतभवता वाच पुरीतया तदा सृष्ट
स तस्य सन्माराज्यं पश्यता यत्समुदाहितम् । कण्यस्य सञ्जातस्य मालापहरणस्तथा

शापंदास्यति ते कण्वो ममाऽपि भवतः प्रिया ॥ ३४ ॥

तयासृष्टन्महाराजः प्रोक्तोऽपिमदमोहितः । न च तत्कृतवान्वाक्यं तत्र संन्यस्तमानसः
तदोर्वशी कामरूपा राजे स्वं रूपमुत्कटम् । नृगोमशपिङ्गलाक्षं उर्जायामास सर्वदा
तस्यां चिरक्वैतन्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम् ।

धिष्णामिति विनिश्चिन्य तपः कर्त्तुं समागमत् ॥ ३५ ॥

सस्यन्सगद्गादशकं कन्दमूलफलाशनः । भूय एव हादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ॥
गत्वाकण्वाश्रमं भीत्यातस्मैस्वर्गं न्यवेदयत् । वानमग्नरग्ना भूयस्तपोयांगमनुत्तमम्
वीक्ष्य तं राजशाङ्गलंप्रसन्नो भ्रूयानृपिः । कर्त्तुं कामो हि निर्वीजं तस्याश्रमिदमश्र्वान्

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसी दिव्यार्माश्वराध्युषिता पुरीम् ।

आम्ने मंत्रयितुं लोकां तत्र देवो महेश्वरः ॥ ४१ ॥

स्नात्वा सन्तर्प्य विश्विचद्गङ्गायां देवताः पितृन् ।

दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किन्विषान्मोक्षयन्ने क्षणात् ॥ ४२ ॥

प्रणम्य शिरसाकण्वमनुजाप्य च दुर्जयः । वाराणस्यांहरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत्ततः
जगाम स्वपुरीं शुभ्रां याजयामास मेदिनीम् । याजयामास तं कण्वो यान्नितोऽशुणयामुनिः
तस्य पुत्रोऽयं मतिमान्मुप्रतीक इति स्मृतः । यभुवजातमायं तं राजानमुपतस्थिरे
उर्वश्याञ्च महावीर्याः सप्तदेवसुतोपमाः । कः याजगृहिरे सर्वा गन्धर्वोद्दयिताहिजाः
एषवः कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः । वंशः पापहरो नृणां क्रोशोरपि निबोधत्
इति श्रीकूर्ममहापुराण राजवंशानुकीर्त्तने महस्रजिहंशवर्षनंताम

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः.

यद्वयंशर्जनम्

ग्ल उपाय

बोधोरेषोऽभयपुत्रो वज्रवार्तिविति विधुत ।

तस्य पुत्रोऽभयच्छान्ति कुशिकान्तगुतोऽभयम् ॥ १ ॥

कुशिकादभयपुत्रो नाद्या चित्ररथोदर्या । भयपेशरथिलकि शमाविन्दुगिति स्मृत
तस्य पुत्र वृषुयशासनाभूदस्मत्पर । वृषकमांघ तपुत्रतस्मात्पुत्रयोऽभयम्
वृषुर्कीर्तिरभूतस्मात्पुत्रातस्मत्तोऽभयम् ।

वृषुप्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यामीत्पुत्रससम् ॥ ४ ॥

उशान्तस्यपुत्रोऽभूच्छतेपुस्त्रगुतोऽभयम् । तस्मात्तरकमपघपरावृत्तभतसुत
परावृत्तसुतोऽत्रेयामचालोकविधुत । तस्माद्दिदमं सञ्जमे विन्भात्रघकोशिकी
लोमपादम्नतायस्त्र यत्रस्तस्यामजो वृष ।

भृतिस्तस्याऽभयपुत्र इतस्तस्याप्यभृत्सुत ॥ ३ ॥

इतस्तस्यपुत्रो बलवाप्राद्या विन्धमह स्मृत ।

तस्यपुत्रो मफावीय प्रभावान्कीशिक स्मृत ॥ १ ॥

अभयस्यसुतोऽधामातसुमन्तधनतोऽजल । अतस्म्यसुत उधेति इतेतेरन्येऽभयसुता
तया प्रथानो घतिमाव्यपुस्मास्त्र सुतोऽभयम् ।

वपुस्मतो वृहस्पेधा धीश्वस्तसुतोऽभयम् ॥ १० ॥

तस्यवानाथाविश्रीहृमनामहावत् । इथस्त्याप्यमवत्कुन्निर्तृ पिणस्तस्याभयसुत
तस्मात्प्रवरधानाम् यभूव सुमहायल । कदाचिन्मुगया यातोदृष्टा राक्षसमूर्ध्वितम्
दुद्राव महताविणे भयेत मुनिपुङ्गवः । श्वधावत सत्रुदो राक्षससं महायल ॥
दुस्वोधनोऽग्निमकारा शृण्वास्तमहाकर । राजानवरथो भीतो नातिदूरदवम्बितम्

अपश्यत्परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम् ।

स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान्नुपः ॥ १५ ॥

ववन्देशिरसादृष्टासाक्षाद्देवीं सरस्वतीम् । तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिर्दद्याञ्जलिरमित्रजित्
पपात दण्डवद्भूमौत्वामहं शरणंगतः । नमस्यामि महादेवीं साक्षाद्देवीं सरस्वतीम्
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम् । नमस्येजगतां योनियोगिनीं परमां वलाम्

हिरण्यगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।

नमस्ये परमानन्दाञ्चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ १६ ॥

पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती । समुद्यम्य तथा शूलं प्रविष्टो बलगर्चितः

त्रिलोकमातुर्हि स्थानं शशाङ्कादित्यसन्निभम् ।

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ २२ ॥

शूलनोरसि निर्भिद्य पातयामास तम्भुवि । गच्छेत्याहमहाराजनस्थातव्यं त्वया पुनः
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसोहतः । ततः प्रणम्य हृष्टात्पाराजानवरथः परम्
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्दरपुरोपमाम् । स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः
इंजे च विचित्रैर्यज्ञैर्होमैर्द्वीं सरस्वतीम् । तस्य चासीद्गुरुरथः पुत्रः परमधार्मिकः
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ।

तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः ॥ २७ ॥

इंजे स चाश्वनेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः । मधुस्तस्य तु दयादस्तस्मात्कुरुरजायत
पुत्रद्वयमभूत्स्यसुत्रामावानुरेव च । अनोस्तु प्रियगोत्रोऽभूद्दंशुस्तस्य चरिक्थभाक्
अथांशोरुन्धको नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् । महात्मादाननिरतो धनुर्वेदविदाम्बरः
स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः । शास्त्रं प्रवर्त्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतानाञ्च शोभनम् ।

प्रवर्त्तते महच्छास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ॥ ३२ ॥

सान्त्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः । पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम्

सात्त्वतान्स्त्वमम्पन्नान्कोशल्या सुपुत्रे सुतान् ।

अन्धक वै महामोजं वृ ष्णिदेवाऽथ नृपम् ॥ ३४ ॥

ज्येष्ठश्च भजमानास्य धनुर्वेदविदाम्बरम् । तेषा देवातृधो राजा चचार परम तप ॥

पुत्रं सर्वगुणोपेतोममभूयादितिप्रभु । तस्यबभ्रुरितिख्यातपुण्यश्लोकोऽभवन्नृप

धार्मिको रूपसम्पन्नस्तस्वज्ञानरत सदा । भजमाना धिय दिव्यामजमानाद्विजज्ञिरे

तेषा प्रधानो विख्यातो निमि वृक्षण ष्य च ।

महामोजकुले जाता भोजा यैमानकास्तथा ॥ ३८ ॥

वृषणे सुमिरोवल्वाननमिरस्तिमिन्तथा । अनमित्राद्भूमिप्रोत्तिप्रस्यद्वावभूवतु

प्रसेनस्तु महाभाग सत्राजिधाम चोत्तम ।

अनमित्रा मनिङ्गत्रे कनिष्ठो वृष्णिनन्दतान् ॥ ४० ॥

सत्यवाक सत्यसम्पन्न सत्यकम्बत्सुतोऽभवत् ।

सायकियु युधानस्तु तस्याऽम्बुतोऽभवत् ॥ ४१ ॥

वृष्णिस्तस्य सुतो धीमान्तस्य पुत्रो युगन्धर ।

मात्रया वृष्णि सुतो जज्ञे वृषणर्वे यदुनन्द ॥ ४२ ॥

जज्ञाने तनयो वृष्ण श्वरकश्चिबकस्तु हि ।

श्वरकः काशिराजस्य सुता भायामधिन्दत ॥ ४३ ॥

तस्यामजतयन्पुत्रमजर नामधार्मिकम् । उपमङ्ग तथा महुमस्ये च वदय सुता ॥

श्वरस्य स्मृत पुत्रा दववानिति विधत् । उपदेवश्च देवान्मानयोर्विश्वप्रमाधिनी

विश्वकस्यामजपुत्रं श्रुर्विदृष्टस्य च । अश्वरीव सुरादृध सुवाश्वकगरेक्षकौ

अन्धकस्य सुताया तु लभे च चतुर सुतान् । कुकुर मजमानःशरामीकयत्पापितम्

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्गृणेस्तु तनयोऽभवत् ।

कपातरामा धिन्यातम्बस्य पुत्रो विलोमक ॥ ४८ ॥

तस्यामालम्बुमत्वा विद्वान्पुत्रस्तम किल ।

तस्याऽप्यभवत्पुत्रस्तथाऽऽतकःकन्दमि ॥ ४९ ॥

स गोवर्द्धनमासाद्य तताप विपुलन्तपः । वरंतस्मी ददौ देवो ब्रह्मालोकमहेश्वरः ॥
 वंशस्ते चाक्षयाकीर्त्तिर्गानयोगस्तयोत्तमः । गुरोरप्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च
 स लब्ध्वा वरमव्यग्रोचरेण्यादृष्टुपवाहनम् । पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम्
 तस्य गानरतस्याथ भगवानभ्यिकापतिः । कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि
 तया ससङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम् । अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियांतां भ्रान्तलोचनाम्
 तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नामशोभनम् ।

रूपलावण्यसम्पन्नां हीमतीमितिकन्यकाम् ॥ ५१ ॥

ततस्तं जननीपुत्रं बाल्येवयसि शोभनम् । शिक्षयामास विधिवद्गानविद्याञ्च कन्यकाम्
 हृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिघट्ट गुरोः ।

उद्ववाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणान्तु मानसीम् ॥ ५२ ॥

तस्यामुत्पादयामास पञ्चपुत्राननुत्तमान् । वीणावादनतत्त्वज्ञानं गानशास्त्रविशारदान्
 पुर्णैः पूर्णैः सपत्नीको राजा गानविशारदः । पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम् ॥
 हीमतीञ्चारुसर्वाङ्गीर्श्रीमिवायतलोचनाम् । सुबाहुना मागन्धर्वस्तामादाय ययीपुत्रीम्
 तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः । सुप्रेणर्धारसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः ॥
 अथासीदभिजित्पुत्रश्चन्दनोदकदुन्दुभेः । पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्वभूवाहुकम्ततः
 आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः । देवकस्य सुतावीरा जगिरे त्रिदशोपमाः
 देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः । तेषां स्वसारः समासन्वमुदेवाय ता ददौ ॥ ६४
 धृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता । श्रीदेवा शान्तिदेवा च महदेवा च सुवता
 देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत्सुमध्यमा । अग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्व्यग्रोद्यः कंसपुत्रश्च
 सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्जङ्गुरेव च । भजमानाद्भूत्पुत्रः प्रख्यातोऽसौ चिदूरथः
 तस्य सूरसमस्तस्मात्प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः ।

स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद्वात्रीकः शशुतापनः ॥ ६८ ॥

कृतवर्माथ तत्पुत्रः शूरसेनः सुतोऽभवत् । वसुदेवोऽथ तत्पुत्रो नित्यं धर्मपरायणः
 चसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः । यभूवदेवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः ॥ ७०

रोहिणी च महाभागा धातुदेवस्यशोभना । भगवत् पत्नी महूपे रामं उयेष्टं हलायुधम्
 स एव परमात्मस्य धातुदेवो जगन्मय । हलायुध स्यदसाक्षाच्छेषसङ्करंजयमु-
 भृगुशापच्छत्रैव मानयन्मानुषीं तनुम् । बभूव तस्यां देवस्यां रोहिण्यामपिप्रथम
 उमादेहममुद्भूता योगनिद्राच कीशिकी । त्रियोगाद्धातुदेवस्ययशोऽतनयाऽयभूत्
 ये धान्ये धातुदेवस्य धातुदेवाप्रजासुता । प्रागेव कंसस्तान्महापात्रयानमुनिमन्त्रा-
 नुपण्ड्य ततोदायी भद्रमेनो महावत् । यद्रुद्रमो भद्रमेत कीर्तिमानपि पूजित-
 हन्त्रेतेषु सर्वेषु रोहिणीयमुदयत् । भगवत् रामं लोकेषु यत्र भद्रं हलायुधम् ॥ ३३१ ॥
 जगत्स्य रामदेवतामादिमात्मनात्मन्युत्तमम् । धम्वन् इवर्षादृष्ण त्रीषुमाद्विद्वत्प्रत्यक्ष-
 रवती माम रामस्य माध्याऽऽर्माऽनुगुणान्विता ।

तस्यामुपाश्रयामास पृथीर्द्धा निशितोऽमुकी ॥ ३३ ॥

पादशर्मासाक्षात्पितृणां स्यात्त्रिप्रकमण । यभृयुध्यात्प्रजाप्तामुशानशोऽधमस्यश-
 न्नारुद्रेण सुधाश्रय धारयया यशोधर । धारयध धारयशा प्रचमन रामस्यैव च
 हविमण्यां धातुदेवस्यमहायत्परकम्प्रा । विशिषा सर्वपुत्राणांमन्वभृशुमिसुता
 तान्दृष्ट्वा तनयान्यागर्षाक्षिप्रजेयाऽनाङ्गनाम् ।

जाम्बवयर्षीन्त्राणं माया तस्य शुचिस्मिता ॥ ८३ ॥

ममस्य पुण्डरीकाक्ष विशिष्टगुणवत्तरम् । सुरेशमभिर्नतं पुत्रं देहि तान्प्रसन्न ॥
 नाम्यवत्या यत्र अस्याजगन्नाथ स्यैव हरि । ममारमेतप कर्तुं तथा निधिररिन्म-
 न्कृष्णुष्यं मुनिधरा यथार्मा इवर्षामुत । दृष्ट्वात्रेभे मुत रुद्र तज्जवार्ताप्रमहत्तप-
 इति प्राकृष्णमहापुराण यदुवशानुकीतननाम चतुर्विंशोऽध्याय ॥ - ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

यदुवंशकीर्त्तनेकृष्णतपश्चरणवर्णनम्

सूत उवाच

अथदेवो हृषीकेशो भगवान्पुरुषोत्तमः । ततापघोरं पुत्रार्थं निधानं तपसस्तपः ॥ १
स्वेच्छयाऽप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वसृक् ।

चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन्परमेश्वरम् ॥ २ ॥

जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् । आश्रमंतूपमन्योर्वैमुनीन्द्रस्यमहात्मनः
पतत्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम् । शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कितलक्षणः
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् । ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वैदवोपनिनादितम्
सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम् । विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम् ।
आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः । ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा ।

वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितञ्चाग्निहोत्रिभिः ।

योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥ ८ ॥

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । नदीभिरभितोजुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः
सेवितं तापसैः पुण्यंरीशाराधनतत्परैः । प्रशान्तैः सत्यसङ्कल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः
भस्मावदातसर्वाङ्गैःरुद्रजाप्यपरायणैः । मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखान्तैः
सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः । तत्राऽऽश्रमचरैरग्रे सिद्धाश्रमविभूषि

गङ्गा भगवती नित्यं वहत्यैवाऽवनाशिनी ।

स तत्र वीक्ष्य विश्वात्मा तापसान्वीतकल्मषान् ॥ १३ ॥

प्रणामेनाथचक्षसा पूजयामासः माधवः । तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम् । स्तुवन्तिवैदिकैर्मन्त्रैःकृत्वाहृदिसनातः
प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम् । अयं स भगवानेकः साक्षीनारायणः ।

आगच्छत्यधुनादेव प्रधानतुष्टयं स्वयम् । अयमेवाप्ययं स्रष्टा संदत्तां धैर्यं रक्षकं
अमूर्त्तो भूर्त्तिमाम् भूत्या मुनीन्द्रपुटुमिहागतः ।

एव घाता विघाता च समागच्छति सर्वगः ॥ १८ ॥

अनादिरभ्यस्योऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः ।

अत्या बुद्ध्या हरिस्तथा यथासि यथातिगः ॥ १९ ॥

यथा स तृणं गोविन्दं स्थानतम्यमहात्मनः । उपस्पृशयमायेनतीर्येतीर्येसयाव्यं
अकारं देवकासुनुर्वीरिपितृव्यणम् । नदाना तारमस्याने स्थापितानि मुनीश्वरं
लिङ्गानि पूजयामास शम्भारमितनेनमः । दृष्ट्वादृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनान्मम्
पूजयञ्चक्रिरेपुष्परत्नैस्त्रिचामितः । समाश्रयामुद्देशतशार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्
तस्यिरे निश्चरसर्षे शुभाङ्गा यतमानसाः । यानि तत्राकरक्षुणां मानसानिजनाङ्गनम्
दृष्ट्वासनादितान्यासत्रिभ्रामन्तिपुराहृदिम् । अथायगाह्यगङ्गायां हृत्वादेवर्त्तिपणम्
आशय पुष्पवयाणि मुनान्द्रस्याऽऽविशत् गृहम् ।

दृष्ट्वा तं यागिना ध्रष्ट भस्मादुधूलितविग्रहम् ॥ २६ ॥

यत्रानाश्वरशान्तननामशिरसा मुनिम् । आलोक्यदृष्ट्वाप्यमायान्तं पूजयामासतत्त्ववित्
आत्मनः धामयामासयागिनाश्रयमातिथियम् । उवाचयवसायोनिश्चानीमपरमम्पदम्
विष्णुमन्यकमस्थान शिष्यमाउनमभिनम् । स्वागतन्तेहृदीकेशसकलानितपासिनः
यसाप्यदेवविम्बा मामदुग्द विष्णुरागतः । त्वानपश्यन्तिमुनयोयतन्तोपीहयोगिनः
तादृशस्यात्रभवत् किमागमनकारणम् । ध्रुत्वापमन्योस्तद्वाक्यं भगवान्देवकासतं
व्यानहार महायागा प्रसन्नं प्रणिपत्यतम् ॥ ३१ ॥

वृष्ण उवाच

भगवन्त्रुमिच्छामि गिराशं वृत्तिवाससम् ॥ ३२ ॥

मस्यातो भवतः स्थानं भगवद्शानात्सुकः । कथं स भगवानीशोदृश्योयोगविशाम्बरं
मयाधिरणं कुवाहं दृश्यामि तमुपापतिम् । प्रत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरं
अनपवाश्रणं तपसा तत्कुरुष्वहं सयतः । शहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ॥ ३३ ॥

ध्यायन्त्याराधयन्त्येनंयोगिनस्तापसाश्च ये । इहदेवःसपत्नीको भगवान्पृथग्भध्वजः
 क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः पस्वारितः । इहाश्रमे पुरारुद्रं तपस्तप्त्वा सुदारुणम्
 लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवान्पृथिः । इहैव भगवान्ख्यासःकृष्णह्रैपायनःस्वयम्
 दृष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवान्ज्ञानमेश्वरम् । इहाश्रमपदे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः ॥
 अविन्दन्पुत्रकान्रुद्रात्सूर्यो भक्तिसंयुताः । इह देवा महादेवा भवानीञ्च महेश्वरीम्
 संस्तुवन्तो महादेवंनिर्भया निवृत्तिययुः । इहाराध्य महादेवं साधर्णिस्तपताम्बरः
 लब्धवान्परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् । प्रवर्त्तयामाससतांशुत्वायै संहितांशुभाम्

इहैव संहितां दृष्ट्वा कामो यः शशिपायिनः ।

महादेवश्चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः ॥

द्वादशैव सहस्राणि त्र्यलोकानांपुरुषोत्तम ॥ इह प्रवर्त्तिता पुण्याह्न्यष्टसाहस्रिकोत्तरा
 धायवीयोत्तरंनामपुराणं वेदसम्मतम् ॥ द्विजःपौराणिकीपुण्यां प्रसादेनद्विजोत्तमैः

(इहैव ख्यापितं शिष्यैर्वैशम्पायनभाषितम् ॥ ४३ ॥

याज्ञवल्क्यं महायोगीं दृष्ट्वाऽत्रतपसा हरम् । त्रकारतन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्
 इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा पूर्वं महातपः । शुक्रो महेश्वरात्पुत्रोलब्धो योगधिदाम्बरः
 तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रम्भीमंकपर्दिनम्
 प्लवमुक्तवा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः । व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाह्निप्रकम्मणे
 स तेन मुनिवर्षेण व्याहृतो मधुसूदनः । तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत्प्रभुः ॥ ४८ ॥
 भस्मोद्बधूलितसर्वाङ्गोमुण्डो बलकलसंयुतः । जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः
 ततो ब्रह्मतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः । अदृश्यत महादेवो व्योम्निदेव्यामहेश्वरः

किरीटिनं गद्दिनञ्चित्रमालं पिनाकिनं शूलितं देवदेवम् ।

शार्दूलधर्माम्बरसम्भृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श ॥ ५१ ॥

प्रभुमुपुराणं पुरुषं पुरस्तात्सनातनं योगिनमीशितारम् ।

अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श ॥ ५२ ॥

परश्वध्रासककरं त्रिनेत्रं नृसिंहधर्मावृतभस्मगात्रम् ।

रुमुद्गिरन्तं प्रणयं बृहन्त सहस्रसूर्य्यप्रतिम ददर्श ॥ ५३ ॥
 न यस्य देवा न पितामहोऽपि नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न शृत्यु ।
 प्रभायमद्याऽपि घदन्ति रुद्र तमादिदेव पुरतो ददर्श ॥ ५४ ॥
 तदान्वपश्यद्गिरिशस्य घामे स्वात्मानमध्यतमनतरूपम् ।
 स्तुवन्तमीश बहुभिर्वचोभि शङ्खासिचक्रान्वितहस्तमाद्यम् ॥ ५५ ॥
 वृताञ्जलि वशिणत सुरेश हसाधिरुढ पुरप ददर्श ।
 स्तुवानमीशस्य परमप्रभाव पितामह लोकगुरु दिविस्थम् ॥ ५६ ॥
 गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पाग्रन्दीश्वरादीनमितप्रभावान् ।
 त्रिलोकभर्तुं पुरतोऽन्वपश्यत्कुमारमग्निप्रतिमं गणेशम् ॥ ५७ ॥
 मरीचिमत्रिम्बुलहम्बुलस्त्यम्प्रचेतस दक्षमथापि कण्वम् ।
 पराशर तत्परतो घसिष्ठ स्वायम्भुवञ्चापि मनु ददर्श ॥ ५८ ॥
 त्रुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधान घडाञ्जलिर्विष्णुस्वामुदि ।
 प्रणम्य देव्या गिरिश स्वभक्त्या स्वात्मानयथात्मानमसौ विचिन्त्य ॥

वृत्त उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वता सर्वयोगां ब्रह्माद्यस्त्वामृषयो घदन्ति ।
 तमश्च सत्त्वञ्च रजस्त्वयञ्च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्त ॥ ६० ॥
 स्व प्रज्ञा हरिरथ रुद्र विश्वकर्ता सहर्ता दिनकरमण्डलाधिवास ।
 प्राणस्त्व हुतवहवासावादिभेदस्त्वामेक शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६१ ॥
 साङ्ख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं योगस्य सततमुपासने हृदिस्थम् ।
 वदान्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्य त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६२ ॥
 त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेक दत्त्वाऽसौ भवति विमुक्तविश्वबन्ध ।
 सर्वाथि प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्ट स्मृत्वा तै पदयुगल भवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥
 यस्याशेषविभागहीनममल हृद्यतरावस्थितं ।
 न त्वा योनिमनन्तमेकमचल सत्यम्पर सर्वगम् ॥ ६४ ॥

स्थानम्प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदञ्जायते

नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं तं शिवम् ॥ ६५ ॥

ॐ नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे । महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने । नमस्तेवज्रहस्तायद्विखलायकपर्दिने
नमोभैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे । नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरत्से ॥ ६८ ॥

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः ।

नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमोनमः ॥ ६६ ॥

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने । नमो भैरवत्रेपाय हराय च नित्यङ्गिणे ॥

नमोऽस्तु ते व्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे ।

नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः ॥ ७१ ॥

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः । नरनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिने ॥

नमोभैरवनाथाय देवानुगतलिङ्गिने । कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥ ७३ ॥

नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे । मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः ॥

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमोनमः । योगिनेयोगगम्याय योगमायाय ते नमः

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च । कपालिनेनमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतयेनमः

नमो नमोऽस्तु ते तुभ्यं भूय एव नमो नमः ।

मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ॥ ७७ ॥

सूत उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः । पपातपादयोर्विप्रादेवदेव्योःसदण्डवत्

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिपूदनम् ।

बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ ७६ ॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष! तप्यते भवतातपः । त्वमेव दाता सर्वेषांकामानां कर्मणामिह

त्वं हि सा परमा मूर्तिर्मम नारायणाह्वया । न विना त्वां जगत्सर्वविद्यते पुरुषोत्तम

चेद्व्यनारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम् । महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव ॥

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्ण प्रहसन्धै वृषध्वजम् ।

उवाचाऽन्वीक्ष्य विश्वेश देवीञ्च हिमशैलजाम् ॥ ८३ ॥

जान हि भवता सर्वं स्येन योगेन शङ्कर । इच्छान्यामसम पुत्र त्वद्वक्तु देहिशङ्कर
तयाम्बिचत्याहविम्बात्मा द्रष्टुमनसाहृत् । देवीमालोक्यगिरिजा केशवंपरिपम्बजे
नत सा जगता माता शङ्कराहंशरीरिणी ।

व्याजहार हृषीकेश देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥ ८४ ॥

वह ज्ञानेनवाऽनन्त निधला सर्वदाऽच्युत । अनन्यामीश्वरेभक्तिमात्मन्यपिचकेशव
न्व हि नाययप साक्षान्नवात्मा पुरुगोत्तम ।

प्रार्थितो वैचरुं गृहं सञ्जातो देवकीमुत ॥ ८८ ॥

पश्य त्वमात्मनत्मानमात्ममानम सम्प्रति । नावयोर्विद्यते भेद एकव्यश्यन्तिसुरय
ऽमानि वरुनिगन्मसो गृह्णाप्य केशव । सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञान तत्पारमेश्वरम् ॥
ईश्वरे निधला मक्तिमान्नन्यपिपरवरम् । एवमुक्तस्तथा कृष्णो महादेव्याज्जनाहृत
आदेश शिरसा गृह्य देवोऽप्याह तथैश्वरम् ।

प्रसूय कृष्ण भगवानथेश करेण देव्या सह देवदेव ॥

सम्सूयमानो मुनिभि सुरेशौनगाम कैलासागिरि गिरीश ॥ ९२ ॥

नि श्रीकूर्ममहापुराणे यदुवशानुकीत्तने कृष्णतपश्चरणं नाम

वञ्जविशोऽध्याय ॥ २० ॥

षड्विंशोऽध्यायः

लिङ्गोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम् । राम भगवान्सोमः केशवेन महेश्वरः ॥
अपश्यंस्तेमहात्मानं कैलासगिरिवासिनः । पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमिवाच्युतम्
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम् । किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्
दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम् । दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्
भ्राजमानं श्रियादेव्यायुवानमतिकोमलम् । पद्माङ्घ्रिं पद्मनयनं सस्मितं सद्रतिप्रदम्
कदाचित्तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः । भ्राजमानःश्रियाकृष्णश्चचार गिरिकन्दरम्

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः ।

सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वा देवास्तश्च जगन्मयम् ॥ ७ ॥

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यम्परंगत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः । मुमुक्षुःपुष्पवर्षाणितस्यमूर्ध्निमहात्मनः
गन्धर्वकन्यकादिव्यास्तद्वदप्सरसोवराः । दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं सुस्तुतंशुचिभूषणाः
काश्चिद्गायन्तिविविध्रंगानंगीतविशारदाः । सम्प्रेक्ष्यदेवकीसूनुंसुन्दरं काममोहिताः

काश्चिद्विलासवहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः ।

सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित्पुस्तद्वनामृतम् ॥ ११ ॥

काश्चिद्भूषणवर्षाणि स्वाङ्गादादाय सादरम् ।

भूपयाञ्चक्रिरे कृष्णं कन्या लोकविभूषणम् ॥ १२ ॥

काश्चिद्भूषणवर्षाणिसमादायतद्भूतः । स्वात्मानंभूपयामासुःस्वात्मकैरपिमाधवम्
काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता । चुचुम्य वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगोक्षणा
प्रगृह्य काचिद्गोविन्दंकरेणभवनंस्वकम् । प्रापयामास लोकादिमायया तस्यमोहिता
तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः ।

यहनि श्रुत्या रूपाणि पूरयामास लीलया ॥ १६ ॥

एष धे सुचिरं कालदेवदेवपुरे हरि । रेम नारायण श्रीमान्मायया मोहययन्
गते बहुतिथे कालेद्धारयत्या निवासिन । धभूयुर्विकलामीता गोविन्दचिरहे जना
तत सुपणो यलवान्पूर्य्यमेध विसर्जित ।

स रूपं भागमाणस्तु हिमवन्तं यथौ गिरिम् ॥ १६ ॥

अदृष्ट्वा तत्र गोचिन्तं प्रणम्य शिरसा मुनिम् । आजगामोपमन्यु तपुरीद्वारवर्तीपुन
तदन्तरे महादेव्या राक्षसाश्चातिभीषणा । आजग्मुद्गारकांशुम्ना मीप्यन्त सहस्रश
स तान्सुपणो यलवान् वृष्णतुल्यपराक्रम । हत्वा युद्धेनमहतारक्षतिस्मपुरीशुभाम्
पतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषि । दृष्ट्वा कैलासशिखरे वृष्ण द्वारवर्ती गत
ते दृष्ट्वा नारदमृषि सख्ये तत्र निवासिन । प्रोद्युर्नारायणोनाथ कुत्रास्तेभगवान्हरि
स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरि । रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागत

तस्योपश्रुत्य घचनं सुपण पततावर । जगामाकाशगो विप्रा कैलासगिरिमुत्तमम्
द्दशदेवकीधनु भवनैरत्नमण्डिते । तत्रासनस्थगोविन्ददेवदेवान्तिकेहरिम् ॥ २७ ॥

उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभि समन्तत । महादेवगणैःसिद्धैर्योगिभिःपरिवारितम्
प्रणम्यश्ण्डवद्भूमौ सुपण शङ्करशिवम् । निजेत्यामासहरिप्रवृत्तद्वारकापुरे ॥ २८ ॥

तत प्रणम्य शिरसा शङ्करनीललोहितम् । आजगामपुरीवृष्ण मोऽनुज्ञातोहरेण तु
ऋष्यकश्यपसुनस्त्रीगणैरभिभूजित । घद्योमिरमृतास्वदैमानितोमधुसूदन ॥ ३१ ॥

वीक्ष्य यान्तममित्रघ्न गन्धर्व्यांस्तरसावरा । अन्वगच्छन्महायोगशङ्खचक्रगदाधरम्
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सख्यां एवाङ्गना हरि ।

यथौ स नृपं गोचिन्दो दिव्या द्वारवर्ती पुरीम् ॥ ३३ ॥

गत देवेऽसुररिपी न कामिन्यो मुनीश्वरा । निशेधचन्द्ररहिता पितानेनचकाशिरे
श्रद्धापीरजनास्तुं वृष्णागमनमुत्तमम् । मण्डयाञ्चक्रिरेदिव्यापुरीद्वारवर्तीशुभाम्
पताकामिर्विशालाभिःश्रैर्जैरतवहि कृतै । मातादिभिःपुरीरम्या भूरयाञ्चक्रिरेजना
अवाप्यन्त विविधान्वादिशान्मधुरस्वनान् ।

शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान्विते निरे ॥ ३७ ॥

प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरींद्वारवर्तीशुभाम् । अगायन्मधुरंगानं स्त्रियोयौवनशोभिताः
दृष्ट्वा नन्वतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु । मुमुक्षुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि
प्रविश्य भगवान् कृष्णस्त्वाशीर्वादाभिवर्द्धितः ।

वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः ॥ ४० ॥

सुरस्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खद्यैः परिवारितः । आत्मजैरभितोमुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्चसम्भृतः
तत्रासनवरे रस्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः । ॥ ४१ ॥

भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः ॥ ४२ ॥

आजमुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम् । महर्षयः पूर्वजातामार्कण्डेयादयो द्विजाः
ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम् ।

ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददौ हरिः ॥ ४४ ॥

सम्भूयतानृषिगणान्प्रणामेनसहानुगः । विलर्जयामासहरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान्
तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयंहरिः । स्नातः शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठनकृताञ्जलिः

जजाप जाप्यं विधिवत्प्रेक्षमाणो दिवाकरम् ।

तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगणान्मुनीन् ॥ ४७ ॥

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि । पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशम्भूतिभूषणम्
समाप्य नियमं सर्व्वं नियन्ता स स्वयंनृणाम् ।

भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥ ४६ ॥

कृत्वाऽऽत्मयोगं विप्रेन्द्रा! मार्कण्डेयेन चाऽच्युतः ।

कथासंपौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥

अथैतत्सर्व्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः ।

मार्कण्डेयो हसन्कृष्णं वभाषे मधुरं वचः ॥ ५१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः ।

बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया ॥ १६ ॥

षष्ठं वै सुचिरं कालदेवदेवपुरे हरि । रेमे नारायणं श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्
गते बहुतिथे कालेद्वारवत्या निवासिन । वभूर्बुध्बिकलभीता गोविन्दचिह्ने जना
तत सुपर्णो बलवान्पूर्वमेव विसर्जित ।

स कृष्णं मागमाणस्तु हिमवन्त ययौ गिरिम् ॥ १६ ॥

बृहस्पतिश्च गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम् । आजगामोपमन्यु तपुरीद्वारवतीपुन
तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणा । आजगमुर्द्वारकाशुभ्रा भीषन्त सहस्रश
स तान्सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रम । हत्वा युद्धेनमहतास्वतिस्मपुरीशुभाम्
पतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषि । दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गत
ते दृष्ट्वा नारदमृषि सर्व्वे तत्र निवासिन । प्रोचुनारायणोनाथ कुत्रास्तेभगवान्हरि
स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरि । रमतेऽद्य महायोगी त दृष्ट्वाहमिद्वागत
तस्योपश्रुत्य वचन सुपर्ण पततावर । जगामाकाशगो विप्रा कैलासगिरिमुत्तमम्
द्दशदेवकीक्षुन् भवनेरजमण्डिते । तत्रासनस्थगोविन्ददेवदेवान्तिकेहरिम् ॥ २१ ॥

उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्राभिसमन्तत । महादेवगर्णे सिद्धैर्योगिभिर्परिवारितम्
प्रणम्यदृष्ट्वावद्भूमौ सुपर्ण शङ्करशिवम् । निजेदयामासहरिप्रवृत्तद्वारकापुरे ॥ २० ॥
तत प्रणम्य शिरसा शङ्करनीललोहितम् । आजगामपुरीद्वारवतीं सोऽनुज्ञातोहरिण तु
आरह्यकश्यपसुनन्दीगणैरभिर्भूजित । वषोभिरमृतास्वदैमानिनोमधुसूदन ॥ ३१ ॥

धीस्थ यान्तममित्रञ्च गन्धर्वांस्तरसावरा । अवगच्छन्महायोगशङ्खचक्रगदाधरम्
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्व्वा पयाङ्गना हरि ।

ययौ स नृपं गोविन्दो दिव्या द्वारवतीं पुरीम् ॥ ३३ ॥

गते देवेऽसुररिपौ न कामिन्धो मुनीश्वरा । निशेवचन्द्ररहिता चिन्तनेनचकाशिरं
श्रवाणैरज्जतास्त्रुणं कृष्णागमनमुत्तमम् । मण्डयाञ्चत्रिरेदिव्यांपुरीद्वारवतीशुभाम्
पताकामिर्विशालामिध्वंजैरन्तवहि कृत । भाग्यदिभिर्पुरीरभ्या भूषयाञ्चत्रिरेजना
भवान्मन्त विविधान्यादित्रा मधुरस्वतान् ।

पतदाख्याहि मे सर्वं प्रसादाद् द्विजसत्तम ! ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वैकमना भूत्वा तीर्थात्तीर्थान्तरं महत् ।

श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते चाद्रिकादघात् ॥ ५ ॥

वाचिकैर्मानसैर्वापि शारीरैश्च विशोपतः ।

कीर्तनात्तस्य तीर्थस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ६ ॥

पञ्चक्रोशप्रमाणं तु तच्च तीर्थमहीपते ! । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यंप्राणिनां पापकर्मिणाम्
रेवाया दक्षिणेकूलेपर्वतोभृगुसञ्ज्ञितः । तस्यमूर्ध्नि च तत्तीर्थं स्यापितं चैव शम्भुना
शूलभेदेति विख्यातं त्रिपुलोकैः पुभूपते । तत्र स्नियताश्च ये वृक्षास्नीर्थाश्चैव चतुर्दिशाम्
पतिता निलयं यान्ति रुद्रस्य नात्र संशयः । मृतास्तत्रैव ये केचिज्जन्तवो भुवि पश्चिणः
ते यान्ति परमं लोकं तत्र तीर्थेन संशयः । पातालान्निःसृता गङ्गाभोगवती तिसञ्ज्ञिता

निष्क्रान्ता शूलभेदाच्च सर्वपापक्षयङ्करी ।

या सा गीर्वाणनाम्न्यन्या वहेत्पुण्या महानदी ॥ १२ ॥

पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना ।

शम्भुना च पुरा तात ! उत्पाद्य च सरस्वती ॥ १३ ॥

सा तत्र पतिता राजन्प्राचीनावचिमोचिनी ।

भास्वत्याः त्रितयं यत्र शिला गीर्वाणसञ्ज्ञिता ॥ १४ ॥

तत्र तीर्थं च तत्तीर्थं न भूतं न भविष्यति । केदारञ्च प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं गया तथा
अन्यानि च सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

पञ्च स्थानानि तीर्थानि पृथग्भूतानि यानि च ॥ १६ ॥

वक्ष्यामि च समासेन एकैकं च पृथक्पृथक् ।

गया नाम्भ्यां यथा पुण्या चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥ १७ ॥

धर्मारण्ये यथा कूपं शूलभेदं च तत्समम् । ब्रह्मयूपं यथा पुण्यं देवनाद्यास्तथैव च
यथा गयाशिरः पुण्यं सुराणां च यथा शिला ।

यथा घ पुष्कर स्थान मार्कण्डहृद् एव घ ॥ १६ ॥

दत्त्वापिण्डोदकतत्रपितृणा घ तथाक्षयम् । यस्तत्रकुस्नेध्राद्धतोयपियतिनित्यम्
मुच्यतेसद्यपापैस्तु उरग ऋचुर्नरिव । अनिन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भत्रोधविचरिता
त्रयोदशदिन दान त्रयोदशगुणम्भजेत् । अभ्यर्षित मुर दृष्ट्वा गणनाथं गणानन
सर्वे विघ्नायिनश्यन्ति दृष्ट्वा कम्बलक्षेत्रपम् । पूजयेत्परयाभक्त्याशूलपाणिप्रभेः

दयस्य पूजभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नत ।

मार्कण्डेशं ततो भक्त्या पूजयेद्गुह्वासिनम् ॥ २४ ॥

मुच्यन्तेपातकै र्मर्व्यैरज्ञानज्ञानसञ्चिनै । गुह्यामध्ये प्रविष्टस्तु जपेत्सूक्तनुश्रवण
नीलपंचतज्ज पुण्य पद्मशेन लभेत स । त्रिनरास्तत्र तिष्ठन्ति सादियमस्तै सा
सर्वदेवमयस्थानकोटिलिङ्गमनुत्तमम् । यथानदीनदासर्वे सागरे यान्तिमङ्क्षय
तथा पापानि नश्यन्ति शूलभेदस्य दशनात् ।

प्रथमो दृश्यतेऽद्यापि प्रथमो शिवर्षीपत ॥ २८ ॥

विस्फुलिङ्गालिङ्गमयेस्वप्ननेज्ञानयोगत । द्वितीयं प्रथमस्तवतेलचिन्दुप्रमथति
एव हि प्रथमस्तत्र शूलभेदभावज । य स्मरेच्छूलभेदं तु त्रिकालं नित्यमेव च
मपूज्यभजे साक्षात्समाहाभ्यन्तरोत्तर । नक्त्यचिन्प्रयात्पातपृष्ठीऽह्निदशैरपि
शुगाद्गुह्यतर तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोग्धमुत्तमम् ।
सबन्दीपप्रय तीर्थं शूलभेदं जनेः ॥ श्रुतं यस्य प्रभावेऽमुच्यतेसर्वपातकै ॥ ३३ ॥
शूलभेदं मयात्तातसक्षेपात्कथितं तव । य ऋणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सद्यपातकै

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहस्य वा संहितायां पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे शूलभेदं प्रशसावर्णनताम चतुर्थत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

शूलभेदनामकथनेऽन्धकप्रशंसनवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एष एव पुरा प्रश्नः परिपृष्टो महेश्वरम् । राज्ञाचोत्तानपादेनऋषिदेवसमागमे ॥ १ ॥

उतानपाद उवाच

इदं तीर्थं महापुण्यं सर्वदेवमयं परम् । गुह्याद्गुह्यतरं स्थानं न द्रष्टुं न श्रुतं हर ! ॥
शूलभेदं कथं जातंकेनैवोत्पादितंपुरा । माहात्म्यंतस्यतीर्थस्यविस्तराच्छंसमेप्रभो
ईश्वर उवाच

आसीत्पुरा महावीर्योदानवो बलदर्पितः । मर्त्ये न तादृशःकश्चिद्विक्रमेण बलेन वा
सूनुर्वह्नुसुतस्याऽयमन्धकोनामदुर्मदः । निजस्थानेवसन्पापःकुर्वन्राज्यमकण्टकम्
हृष्टपुष्टो वसन्मर्त्ये स सुरैर्नाभिभूयते । भवनंतस्यपापस्य वह्नेरुपवनं यथा ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्धकः काले चिन्तयामासभारत । तोषयामि महादेवंग्रेनसानुग्रहो भवेत्
प्रार्थयामि चरंदिव्यं योगेनसिचत्तते । परं सनिश्चयं कृत्वासोऽन्धकोनिर्गतोगृहात्
रेवातटं समासाद्य दानवस्तपसि स्थितः ।

उग्रं तपश्चचाराऽसौ दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ६ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं स निराहारोऽभवत्ततः । द्वितीयं तु सहस्रं स न्यवसद्धारिभोजनः
तृतीयं तु सहस्रं स धूमपानरतोऽभवत् । चतुर्थं वर्षसाहस्रंयोगाभ्यासेन संस्थितः
कोऽपीह नेदृशं चक्रेतपःपरमदारुणम् । अस्थिचर्माऽवशेषोऽसौ यावत्तिष्ठतिभारत
तस्य मूर्ध्नि ततो राजन्धूमवर्त्तिर्विनिःसृता ।

देवलोकमतीत्याऽसौ कैलासं व्याप्य संस्थिता ॥ १३ ॥

तावद्देवसमीपस्था उमावचनमब्रवीत् । कोऽस्त्ययं मानुषेलोकेतपसोऽग्रेणसंस्थितः
चतुर्वर्षसहस्राणि व्यतीथः परमेश्वर ! । न केनाऽपीदृशं तप्तं तपो तप्तं शनं तप्तं ॥

अवनांशुरपे देव किमत्रनियमाऽन्विते । 'मर्षस्य हृत्से शीघ्रं त्यमल्पेन तपसाविभो
नाश्वराडां करिष्येऽद्यन्वया महामहेभर ।' यायन्नोत्थाप्यतेह्योपदानपोमत्तघटतल

ईभर उवाच

साधुसाधु महादेवि' सवत्क्षणलक्षिते । अहं नंतविजानामिहिर्यन्नं दानवेभ्यम्
योगाभ्यासे स्थितो भद्रे' ध्यायन्त परम पदम् ।

तत्रागच्छ मया सादं यत्र तप्यत्यसौ तप ॥ १६ ॥

उमया महितो देवो गतस्तत्र महेभर । अस्मिन्नभांवशोरस्तु दृष्टो देवेन शम्भुना
प्रयुवाच प्रमन्नोऽसौ देवदेवो महेभर । भोभो कष्ट ह्येन भीमं दाह्यंलोमहर्षणम्
ईदृशश्च तपो घोरकस्माद्धम त्यथा ह्येनम् । परदास्याम्यहवत्स यस्तेमनसिषत्तने

अन्धक उवाच

यदि तुणोऽग्निमे देववरदोयदि शङ्कर । सुरान्मर्वान्विनेष्यामिन्धत्प्रमादान्महेभर'

ईभर उवाच

स्वप्नेऽपि त्रिदशा सर्वे न याद्वव्या कदाचन ।

अमम्भाष्य न वक्तव्य मनसो यत्र रोषते ॥ २४ ॥

अन्य किमपि याद्यस्य यस्ते मनसि वर्तते ।

स्वर्गे वा यदि वा मर्त्ये पातालेषु च सस्थितान् ॥ २५ ॥

मर्त्येषु विविधान्भोगान्मोक्ष्यसि त्वं यथेप्सितान् ।

कुरु निःकण्टक राज्य स्यग देवपतिर्पथा ॥ २६ ॥

देवस्य घघन धृत्वा सोऽन्धको विमना स्थित ।

वृथा क्लेशश्च मे जातो न किञ्चित्साधित मया ॥ २७ ॥

निःश्वाम परम मुक्त्वा निपपात घरातले ।

मूलच्छिन्नोयथावृक्षो निरुच्छ्रामस्तदाभवत् ॥ २८ ॥

सूच्छांपन्न ततो दृष्ट्वा देवी पत्न्यनमज्जवात् । य कामकामयत्येव तमस्मी देहि शङ्कर'

भकानुपेक्षमाणस्य तवाऽकीर्तिर्मविष्यति ॥ ३० ॥ -

ईश्वर उवाच

यदि दास्ये वरं देविइच्छामूतंकदाचन । ततो न मंस्यतेचिष्णुं नत्रह्याणंनमामपि
उच्चत्वमाप्तो देवेशि! अन्यानपि सुरासुरान् ॥ ३२ ॥

देव्युवाच

कमप्युपायमाश्रित्य उत्थापय महेश्वर !। चिष्णुवर्जं सुरान्सर्वाञ्जयस्वेति वरं चद॥

ईश्वर उवाच

उपायः शोभनो देवि! यो मे मनसि वर्त्तते ।

तमेवास्मै प्रदास्यामि यस्त्वया कथितो वरः ॥ ३४ ॥

ततोऽमृतेन संसिक्तः स्वस्थोऽभूत्तक्षणादयम् ।

तथा पुनर्नवो जातः सर्वाऽवयवशोभितः ॥ ३५ ॥

शृणुष्वैकमनाभूत्वागृहाण वरमुत्तमम् । चिष्णुवर्जंप्रदास्यामियत्तवाभिमतंप्रियम्

सर्वं च सफलं तुभ्यं मा धर्मस्तेऽन्यथा भवेत् ।

ददांमीति वरं तुभ्यं मन्यसे यदि चाऽसुर !॥ ३७ ॥

चिष्णुवर्जं सुरान्सर्वाञ्जिष्यसि त्वं च मां चिन्ता ॥ ३८ ॥

अन्धक उवाच

भवत्वेवमिति प्राह बलमास्थायकेवलम् । चिष्णुवर्जं चिजेष्येऽहंस्ववलेन महेश्वर!

कृतार्थोऽहं हि सञ्जात इत्युक्त्वा प्रणतिं गतः ।

गच्छ देवो मया सार्द्धं कौलासशिखरं वरम् ॥ ४० ॥

चृपपुङ्गवमारुह्य देवोऽसाद्युमया सह । चरंदत्त्वा स तस्यैवंतत्रैवान्तरधीयत ॥ ४१

, इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे अन्धकवरप्रदानवर्णनंताम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

पट्टचत्वारिंशोऽध्यायः

शचीहरणवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

स दानयोधर लब्ध्वाजगामस्वपुरं प्रति । ददर्श स्रपुरंराजञ्छोमितचित्रधत्वरै
उद्यानेधैव चिचिधै कदलीखण्डमण्डितै । पननीरकुलेश्वेवाघ्रातैराघ्नैश्च चम्परी
अशोकेर्नालिकेरेश्चमातुलिङ्गै मदाडिमै । नानावृक्षैश्शोभाढ्य तडागैरुपशोभितम्
देवतायतनैर्दिव्यैर्ध्वजमालामुशोभितै । वेदाध्ययननिर्वापैर्मङ्गलाद्यैर्विनादितम् ॥

प्राचिशङ्करने दिव्ये काञ्चने रुक्ममालिनि ।

अपश्यत्स सुनान्भार्याममात्यान्दासभृत्यकान् ॥ ५ ॥

ततो जयप्रदान्सर्वाङ्गितश्चेतद्यथायतन । हृच्छोभा च प्रदुर्वाणान्भैजयन्तीभिरुद्यकै
केचित्तोरणमाचद्वय केचित्पुष्पाण्यवाकिरन् ।

मानुलिङ्गकराश्चान्ये धावन्ति ह्यन्धकं प्रति ॥ ७ ॥

पुरे जनाश्च दृश्यन्ते भाजनैरत्रपूरित । पूर्णहस्ता प्रदृश्यन्ते तत्रैव बहवो जना
साक्षनैर्भाजनैस्तत्रशतमाहस्रयोपित । मन्थान्पटन्ति विप्राश्चमङ्गलान्यपियोपित

अमात्याश्चैव भृत्याश्च गजाश्चाढीकपन्ति च ।

वर्धापयन्ति ते सर्वे ये केचित्पुरवासिन ॥ १० ॥

हृण्स्तुण्डोऽवसत्तत्र सचिवै सह सोऽन्धक । ददर्श सजगत्सर्वैतुरङ्गाश्चपदातिकान्

तथैव विविधान्कोशास्तत्र काञ्चनपूरितान् ।

महिर्पीर्गा वृषाश्चैवापश्यच्छत्राण्यनेकधा ॥ १२ ॥

स एवमन्धकस्तत्रकिं गत कालमायसत् । हृण्स्तुण्डोऽवसन्मर्त्ये स सुरैर्नाभ्यभूयत

वर लब्ध तु त ज्ञात्वा शङ्किता स्वर्गधामिन ।

एकीभूताश्च ते सर्वे वासवं शरण गता ॥ १४ ॥

शक्र उवाच

कथमागमनं वोऽत्र सर्वेषामपि नाकिनाम् ।
कस्माद्दो भयमुत्पन्नमागताः शरणं कथम् ।
ततस्ते ह्यनराः सर्वे शक्रमेतद्वचोऽब्रुवन् ॥ १६ ॥

देवा ऊचुः

सुरनाथान्धकोनाम दैत्यः शम्भुचरोर्जितः । अजेयः सर्वदेवानां किं नृकार्यमतः परम्
तत्त्वं चिन्तय देवेश! क उपायो विधीयताम् ।

इत्थं वदन्ति ते देवाः शक्राग्रे मन्त्रणोद्यताः ॥ १८ ॥

मन्त्रयन्ति च याचद्द्वैताचचारमुखेरितम् । ज्ञात्वा तत्र स देवो यं दानवो निगंतो गृहान्
एकाकी स्यन्दनाऽऽरूढ आयुर्ध्रुवहृभिर्वृतः । दुर्गमं मेरुपृष्ठं स लीलयाैव गतो नृप
स्वर्णप्राकारसंयुक्तं शोभितं विविधाश्रमैः ।

दुर्गमं शत्रुवर्गस्य तदा पार्थिवसत्तम ॥ २१ ॥

प्रविवेशाऽऽसुरस्तत्र लीलया स्वपृष्टे यथा । वृत्रहा भवमापन्नः स्वकीयं घासनन्द्री
उपविष्टोऽन्धकस्तत्र शक्रस्यैवाऽऽसने शुभे ।

आस्थानं कलयामास सर्वतस्त्रिदशावृतम् ॥ २३ ॥

शक्र उवाच

किं तवाऽऽगमनं चाऽत्र किं कार्यं कथयस्व मे ।

यदस्मदीयं वित्तं हि तत्ते दास्यामि दानव ! ॥ २४ ॥

अन्धक उवाच

नाऽहं वै कामये कोशं न गजांश्च सुरेश्वर ! स्वकीयं दर्शयस्वाऽद्य स्वर्गं शृङ्गारभूषितम्
ऐरावतं महानागं तं शैवोच्छैः श्रवोहयम् । उर्वश्यादीनि रत्नानि मम दर्शय गापते
पारिजातकपुष्पाणि-वृक्षजातीनैकशः ।

वादित्राणि च सर्वाणि दर्शयस्व शचीपते ॥ २७ ॥

तस्मै तद्वचनं श्रुत्वा शक्रश्चिन्तितवानिदम् ।

योऽमु निहन्ति पाप्मान न मरगामि कर्हिचिन् ॥ २८ ॥

नास्ति रक्षाप्रद कश्चिन्मर्गलोकस्य दुःखिणः ।

भयप्रस्तो हृदाचन्द्रादिप्रायस्सरोर्ण ॥ २९ ॥

रद्गभूमातुपाचिरय कारयामाम ताण्डयम् । उपरिग,पुरा मरगममाहवकि
उर्वश्याया अप्परमो गीतवादिशयोगत । नरनु पुरतन्तान्यमर्वापकेक्यो
न व्यधाम्यत तथित हृदाघाप्परमसदा । शचीं प्रतिमस्सससकामनमर
गृहीत्वा शरभार्गं स प्रसिवा स्तपुर प्रति ।

तत प्रवृत्ते युद्धमथरुत सुरे मर ॥ ३३ ॥

नेन देवगणा सर्वे ध्वस्ता पार्थिवतम ।

महप्रामे विविधै शस्त्रैश्चक्रादिभिर्गै ॥ ३४ ॥

मन्तापिता सुरा मरुक्षानीताग्नेकरा । मरुऽपेन जम्बीर भद्रा महप्राममूढं
यथासिंहो गजान्मयान्विजि य विधटेउनम् । तद्देकेनेदेगजिता सवपराइमुष
वाल्लोऽधिपो यथाप्रामे स्तेष्ठ ता पाइयेजान् ।

स्वेरमाकम्य गृह्णाति कोशशसामि घाऽमरु ॥ ३५ ॥

गत न पश्यत्यात्मान प्रजासन्तापनेन च । गृहीत्वाशरभाया सगतोवीदानयोत्त
इति श्रास्वान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रं संहिताया पञ्चत्रेऽधन्तीक्षणं
शूलभेदमाहात्म्ये शचीहरणरणनाम त्रयवास्त्रिःशोऽध्याय ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सत्रज्ञदेवैर्विष्णोरुपस्थानमनुस्वलोकगमनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तिर्वाणाश्च ततः सर्वे ब्रह्माणं शरणं गताः । गजैर्गिरिवराकारैर्हयैश्चैव गजोपमैः ॥
स्यन्दनैर्नगराकारैः सिंहशार्दूलरोजितैः । कच्छपैर्महिषैश्चान्यैर्मकरैश्च तथाऽपरे
ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाःशक्रपुरोगमाः । दृष्ट्वापन्नोद्भवं देवं साष्टाङ्गं प्रणताः सुराः

देवा ऊचुः

जयदेव जगद्वन्द्य जय संसृतिकारक ! । पद्मयोने सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताः ॥ ४॥
सोद्वेगं भाषितं श्रुत्वादेवानां प्राचिनात्मनाम् । मेघगंभीरयावाचाद्देवराजमुवाचह
किमत्राऽऽगमनं देवाः सर्वे गंघ्रिवि र्गता । केनापमानिताः सर्वेशीघ्रंमेकथ्यतांस्वयम्

देवा ऊचुः

अन्धकाख्यो महादैतवो ब्रह्मान्पद्मसम्भव ।

तेन देवगणाः सर्वे धनरत्नैर्वियोजिताः ॥ ७ ॥

हत्वा देवगणांस्तावदसिचक्रपरश्वधैः ।

गृहीत्वा शक्रभासां स दानवोऽपि गतो बलात् ॥ ८ ॥

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मालोकविनाग्रहः । चिन्तयामासराजेन्द्रवधार्थं दानवस्यह
अवध्यो दानवः पादः सर्वेसां वो दिवोकसाम् ।

स त्राता सर्वजगतां नान्यो विद्येत कुत्रचित् ॥ १० ॥

एवमुक्ताः सुराः सर्वे ब्रह्मणा तदनन्तरम् । ब्रह्माणं ते पुरस्कृत्य गतायत्र स केशवः

तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्माद्याश्चक्रपाणिनम् ॥ ११ ॥

देवा ऊचुः

जय त्वं देवदेवेश लक्ष्म्या वक्षस्यलाऽऽश्रितः । असुरक्षय देवेश वयं ते शरणं गताः

मन्यमानं सुरैः सर्वैर्भ्रातार्यैश्च जनादेन । मंत्रदृष्टमना भूत्वा सुरामहमुपास्य ॥
 श्रीवासुदेय उवाच

स्वागतं देवविप्राणां मुप्रमाताऽद्य शयंरौ ।

किं कार्यं शौच्यतां शिष्यं कस्य रथा दिव्योत्तमः ॥ १४ ॥

किं दुःखं कथं मन्तापं कुतो वा भयमागतम् ।

कथयन्तु महाभागाः कारणं यन्मनोगतम् ॥ १५ ॥

परामयं कृतो येतमोऽद्यशानुयमादयम् । एतमुक्तास्तु कृत्वा कथं गमासुरस्यत
 दशयन्त स्वकान्दंर्शाहंजमानाः सधोमुखाः ।

हृतराज्या ह्यन्धरेण कृता निस्नेजसः प्रभो ॥ १७ ॥

पिनेयं पुत्रं परिरक्ष देव जर्हीन्द्रशत्रु मह पुत्रपौत्रे ।

तथेति घोषं कमगमनेन सुरामुरैर्घंन्दितपादपत्र ॥ १८ ॥

शङ्कं घनं गदां घायं सगृह्य परमेधर । उत्थितो भोगपर्यट्टाक्षेघानां पुरतस्त
 श्रीवासुदेय उवाच

पाताले यदियाम् शयैनाकेयावद्विष्टिति । तद्विष्टियाम्पश्य पापयेन सन्नापिताः सुर
 स्वं स्यान्तं धान्तु गीर्वाणाः सन्तुष्टा भावित्तीजसाः ।

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रन्नाद्यास्ते सयाम्परा ॥ २१ ॥

स्वयानेस्तु हरिं नत्वा हृदि तुष्टा दिव ययुः ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतित्साहस्र्या महिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेखाखण्डे विष्णुप्रार्थनमनुगीर्वाणस्वर्गमन्तरर्जननाम

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अन्धकवधतद्वरप्रदानवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

कस्मिन्स्थानेऽवसद् देव! सोऽन्धको दैत्यपुङ्गवः ।

सर्वान्देवांश्च निर्जित्य कस्मिन्स्थाने समास्थितः ॥ १ ॥

श्रीमहेश उवाच

प्रविष्टो दानवोयत्रकथयामिनराधिप !। पाताललोकमाश्रित्यकन्याविध्वंसतेतुसः

तत्र स्थितं तं चिन्नाय घापमादाय केशवः ।

व्यसृजद् वाणमाग्नेयं दह्यतामिति चिन्तयन् ॥ ३ ॥

दह्यमानोऽग्निनासोऽपिवारुणाखंससन्दधे । वारुणाख्येण महताआग्नेयंशमितंतदा
ततोऽसौ चिन्तयामास केन वाणो विसर्जितः ।

कस्यैषा पौरुषी शक्तिः को यास्यति यमालयम् ॥ ५ ॥

ततोऽन्धको मृध्रेकृद्धोवाणमार्गेणनिर्गतः । सद्रूपवाणमार्गेणघापहस्तंजनार्दनम्

अन्धक उवाच

न शर्म लप्स्यसे ह्यद्य मया द्रष्टव्याऽभिवीक्षितः ।

न शक्नोषि तथा गन्तुं नागः शार्दूलदर्शनात् ॥ ७ ॥

आगच्छति यथा भक्ष्यं मार्जारस्य च मूपिकः ।

न शक्नोषि तथा यातुं संस्थितस्त्वं ममाऽग्रतः ॥ ८ ॥

अहं त्वांप्रेषयिष्यामियममार्गं सुदारुणे । अहमन्वेपयिष्यामिकिलयास्यामितेगृहम्
उपनीतोऽसि कालेन संग्रामे मम केशव । येत्वयानिर्जिताः पूर्वं दानवाअप्यनैकशः
न भवन्ति पुमांसस्तेस्त्रियस्ताश्चैव केशव । परं न शस्त्रसंग्रामं करिष्यामित्वया सह
घदतो दानवेन्द्रस्य न चुकोप स केशवः । अयुध्यमानं तं द्रष्टाचिन्तयामास

॥ अन्धक उवाच ।

न तत्र सिद्धयते कार्यं देवं प्रति महेश्वरम् ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच

पुत्र त्वं शिखरं गत्वा धूनयस्व बलेन च ॥ ३० ॥

विधूते तत्र दंदेशः कोपंकर्त्ता सुदारुणम् । कोपितःशङ्करोरौद्रं युद्धंदास्यतिदानव
विष्णुवाक्पादसौ पापो गतो यत्र महेश्वरः ।

कैलासनशिखरं प्राप्य धुनोति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥

धूनिते तत्र शिखरे कम्पितंभुवनत्रयम् । निपेतुः शिखराग्राणिकम्पमानान्यनेकशः
चत्वारः सागराः क्षिप्रमेकीभृता मरीपते । निपेतृल्लकापाताश्चपादपा अप्यनेकशः
उमया सहितो देवो विस्मयंपरगंगतः । गाढमालिङ्गघ्न गिरिजा देवं चघनमत्रचीत्
किमर्थं कम्पते शैलः किमर्थं कम्पतेधरा । किमर्थंकम्पते नागो मर्त्यःपातालमेवच
किं वा युगक्षयो देव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ३६ ॥

ईश्वर उवाच

कस्येया दुर्मतिर्जाता क्षिप्रः सर्पमुखे करः ।

ललाटे च कृतं घर्मं स यास्यति यमालयम् ॥ ३७ ॥

कैलासमाश्रितो येन सुम्नेऽहंयेनबोधितः । तं घधिग्येन सन्देहसमुखोवाभवेद्यदि
चिन्तयामास देवेशो ह्यन्धकोऽयं न संशयः ।

उपायं चिन्तयामास येनाऽसौ चध्यते क्षणात् ॥ ३८ ॥

आगताश्च सुराःसर्वे ब्रह्माद्याः वसुभिः सह । रथं देवमयं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम्
केचिद्देवाः स्थिताश्चक्रे केचित्तुण्डाग्रपार्श्वयोः ।

केचिन्नाभ्यां स्थिता देवाः केचिद्दुर्धुर्षु संस्थिताः ॥ ४१ ॥

धुरीषु निश्चलाः केचित्केचिद्यूपेषु संस्थिताः ।

केचित्तस्यन्दनसंस्तम्भाः केचित्तस्यन्दनवेष्टकाः ॥ ४२ ॥

आमलसर्वकेऽन्येऽपि अन्येऽपि कलशे स्थिताः ।

रिपोर्मण्डूरं दिवं ध्वजमालादिशोभितम् ॥ ४३ ॥

एयदेवमयं कृत्वा तमारूढो जगद्गुरुः । नियंशो दानवो यत्र कोपाविष्टो महेभ्रत
तिष्ठतिष्ठेत्युवाचाऽथ क प्रथाम्शसि दुर्बने ! । शरासनंकरे गृह्य शराधिक्षेप दानवे
दानवेऽधिष्ठिते युद्धे शरैश्चिच्छेद मायकान् ।

शरासारेण तत्रैव अन्धश्शुभादिनस्तदा ॥ ४४ ॥

न तत्र दृश्यते सूर्यो नाकाशन च चन्द्रमाः । आग्नेदमस्य व्यसृज्जहानघोऽपि शि धमप्रति
दह्यमाना शराद्गारैस्तत्रसु सयंदेवताः । रक्षरस्य महादेव दह्यमानास्तु दानवात्
ततो देवाधिदेवोऽसौ धारुणायकमथोऽजयत् ।

धारुणाऽख्रेण निमिगादाग्नेय नारितं तदा ॥ ४६ ॥

दानवेन तदामुक धायव्याख्य रणाजिरे । धारुणघगततात धायव्याख्यदिनाशितम्
देवो व्यसजंघन्मापं कोधाविष्टेनचेतसा । भारुणं नाशितवाणे मर्षैस्तत्रनसशय
दानवेन ततोमुक्त गरुडाख्य लीलया । गरुडाख्य च तद्दृष्ट्वा साप्येनैव व्यदृश्यत
ततो देवाधिदेवशतारसिंहं विसर्जितम् । नारसिंहाख्यराजेनगरुडाख्य प्रशामितम्
अख्यमख्येण शाम्येत न बाध्येत परस्परम् । महद्यद्भममृत्तात सुरामुरभयदूरम् ॥
चकनालाकनाराखेस्त्रोमरैःखड्गमुद्गुरैः । अस्तदन्तीस्तयाभह्नि कर्णिकारैश्चशोभनै
एयं न शक्यते हन्तु दानवो विविधायुषी ।

तदा ज्वालाकरालाश्च खड्गनाराघतोमरा ॥ ५६ ॥

वृषाद्वेन विमुक्तास्तुसमरे दानवमप्रति । न सस्यृशान्तिसास्त्राणिगाश्रेणीडपधूरिवा
आयुधानि तनस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ।
कर करेण मगृह्य प्रहरन्तौ स्वमुष्टिमि ॥
रणप्रयोगैर्युध्यन्तौ युयुधाते शिवान्धकी ॥ ५८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अन्ध्रक प्रति देवेशधित्तयामास त्रिप्रहम् ।

हनिष्यामि न सन्देहो दुष्टात्मानं न सशय ॥ ५९ ॥

स शिवेन यदा क्षिप्तः पतितः पृथिवीतले । ऊर्ध्वबाहुरधोवक्षत्रो दानचोत्पसत्तम
क्रोधाघिष्टेनदेवेशःसंग्रामेदेवशनुणा । कक्षयोःकुहरेक्षिप्त्वावन्धेनाऽऽकम्पपीडितः

निस्पन्दश्चाऽभवद्देवो मूर्च्छायुक्तो महेश्वरः ।

मूर्च्छापन्नं तु तं घ्रात्वा चिन्तयामास दानवः ॥ ६२ ॥

हाहाकष्टं क्वं मेऽद्यदुष्कृतं पापकर्तव्यम् । किंकरोमि कथं कर्म कस्मिन्स्थाने तु मोक्षये
गृहीत्वा देवमुत्तङ्गे गतः कैलासपर्वतम् । शय्यायां शङ्करं न्यस्य निर्ययौ दैत्यराट् ततः
शय्यायां पतितो देवः प्रपेदे वेदनां ततः । तावद्दर्शं चात्मानं स्वकीयमव न स्थितम्
पराभवः क्वनो मह्यं कथं तेन दुरात्मना । क्रोधावेगसमाविष्टो निर्ययौ दानवम् प्रति
आयसीं लगुडौ गृह्य प्रभुर्भारसहस्रजाम् ।

दानवं च ततो दृष्ट्वा प्राक्षिपत्तस्य मूर्द्धनि ॥ ६७ ॥

खड्गेन ताडयामास दानवः प्रहसत्रणे । देवेनाथस्मृतं घाऽस्रं कौच्छेराख्यं महाहवे
दीप्यमानं समुत्सृज्य हृदये ताडितः क्षणात् । ततः स ताडिस्तेन रुधिरोद्गारमुद्गमन्
पतितोऽधोमुखो भूत्वा ततः शूलेन भेदितः । पुनश्च देवदेवेन शूलेन द्विदलीकृतः ॥

शूलाग्रोऽसौ स्थितः पापो भ्रान्तचांश्चक्रवत्तदा ।

ये ये भूम्यां पतन्ति स्म तत्कायाद्रक्तचिन्द्रवः ॥ ७१ ॥

ते ते सर्वे समुत्सृज्युर्दानवाः शस्त्रपाणयः । व्याकुलस्तु ततो देवो दानवेन तरस्विना
देवेनाऽथ स्मृता दुर्गा घामुण्डा भीषणा नना ।

आयाता भीषणाकारा नानायुधविराजिता ॥ ७३ ॥

महादंष्ट्रा महाकाया पिङ्गाक्षी लम्बकर्णिका ।

आदेशो दीयतां देव! को यास्यति यमालयम् ॥ ७४ ॥

ईश्वर उवाच

पिवास्य रुधिरं भद्रे यथेष्टं दानवस्य च । निपतद् रुधिरं भूमौ दुर्गे गृहीष्व मा धिरम्
निहन्मि दानववावत्साहाय्यं कुलसुन्दरि । पशुमुक्ता तु सा दुर्गा पपीचरुधिरंततः
निहता दानवाः सर्वे देवेशेन सहस्रशः । अन्यकोऽपि चतान्द्रा दानवाः न विगच्छन्

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलभेदोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अन्ध्रकं तु निहत्याथ देवदेवो महेश्वरः । उमया सहितो रुद्रः कैलासमगमन्नगम् ॥
आगताश्चततो देवा ब्रह्माद्याश्चसवासवाः । हृष्टास्तुष्टाश्चते सर्वे प्रणेमुः पार्वतीपतिम्

ईश्वर उवाच

उपाविशन्तु ते सर्वे ये केचन समागताः । निहतो दानवो ह्येव गीर्वाणार्थं पितामह
रक्तेन तस्य मे शूलं निर्मलं नैव जायते । शुभव्रततपोजप्यरतो ब्रह्मन्मया हतः ॥

कर्तुमिच्छाम्यहं सम्यक्तीर्थयात्रां चतुर्मुख ॥

आगच्छन्तु मया सार्द्धं ये यूयमिह सङ्गताः ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा देवदेशः प्रभासंप्रतिनिर्ययौ । प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गासागरमध्यतः
अवगाह्यापिसर्वाणि नैर्मल्यनाभवन्मृषुः । नर्मदायांततो गत्वा देवो देवैः समन्वितः
उत्तरं दक्षिणं कूलेमवागाहत्प्रियव्रतः । गतस्तु दक्षिणे कूले पर्वते भृगुसञ्चितम् ॥

तत्र स्थित्वा महादेवो देवैः सह महीपते ॥

भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा चिरं श्रान्तो निर्विण्णो निपसाद् ह ॥ ६ ॥

मनोहारि यतः स्थानं सर्वेषां वै दिवोकसाम् ।

तीर्थं विशिष्टं तन्मत्त्वा स्थितो देवो महेश्वरः ॥ १० ॥

गिरिं चिव्याथ शूलेन भिन्नं तेन रसांतलम् ।

निर्मलं चाऽभवच्छूलं न लेपो दृश्यते क्वचित् ॥ ११ ॥

देवैराह्वानिता तत्र महापुण्या च भारती । पर्वतान्निःसृतां तत्र महापुण्या सरस्वती
द्वितीयः सङ्गमस्तत्र यथा वेण्यांसितांसितः । तत्र ब्रह्मास्वयं देवो ब्रह्मेशं लिङ्गमुत्तमम्
संस्थापयामास पुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् । तस्य याग्ये दिशो भागे स्वयं देवो जनार्दनः

तिष्ठतेधमदातप्रविष्णुपादाप्रमस्थिता । अम्मसोनभवे मार्गां कुण्डमध्यस्थितस्य च
 शूलाग्रैण कृता रक्षा ततस्तोय घट्टेनृप ॥ तत्तोर्यं च गत नत्र यत्र शिवा महानदी
 जललिङ्ग महापुण्य धरनीर्यं नृपोत्तम ॥

शूलभेदे च दवेश स्नान कुर्याद्यथाविधि ॥ १७ ॥

आत्मानं मन्यते शुद्ध न किञ्चित्कल्मषरुतम् । तस्यैवोत्तरकाष्ठाया देवदेवो जगद्गुरु
 आत्मना देवदवेश शूलपाणि प्रतिष्ठित ।

सद्यतीर्थेषु तत्तोर्यं सवदेवमय परम् ॥ १६ ॥

सद्यपापहर पुण्य सद्यु सद्यमुत्तमम् । तत्र तीर्थं प्रतिष्ठाप्य देवदेव जगद्गुरु ॥
 रक्षापालास्ततो मुक्त्वा शत धाष्टिनायकान् ।

क्षेत्रपाठा शत साष्ट तदक्षन्ति प्रयत्नत ॥ २१ ॥

विघ्नास्तस्योपजायन्ते यस्त्र स्यातुमिच्छति ।

केचित्कुटुम्भघिन्तासु व्यग्रा केचित्कृरीषु च ॥ २२ ॥

केचित्सभाप्रकुचन्तिकेचिद्दुद्रुष्याजनेरता । परोक्षमादकरन्तिकेऽपि हिंसारता सदा
 परदारता केचित्केचिद्बृत्तिविहिंसका । अन्ये केचिद्बन्धेव कथतीर्थेषु गम्यते

भुधया पीड्यते भार्या पुत्रभृत्याद्यस्तदा । मोहजालेषु पोज्यते एवं देवगणैतरा
 पापाघाराश्चयेमर्त्या स्नान तथा न जायत । सरक्षन्ति घतनीर्यं देवभृत्यगणा सदा

धन्या पुण्याश्चयेमर्त्यास्ते वा स्नानप्रजायते । सरस्वत्याभोगवत्याश्चैव नद्याविशेषत
 अथ तु सङ्गम पुण्यो यथा वेष्ट्या मितसित ।

दृष्ट्वा तीर्थं तु ते सर्वे गीर्वाणा हृष्टचेतसः ॥ २८ ॥

देवस्य सन्निधौ भूत्वा वणयामासु रक्तमम् । इदं तीर्थं तु दवेश गयातीर्थेन ते समम्
 गुह्याद्गुह्यतमतीर्थं न भूतं न भविष्यति । शूलपाणि समभ्यर्च्य इन्द्रादीरप्सरोगणै

यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्दिक्पालैर्गोकपैरपि । नृत्यगीतैस्तथा स्तोत्रैः सर्वैश्चापि सुरासुरै
 पूज्यमानो गणैः सर्वैः सिद्धैर्नागैश्चैव । इवेन भेदितं तत्र शूलपाणेन नराधिप ॥

त्रिधा यत्र श्यतेऽद्यापि ह्यवच्छ सुरपूरित ।

कुण्डत्रयं नख्याग्रं महत्कलकलान्वितम् ॥ ३३ ॥

सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् । तत्र तीर्थे तु यः स्नाति उपवासपरायणः ॥

दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि मुच्यते चाब्दिकादघात ।

ये पुनर्विधिवत्स्नान्ति मन्त्रैः पञ्चभिरेव च ॥ ३५ ॥

वेदोक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यघटैः शुभैः । अक्षरैर्दशभिश्चैव पद्भिर्वात्रिभिरेव वा
पृथग्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थे कार्यं नराधिप !

ब्रह्मक्षत्रविशां वाऽपि स्त्रीशूद्राणां तथैव च ॥ ३७ ॥

पुरुषाणां त्रयीं ध्यात्वा स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।

दशाक्षरेण मन्त्रेण ये पियन्ति जलं नराः ॥ ३८ ॥

ते गच्छन्ति परलोकं यत्र देवोमहेश्वरः । केदारो च यथा पीतं रुद्रकुण्डे तथैव च ॥

पञ्चरेफसमायुक्तं क्षकारं सुरपूजितम् । उकारेण समायुक्तमेतद्वेद्यं प्रकीर्तितम् ॥

यस्तत्र कुरुते स्नानं विधियुक्तो जितेन्द्रियः । तिलमिश्रेणतोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः

कुलानां तारयेद्द्विशं दशपूर्वाद्दशापरान् । गयादिपञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं कुरुते नरः

स तत्र फलमाप्नोति शूलभेदे न संशयः ।

यस्तत्र विधिना युक्तो दद्याद्दानानि भक्तितः ॥ ४३ ॥

तदक्षयं फलं तत्र सुकृतं दुष्कृतं तथा । गयाशिरो यथा पुण्यं पितृकार्येषु सर्वदा

शूलभेदं तथा पुण्यं स्नानादानादितर्पणैः ।

भक्त्या ददाति यस्तत्र काञ्चनं गां महीं तिलान् ॥ ४५ ॥

आसनोपानहौं शय्यां वराग्वान्क्षत्रियस्तथा ।

घंछयुग्मं च धान्यं च गृहं पूर्णं प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥

स योक्त्रं लाङ्गलं दद्यात्कृष्टां चैव वसुन्धराम् ।

दानान्येतानि यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपास्ने ॥ ४७ ॥

श्रोत्रिये कुलसम्पन्ने शुचिष्मति जितेन्द्रिये ।

श्रुताध्ययनसम्पन्ने दम्पतीने विद्यावित्ते ।

कूनखीवृगली स्तेयी वाद्दुर्घुष्यःकुण्डगोलकी । महादात्तरतोयश्च यश्चात्महनतेरतः

भृतकाध्यापकः क्लीवः कन्यमदूप्यमिशस्तकः ।

पते विप्राः सदा त्याज्याः परिभाव्य प्रयत्नतः ॥ १० ॥

प्रतिग्रहं गृहीत्वा तु वाणिज्यं यस्तु कारयेत् ।

तस्य दानं न दातव्यं त्रथा भवति तस्य तत् ॥ ११ ॥

श्रुताऽध्यनसम्पन्ना ये द्विजावृत्तनत्पराः । तेषां यद्दीयते दानं सर्वमक्षयताम्रजेत्
द्विदानभरभूपालमासमृद्धान्कदाचन । व्याधितस्योपधंपथ्यं नीरुजस्यकिमोपधैः

उत्तानपाद् उवाच

कीदृशोऽथ विधिस्तत्र तीर्थश्राद्धस्य का क्रिया ।

दानं च दीयते यद्वत्तन्ममाख्याहि शङ्कर ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

श्राद्धं कृत्वा गृहे भक्त्या शुचिश्चाऽपि जितेन्द्रियः ।

गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य भोज्य मीमान्तके ततः ॥ १५ ॥

राग्यतः प्रव्रजेतावद्यावत्सीमांनलङ्घयेत् । शूठमेदंततोगत्वान्नानं कुर्याद्यथाविधि
पञ्चस्थानेषु च श्राद्धं हव्यकव्यादिभिः क्रमात् ।

पिण्डदानञ्च यः कुर्यात्पायसैर्मधुसर्पिणा ॥ १७ ॥

पितरस्तस्य तृप्यन्ति द्वादशाब्दानिपञ्च च । अक्षतैर्बदरेचिल्वैरिन्दुदैर्मधुसर्पिणा ॥

सोऽपि तत्फलाप्राप्तिं तीर्थेऽस्मिन्नाऽत्र संशयः ।

उपानहौ च यो दद्याद्ग्राहणेभ्यः प्रयत्नतः ॥ १६ ॥

सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति ह्यारुढो न संशयः ।

शय्यामश्वं च यो दद्याच्छत्रिकां वा विशेषतः ॥ २० ॥

गच्छेद्विमानमारुढः सोऽप्सररोवृन्दवेष्टितः । उत्तमं यो गृहं दद्यात्सवत्सां वरुसंप्लुताम्
स्वेच्छयामेवसेल्लोकेकाञ्चनेभवनेहिसः । तिलधेनुञ्चयो दद्यात्सवत्सां वरुसंप्लुताम्
नाकपृष्ठेवसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् । गृहे वा यदि वाऽरण्येतीर्थवर्त्मनिचानृप

तोपमत्रं च यो दद्याद्यमलोकं न भक्षणे । सर्वदानानि दीयन्ते तेषां पद्मवाप्य
उदर्कं चाश्रदानं च दद्यादभयमेव च । अश्रदानान्परं दानं न भूतं न भविष्यति
कन्यादानं तु यं कुर्यादु धृतं वा धं समुत्प्रेते ।

तस्य धाम्नी भवेत्तत्र यत्राऽहमिति नान्यथा ॥ २१ ॥

उत्तानपाद् उवाच

कन्यादानं कथं स्वामिन्कर्तव्यं धार्मिकं सदा ।

परिग्रहो यथा योग्यं कन्योद्गाहस्तथैव च ॥ २१ ॥

अन्यपृच्छामि दवेशं कस्य कन्या न दीयते ।

दातव्यं कुत्र तद्वैशं कस्यै दत्तमथाऽक्षयम् ॥ २८ ॥

उत्तमं मध्यमं चाऽपि कनीयं स्वात्कथं विमो ।

राजम् ताम्रं चाऽपि निश्रेयसमथाऽपि वा ॥ २९ ॥

ईश्वर उवाच

सर्वेषामेव दानाता कन्यादानं विशिष्यते ।

यो दद्यात्परया भक्त्याऽभिगम्य ततया निजाम् ॥ ३० ॥

कुलीनायसुरूपाय गुणज्ञायमर्नारिणे । सुमन्त्रे सुमुदिते च दद्यात्कन्यामलङ्कृताम्

अभ्याभ्रागाद्यं वासासि योऽत्र दद्यात्कन्याकित् ।

तस्य धाम्नी भवेत्तत्र पदं यत्र निरामयम् ॥ ३२ ॥

येनाऽप्रदुहितास्तां प्राणेष्वोऽपि गरीयसी । तेनमर्वाभिदत्तं त्रैलोक्येऽसथराधरम्

यं कन्याधं ततो तत्र या मिश्रणे र्धं तद्वनम् ।

सभनेत्वमंधण्डालं काष्ठकीले भवेन्मृतं ॥ ३४ ॥

गृहेऽपि तस्य योऽर्थावाञ्छित्वा लोहपात्कथञ्चन ।

चान्द्रायणेन शुद्धं च ततश्छेपेण वा पुनः ॥ ३५ ॥

उत्तानपाद् उवाच

चित्तं न विद्यते यस्य कन्यैवास्ति च यदुग्रह । कथं चोद्गाहनस्य नयाच्छ्राकुलीयदि

ईश्वर उवाच

अचित्तेनैव कर्त्तव्यं कन्योद्ग्रहनकं नृप !। कन्यानाम समुच्चार्य न दोषाय कदाचन॥

अभिगम्योत्तमं दानं यच्च दानमयाचितम् ।

भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥ ३८ ॥

अभिगम्योत्तमं दानं स्मृतमाह्वय मध्यमम् ।

याच्यमानं कनीयः स्याद्देहिदेहीति घाथमम् ॥ ३९ ॥

यथैवाऽश्माऽश्मना बद्धो निक्षिप्तो धारिमध्यतः ।

द्वाचेर्तो निधनं यातस्तद्बद्धमपात्रके ॥ ४० ॥

समर्थे ततो दानं न प्रदेयं कदाचन । दातारं नयतेऽधस्तादात्मानञ्च विशेषतः ॥

समर्थस्तारयेद्दृष्टौ तु काष्ठं शुष्कं यथा जले ।

यथा नौश्च तथा विद्वान्प्रापयेदपरं तटम् ॥ ४१ ॥

आहिताग्निश्च गृह्णाति यः शूद्राणां प्रतिग्रहम् ।

इह जन्मनि शूद्रोऽसौ मृतः श्वा स्रोपजायते ॥ ४२ ॥

वृथा क्लेशश्चजायेत ब्राह्मणे ह्यग्निहोत्रिणि । असत्प्रतिग्रहं कुर्वन्गुप्तनीचस्यगर्हितम्

अभोज्यः स भवेन्मर्त्यो दह्यते कारियाऽग्निना ।

कटकारो भवेत्पश्चात्सप्तजन्म न संशयः ३ ।

लज्जादाक्षिण्यलोभाच्च यद्दानं स्रोपरोधजम् ।

भृत्येभ्यश्च तु यद्दानं तद्वृथा निष्फलं भवेत् ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिब्राह्मण्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये पात्रापात्रपरीक्षादानादिनिर्णयवर्णनं

नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दानधर्मप्रशसनवर्णनम्

उत्तानपाद् उवाच

वाग्ने तत्त्रियनेकस्मिञ्छाद् दानं तयेध्वर ।

याथा तत्र प्रकतव्या तिर्यो यस्यां षदाऽऽशु तन् ॥ १ ॥

ध्वर उवाच

पितृनीधंयथापुण्यं सवकामिकमुत्तमम् । इदं तीपैतथापुण्यं ज्ञानज्ञानादिनर्पणै
विशेषेण तु कुर्वीत धाद् सवयुगादिषु । मन्वन्तरादयोवत्स धूमन्तां च चतुर्दश
अभ्ययुक्दुर्जनवर्मा द्वादशीकार्तिकस्य च । तृतीया चैत्रमासस्यतयाभाद्रपदस्य च
आषाढस्यैव दशमी भाद्रस्यैव तु सप्तमी ।

धावणस्याऽऽर्मी वृष्णा तथाऽऽश्विनस्य पूर्णिमा ॥ ५ ॥

फाल्गुनस्य त्वमाषास्या पीपस्यैकादशी सिता ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ ६ ॥

मन्वन्तरादयश्चेत अनन्तफलदां स्मृता । अयनेषोत्तरे राजन्दक्षिणे धाद्दमाधरेत्
कार्तिकी च तथा मार्घी वैशाखस्य तृतीयिका ।

षीणमासी च चैत्रस्य ज्येष्ठस्य च विशेषत ॥ ८ ॥

अष्टकामुघसकान्तीं व्यतीपाते तयैव च । धाद्दकाला इमेसर्वेदत्तमेव्यक्षयस्मृतम्
मधुमासे सिनेपथ एकादश्यामुपोषित । निशि जागरण कुर्याद्विष्णुपादसमीपत
धूपदीपादिर्नैवेद्यं अङ्गमालागुरुचन्दनै ।

अथा बुचन्ति ये विष्णु पठेयुःप्राक्तनीं कथाम् ॥ ११ ॥

ऋग्यजु साममन्त्रोक्तं सूक्तं जपति यो द्विज ।

सवपापविनिमुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥

प्रातः श्राद्धं प्रकुर्वीत द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः ।

दानं दद्याद्यथाशक्ति गोहिरण्याम्बरादिकम् ॥ १३ ॥

पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् । श्राद्धदस्तुव्रजेत्तत्रयत्रदेवो जनार्दनः

त्रयोदश्यां ततो गच्छेद् गुहावासिनि लिङ्गके ।

दृष्ट्वा मार्कण्डेमीशानं मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १५ ॥

उत्तानपाद उवाच

गुहामध्ये महादेव लिङ्गं परमशोभितम् । येन प्रतिष्ठितं देव! तन्ममाख्यातुमर्हसि

ईश्वर उवाच

त्रिषु लोकेषु विख्यातो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ।

दिव्यं वर्षं सहस्रं स तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १७ ॥

गुहामध्यं प्रविष्टोऽसौ योगाभ्यासमुपाश्रितः ।

लिङ्गं तुःस्थापितं तेन मार्कण्डेश्वरसञ्चितम् ॥ १८ ॥

तत्र स्नात्वा च यो भक्त्या सोपवासो जितेन्द्रियः ।

तत्र जागरणं कुर्वन्दद्याद्वीपं प्रयत्नतः ॥ १९ ॥

देवस्यस्नपनंकुर्यादमृतैःपञ्चभिस्तथा । यथाशक्त्यासमालम्ब्य पूजांकुर्याद्यथाविधि

स्वशास्त्रोत्पन्नमन्त्रैश्च जपंकुर्युर्द्विजातयः । सावित्र्यष्टसहस्रन्तुशताष्टकमथापि च

एतत्कृत्वा नृपश्रेष्ठ! जन्मनः फलमाप्नुयान् ।

चतुर्दश्यां तु वै स्नात्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ २२ ॥

पात्रं परीक्ष्य दातव्यमात्ननः श्रेयश्चञ्चता ।

पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दान्प्रसंशयम् ॥ २३ ॥

दाता स गच्छते तत्र यत्र भोगाः सनातनाः ।

गुहामध्ये प्रविष्टस्तु लोदयेच्चैव शक्तितः ॥ २४ ॥

नीले गिरौ हि यत्पुण्यं तत्समस्तं लभन्ति ते ।

शूलभेदे तु यः कुर्याच्छ्राद्धं पर्वणि पर्वणि ॥ २५ ॥

विशेषाच्चैत्रमासान्ते तस्य पुण्यफलं शृणु । केदारैर्धैवयत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे
सितासिते तु यत्पुण्यमन्यतीर्थे विशेषतः । अनुदे विद्यते पुण्यं पुण्यं घामरपथं
गयादिस्वतीधाना फलमाप्नोति मानवः । विधिमन्त्रसमायुक्तस्तपयेत्पितृदेवता

कुलानां तार्येद्विंशं दशपूर्वाद्दशपरान् ।

दक्षिणस्या ततो मूर्त्तीं शुचिभूत्वा समाहित ॥ २६ ॥

न्यासं कृत्वा तु पूर्वोक्तं प्रदद्यादण्डपुष्पिकाम् ।

शास्त्रोक्तैरष्टभिः पुष्पैर्मानसैः शृणु तद्यथा ॥ ३० ॥

चारिज्जसौम्यमाग्नेयं घायन्व्यं पार्थिवं पुनः ।

घानस्पत्यं भवेत्पृष्ठं प्राजापत्यं तु सप्तमम् ॥ ३१ ॥

अष्टमशिवपुष्पं स्यादेव शृणु विनिर्णयम् । चारिज्जसलिलं ज्ञेयं सौम्यमधुगुणपयं
आग्नेयं धूपदीपाद्यं घायन्व्यं चन्दनादिकम् ।

पार्थिवं चन्दमूलाद्यं घानस्पत्यं पञ्चात्मकम् ॥ ३३ ॥

प्राजापत्यं तु पाटाद्यं शिवपुष्पं तु वासना । अर्हिसाप्रथमपुष्पपुष्पमिन्द्रियनिग्रहं
तृतीयं तु दयापुष्पं क्षमापुष्पं चतुर्थकम् । ध्यानपुष्पतपःपुष्पं ज्ञानपुष्पं तु सप्तमम्
सत्यञ्चैवाष्टमं पुष्पमेभिरनुष्पन्ति देवताः ।

भक्त्या तपस्वित् पूज्यां ज्ञानिनश्च नराधिप ॥ ३६ ॥

छत्रमावरणं दद्याद्दुपानद्यगलं तथा । तेन पूजितमात्रेण पूजिता पुरुषास्त्रयः ॥
स्वगलोकैस्तेत्ताद्यथावदाभूतमप्लवम् । शूलपाणेश्च भक्त्यार्चयन्पुष्पकुचन्तियेनरा
पञ्चामूर्तेः पञ्चगव्यैश्चक्षकदमकुड्मैः । समाग्नेन दवेशं श्रीसण्डागुम्बन्दनैः ॥ ३६ ॥
नानाविधैश्च ये पुष्पैरर्घ्यां कुचन्ति शूलिनः । तिसृज्जागरणं कृत्युर्द्वैपदानप्रयत्नत
धूर्त्तैश्चकृदशात्पत्स्पीराणिकीं कथाम् ।

तत्र स्थाने स्थिता भक्त्या जपं कुचन्ति ये नराः ॥ ४१ ॥

धीस्तूत्तर्पीर्यं सत्पाचमानं युगाकपिम् । वेदोक्तैश्चैवमन्त्रैश्च रीद्रीवायदुरुषिणीम्
आत्मणाम् राजगोदक्यापजयित्वाप्रणम्य च । नानाविधमहाभागं शिवलोकमहीयते

अग्निमीत्यादिजाप्यानि ऋग्वेदी जपते तु यः ।

रुद्रान्पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं च शुक्रियम् ॥ ४४ ॥

इपेत्वादिकमन्त्रौघं ज्योतिर्ब्राह्मणमेव च ।

गायत्र्यं वै मधु चैव मण्डलब्राह्मणानि च ॥ ४५ ॥

एताञ्जप्यांस्तु यो भक्त्या यजुर्वेदीजपेद्यदि । देवव्रतं वामदेव्यं पुरुषभमेव च ॥

बृहद्रथन्तरञ्चैव यो जपेद्भक्तितत्परः । स प्रयाति नरः स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥

पादशौचं तथाऽभ्यङ्गं कुरुते योऽत्र भक्तितः ।

गोदाने चैव यत्पुण्यं लभते नाऽत्र संशयः ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रमधुनापायसेनच । एकस्मिन्भोजितेचिप्रेकोटिर्भवतिभोजिता

सुवर्णं रजतं चखं दद्याद्भक्त्या द्विजोत्तमे ।

तर्पितास्तेन देवाः स्युर्मनुष्याः पितरस्तथा ॥ ५० ॥

चन्द्रसूर्यग्रहे भक्त्या स्नानं कुर्वन्ति ये नराः । देवार्चनञ्चयेक्युर्जपंहोमं विशेषतः

दद्याद्दानं यथाशक्ति ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ५१ ॥

अश्वं रथं गजं यानं तुलापुरुषमेव च । शकटं यः प्रदद्याद्वा सप्तधान्यप्रपूरितम् ॥ ५२

सयोक्त्रं लाङ्गलं दद्याद्युवानौ तु धुरन्धरौ ।

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् ॥ ५३ ॥

अपात्रे विदुषा किञ्चिन्न देयं भूतिमिच्छता ।

यतोऽसौ सर्वभूतानि दधाति धरणी किल ॥ ५४ ॥

ततो विप्राय सा देया सर्वसस्यौघमालिनी ।

अथाऽन्यच्छृणु राजेन्द्र! गोदानस्य तु यत्फलम् ॥ ५५ ॥

यावद्भूतस्य पादौर्ध्वौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।

तावद्गौ पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ ५६ ॥

येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणे तां समर्पयेत् । पृथ्वी-दत्ता भवेत्तेन, सशैलवत्कानना ॥

तारयेन्नियतं दत्ता कुलगनामेकविंशतिम् ।

रौप्यखुरीं काल्यदोहा सचखा घ पयस्विनीम् ॥ ५८ ॥

ये प्रयच्छन्ति कृतिनो भस्ते सूर्ये निशाकरे ।

तेषा सद्ख्या न जानामि पुण्यस्याब्दशतैरपि ॥ ५९ ॥

सवस्याऽपि हि दानस्य सद्ख्याऽस्तीह नराधिप ।

सन्द्रसूर्योपरागे च दानसद्ख्या न विद्यते ॥ ६० ॥

यत्रगौर्दृश्यतेराजन्तमघंतीर्धानितत्रहि । तत्रपर्वविजानीयात्राऽत्रकार्याविधारणा

पुन स्मृत्वा तु तत्तीर्थं य कुर्याद्गमन नर ।

अथवा म्रियते योऽत्र रद्रस्याऽनुधरो भवेत् ॥ ६२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे ण्काशीतिलाहभूया सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे शूलभेदे दानधर्मप्रशसावर्णननामैकपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऋक्षशृङ्गचरित्रेदीर्घतपोमुन्याख्यानवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अन्यदाख्यातव वक्ष्ये पुरावृत्त नराधिप । सकुटुम्बोगतस्वर्गं मुनिर्ब्रह्महातपाः

उत्तानपाद उवाच

कथं नाकगतो विप्र सकुटुम्बो महावृषि । कौतुक परम देव कथयस्वमम प्रभो

ईश्वर उवाच

चित्रसेनइति ख्यात काशीराज पुराऽभवत् ।

शूरो दाता सुधर्मात्मा सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥

सा पुरी जन्सद्दीर्घा नानारत्नोपशोभिता ।

राजराजसिद्धि विधाया नानाविरमणधिता ॥ ४ ॥

शरच्चन्द्रप्रतीकाशा विद्वज्जनविभूषिता । इन्द्रयष्टिसमाकीर्णा गोपगोकुलसम्भृता
 बहुध्वजसमाकीर्णा वेदध्वनिनिनादिता । घणिग्जनैर्वहुर्विधैः क्रयचिक्रयशालिनी
 यन्त्राऽऽदानैः प्रतोलीभिरुच्चैश्चान्यैः सुशोभिता ।
 देवतायतनैर्दिव्यैराश्रमैर्गहनैर्युता ॥ ७ ॥

नानापुष्पफलै रभ्या कदलीखण्डमण्डिता । पनसैर्वकुलैस्तालैरशोकैराप्रकैस्तथा
 राजवृक्षकपित्थैश्च दाडिमैरुपशोभिता । वेदाध्ययननिर्घोषैः पवित्रीकृतमङ्गला ॥
 तस्याउत्तरदिग्भागेआश्रमोऽभूत्सुशोभनः । तन्मन्दारवनं नाम त्रिपुलोकेषुविश्रुतम्
 बहुमन्दारसंयुक्तं तेन मन्दारकं चिद्रुः । चिप्रो दीर्घतपानाम सर्वदा तत्र तिष्ठति ॥
 तपस्तपति सोऽत्यर्थं तेन दीर्घतपाः स्मृतः ।

स तिष्ठति सपत्नीकः ससुतः सस्नुपः तथा ॥ १२ ॥

शुश्रूषन्ति सदातस्यपुत्राः पञ्च प्रयत्नतः । तस्यपुत्रःकनीयांस्तुऋक्षऋङ्गोमहातपाः
 वेदाऽध्ययनसम्पन्नो ब्रह्मचारी गुणान्वितः ।

योगाभ्यासरतो नित्यं कन्दमूलफलाशनः ॥ १४ ॥

तिष्ठतेमृगरूपेण मृगयूथघरस्तदा । दिनान्ते च दिनान्ते च मातापित्रोः समीपगः
 अभिवादयते नित्यं भक्तिमान्मुनिपुत्रकः । पुनर्गच्छति तत्रैव कानने गिरिगह्वरे ॥
 क्रीडन्वालमृगैः साद्धं प्रत्यहं स मुनेः सुतः । कदाचिद्वैवयोगेनऋक्षऋङ्गो ममारसः
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये ऋक्षऋङ्गचरित्रे दीर्घतपोमुन्याख्यानवर्णनं

नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथावत्सहितः सर्वैः सराजाराजपुत्रकैः । वृन्दास्फोटोऽभवत्तेषां शीघ्रं जग्मुर्दिशोदश
एकमार्गगतो राजा चित्रसेनो महीपतिः । एकाकी सगतस्तत्र यत्र यत्र च ते मृगाः

प्रविष्टोऽसौ ततो दुर्गं काननं गिरिगह्वरम् ।

बह्वीगुल्मसमाकीर्णं स्थितो यत्र न लक्ष्यते ॥ १५ ॥

अदृश्यांस्तु मृगान्मत्त्वा दिशो राजा व्यलोकयत् ।

कां दिशं नु गमिष्यामि क मे सैन्यसमागमः ॥ १६ ॥

एवंकष्टं गतो राजा चित्रसेनो नराधिपः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य विश्राममकरोन्नृपः
शुत्तृपात्तो भ्रमन्दुर्गे कानने गिरिगह्वरे । ततोऽपश्यत्सरो दिव्यं पद्मिनीखण्डमण्डितम्
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।

ततो दृष्ट्वा स राजेन्द्रः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ १६ ॥

कमलानि गृहीत्वा तु ततः स्नानं समाचरन् । तर्पयित्वा पितृन् देवान्मनुष्यांश्च यथाविधि
आच्छाद्य शतपत्रैश्च पूजयामास शङ्करम् । ययौ पानीयममलं यथावत्स समाहितः
उत्तीर्य सलिलात्तीरे दृष्ट्वा वृक्षं समीपगम् । उत्तरीयमधः कृत्वोपविष्टो धरणीतले

चिन्तयन्नुपविष्टोऽसौ किमद्य प्रकरोम्यहम् ।

तत्राऽऽसीनो ददर्शाऽथ वनोद्देशे मृगान्वहन् ॥ २३ ॥

केचित्पूर्वमुखास्तत्र चाऽपरे दक्षिणामुखाः ।

धारुण्यभिमुखाः केचित्केचित्कोवेरद्विड्मुखाः ॥ २४ ॥

केचिन्निद्रापराः केचिदूर्ध्वकर्णाः स्थिताः परे ।

मृगमध्ये स्थितो योगी ऋक्षशृङ्गो महातपाः ॥ २५ ॥

मृगान्दृष्ट्वा ततो राजा आहारार्थमचिन्तयत् । हत्वा तेषु मृगं कञ्चिद्विक्षयामियदृच्छया
स्वस्थावस्थो भविष्यामि मृगमांसस्य भक्षणत् ।

काशीं प्रति गमिष्यामि मार्गमन्विष्य यत्नतः ॥ २७ ॥

विचिन्त्येवं ततो राजा वृक्षमूलमुपाश्रितः । चापंगृह्यकराग्रेण स शरं सन्दधे ततः
विचिक्षेप शरं तत्र यत्र ते बहवो मृगाः । तेषामध्ये स वैचिद्ध ऋक्षशृङ्गो महातपाः

जम्बुखस्तास्तु ते सर्व शत्रु वृत्वा घर्षीकस ।

स ऋष्टि पतितस्तत्र वृष्णकृष्णति घात्रवीत् ॥ ३० ॥

हाहा कष्ट वृत तेन येनाहघातिनोऽधुना । कस्यैषा दुमतिर्नाता पापयुद्धेममोपरि
मृगमध्ये स्थितश्चाऽह न कश्चिदुपरोधये ।

ता पाष मानुषीं ध्रुत्वा स राना विस्मयान्वित ॥ ३२ ॥

शाप्र गत्वा ततोऽपश्यदुग्राहण ब्रह्मणेऽन्मा ।

हाहा कष्ट वृत मेऽद्य येनाऽर्मी घातिनो द्विन ॥ ३३ ॥

चित्रसेन उवाच

अकामाघातितश्च्य तु मृगभ्रान्त्या मयाऽनघ ।

गृहीत्वा बहुदारुणि स्वतनु दाहयाम्यहम् ॥ ३४ ॥

दृष्टादृष्टन्तु यत्किञ्चिन समग्रहहत्याया । मन्थया ब्रह्महत्याया शुद्धिर्मेतमविष्यति

ऋक्षशृङ्ग उवाच

न ते सिद्धिभवे काचिन्मयि पञ्चत्वमागत ।

बह्व्यो हत्या भविष्यन्ति विनाशे मम साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥

जनना मे पिता बृहो भ्रातरश्चतपस्विन । भ्रानृजायामरिष्यन्तिमयिपञ्चत्वमागत
पताहत्या भविष्यन्ति कथशुद्धिभवन्तव । उपाय कथयिष्यामि त वतुंयदिमन्यसे

चित्रसेन उवाच

उपाय कथ्यतामेऽद्य यस्ने मनसि घत्तने । करिव्ये तमहसवं यत्नेनापि महामुने

ऋक्षशृङ्ग उवाच

पृच्छामि त्वा कथ की वा कुनस्त्वमिह षाऽऽगत ।

ब्रह्मक्षत्रविशा मध्ये की भवानुन शूद्रज ॥ ४० ॥

चित्रसेन उवाच

नाह शूद्रोऽस्मि भोस्तात' न वीश्यो ब्राह्मणो न वा ।

न चान्त्यजोऽस्मि विप्रेन्द्र' क्षत्रियोऽस्मि महामुने ॥ ४१ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सर्वसत्त्वहिते रतः । अकामात्पातकंजातं कथंशुद्धिर्भविष्यति ॥

ऋक्षशृङ्ग उवाच

मांगृहीत्वाऽऽश्रमंगच्छयत्रतौपितरौमम । आवेदयस्वचात्मानंपुत्रवातिनमातुरम्
तेद्वृष्टामांकरिष्यन्तिकारुण्यंघ्नतवोपरि । उपायंकथयिष्यन्तियेनशान्तिर्भविष्यति

तस्य तद्वघ्नं श्रुत्वा चित्रसेनो नृपोत्तम ॥

स्कन्धे कृत्वा तु तं विप्रं जगामाऽऽश्रमसन्निधौ ॥ ४५ ॥

न शक्नोति यदा घोढुं विश्राम्यति पुनः पुनः ।

तावत्पश्यति तं विप्रं मूर्च्छितं विकलेन्द्रियम् ॥ ४६ ॥

मुमोघ चित्रसेनस्तं छायायां घटभूरुहः । वस्त्रंघतुर्गुणं कृत्वा घके वातं मुहुर्मुहुः
पश्यतस्तस्यराजेन्द्रऋक्षशृङ्गोमहातपाः । पञ्चत्वमगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेनयोगवित्
दाहयामास तं विप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा । स्नानंकृत्वासशोकार्त्तो विललापमुहुर्मुहुः
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेखाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये ऋक्षशृङ्गस्वर्गगमनवर्णनं नाम

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दीर्घतपसःस्वर्गारोहणवर्णनम्

ईश्वर उवाच

ततश्चानन्तरं राजाजगामोद्वेगमुत्तमम् । कथं यामि गृहं त्वद्य चाराणस्यामहंपुनः

ब्रह्महत्यासमाविष्टो जुहोम्यज्ञौ कलेवरम् ।

अथवा तस्य वाक्येन तं गच्छाम्याश्रमम्प्रति ॥ २ ॥

कथयामियथानृत्तंगत्वातस्यमहामुनेः । एवंसञ्चिन्त्यराजासौजगामाश्रमसन्निधौ

ऋक्षशृङ्गस्य घासर्थाणि गृहीत्वा स नृपोत्तम ।

दृष्टिमार्गं स्थितस्तस्य महर्षेर्माचितात्मनः ॥ ४ ॥

दीर्घतपा उवाच

आगच्छस्वागतंतेऽस्तुभासनेऽत्रोपविश्यताम् । अग्रंश्चाग्रंशृङ्गेनमधुपकंसविष्टम्

चित्रसेन उवाच

अग्रंस्यास्य न योग्योऽहं महर्षे ! नाऽस्मि भावणे ।

मृगमध्यस्थितो विप्रस्तव पुत्रो मया हतः ॥ ६ ॥

पुत्रघ्नविद्धिमाचिप्र तीव्रदण्डेन दण्डय । मृगन्नान्त गहतोविप्रऋक्षशृङ्गोमहातपा

इति मन्वामुनिश्रेष्ठकुरुमेत्थ यथोचितम् । मातातद्वचनंश्रुत्वागृहाश्रावणम्यचिह्ला

हा हताऽस्मीत्युयाचेदं पपात धरणीतले ।

विललाप मुदुःखार्ता पुत्रशोकेन पीडिता ॥ ६ ॥

हा हता पुत्रुव्रेति करुण कुरुरीयथा । विललापाऽनुरामाता व्रगतोमाचिहाप्ये

मुख्यं दर्शय घातमीयं मातरं मा हि मानय ॥ १० ॥

श्रुताध्ययनसम्पन्नं जपहोमपरायणम् ।

आगतं त्वा गृहद्वारे कदा द्रक्ष्यामि पुत्रक ! ॥ ११ ॥

लोकोक्त्या श्रूयन्तेनैतच्चन्दनं क्लिशीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपिशीतलः

किं चन्दनेन पीयूषत्रिन्दुना किं किमिन्दुना ॥ १३ ॥

पुत्रगात्रपरिष्वङ्गपात्रं गात्रं भवेद्यदि । ॥ १४ ॥

परिष्वङ्गितुमिच्छामि त्वामहं पुत्रं मुमिश्रि !

पञ्चममनुयासुयामि त्वद्विहीनाद्य दुःमिना ॥ १५ ॥

एवंक्लिष्टपतीदीना पुत्रशोकेनपीडिता । मूर्च्छिता चिह्ला दीना निपपात महीतले

मायांश्च पतितादृष्टा पुत्रशोकेनपीडिताम् । शुकोपसमुनिस्तत्र चित्रसेनाय मूर्ध्ने

दीर्घतपा उवाच

याहि याहि महापाप! मा मुमं दर्शयस्य मे ।

किं त्वया घातितो विप्रो ह्यकामाच्च सुतो मम ॥ १८ ॥

ब्रह्महत्या भविष्यन्तिब्रह्मस्तेवसुभ्राश्रिप ! सकुटुम्बस्यमेत्वंहिमृत्युरेपउपस्थितः
पवमुक्त्वाततोविप्रोविचिन्त्यच्च पुनःपुनः । परित्यज्यतदाक्रोधंमुनिमावाज्जगादह

दीर्घतपा उवाच

उद्वेगंत्यजभो घत्स!दुरुक्तं गदितो मया । पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखतप्तेन मानद

किं करोति नरः प्राज्ञः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः ।

प्रागेव हि मनुष्याणां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ २२ ॥

अनेनैव विधानेन पञ्चत्वं विहितं मम । हत्यास्तव भविष्यन्ति पूर्वमुक्ता न संशयः
ब्रह्मक्षत्रघ्निशां मध्येशूद्रघण्डालजातिषु । कस्त्वं कथयसत्यंमेकस्माच्चनिहतोद्विजः-

चित्रसेन उवाच

विज्ञापयामि विप्रर्षे! क्षन्तव्यं ते ममोपरि ।

नाऽहं विप्रोऽस्मि वै तात ! न वैश्यो न च शूद्रजः ॥ २५ ॥

न व्याधश्चान्त्यजातो वा क्षत्रियोऽहं महामुने !

काशीराजो मृगान्दन्तुमागतो वनमुत्तमम् ॥ २६ ॥

भ्रान्त्यानिपातितोह्येपमृगरूपधरोमुनिः । इदानींतवपादान्तेसंश्रितःपातकान्वितः-

किं कर्त्तव्यं मया चिप्र! उपायं कथयस्व मे ॥ २८ ॥

दीर्घतपा उवाच

ब्रह्महत्या न शक्येताप्येका निस्तरितुं प्रभो !

दशैका च कथं शक्यास्ताः शृणुष्व नरेश्वर ! ॥ २९ ॥

घत्वारो मे सुताराजन्सभार्यामातृपूर्वकाः । मयासहनजीवन्तिमृक्षशृङ्गस्यकारणे

उपायं शोभन्तातकथयिष्येशृणुष्वतम् । शक्नोपि यदि तं कर्तुं सुखोपायं नरेश्वर

सकुटुम्बं समस्तं मां दाहयित्वाऽनलेनृप । अस्थीनिनर्मदातोये शूलभेदेविनिक्षिप

नर्मदादक्षिणे कूले शूलभेदं हि विश्रुतम् । सर्वपापहरं तीर्थं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ।

शुचिभूत्वा ममाऽस्थीनि तत्र तीर्थे विनिक्षिप ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः] * दीव्रतपसःस्वर्गारोहणघर्षणम् *

बहुद्रुमलताकीर्णं बहुपुष्पोपशोभितम् । ऋक्षसिंहसमाकीर्णं नानाव्रतधरैः शुभैः

एकपादास्थिताःकेचिदपरे सूर्यदृष्टयः ।

एकाङ्गुष्ठस्थिताः केचिद्दृष्ट्वाहुस्थिताः परे ॥ ५० ॥

द्विनैकभोजनाः केचित्केचित्कन्दफलासनाः ।

त्रिरात्रभोजनाः केचित्पराकव्रतिनोऽपरे ॥ ५१ ॥

चान्द्रायणरताः केचित्केचित्पक्षोपवासिनः ।

मासोपवासिनः केचित्केचिद्दृष्टवन्तपारणाः ॥ ५२ ॥

योगाभ्यासरताः केचित्केचिद्दुःश्यायन्ति तत्पदम् ।

शीर्णपर्णाशिनःकेचित्केचिच्च कटुकाशनाः ॥ ५३ ॥

शैवालभोजनाःकेचित्केचिन्मारुतभोजनाः ।

गार्हस्थ्ये च स्थिताःकेचित्केचिच्चैवाऽग्निहोत्रिणः ॥ ५४ ॥

एवंविधान्द्विजान्दृष्ट्वाजानुभ्यामवर्ति गतः । प्रणम्यशिरस्साराजब्राजावघनमव्रीत्
चित्रसेन उवाच

कस्मिन्देशे च तत्तीर्थं सत्यं कथयत द्विजाः ॥

येनामिवाञ्छिता सिद्धिः सफला जे भविष्यति ॥ ५६ ॥

ऋषय ऊचुः

धन्वन्तरशतंगच्छ भृगुतुङ्गस्यमूर्द्धनि । कुण्डंद्रक्ष्यसितत्पूर्णविस्तीर्णंपयसाशिवम्
नेपां तद्वचनंश्रुत्वागतःकुण्डस्यसन्निधौ । दृष्ट्वाचैवतुतत्तीर्थं भ्रान्तिर्जातानृपस्य वै
ततोविस्मयमापन्नश्चिन्तयन्धैमुद्गुर्मुहुः । आकाशस्थं ददर्शाऽसौ सामिपं कुररं नृप
भ्रममाणंगृहीताहिवध्यमानं निरामिपैः । परस्परं च युयुधुःसर्वेऽप्यामियकाङ्क्षया
हृतश्चञ्चुप्रहारेण स ततः पतितोऽम्भसि । शूलैतशूलिनायत्र भूभागो भेदितः पुरा
तत्तीर्थस्य प्रभावेण स सद्यः पुरुगोऽभवत् ।

विमानस्थं ददर्शाऽसौ पुमांसं दिव्यरूपिणम् ॥ ६२ ॥

गन्धर्वाऽप्सरसोयक्षास्तंयान्तं तुष्टुवुर्दिवि । अप्सरोगीयमानेतु गतेसूर्यस्य मूर्द्धनि

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशीराजमोक्षवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

माहात्म्यं तीर्थगोट्टूपाचित्रसेनोनरेश्वरः । किञ्चकारकवा वासं किमाहारो बभूवह

ईश्वर उवाच

भृगुतुङ्गं समासह्य ऐशानीं दिशमाश्रितः । तपश्चन्धारविपुलं कुण्डे तत्र नृपोत्तमः

सर्वान्देवान्हृदि ध्यात्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

विचिक्षेप यदात्मानं प्रत्यक्षौ रुद्रकेशवौ ।

करे गृहीत्वा राजानं रुद्रो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

प्राणत्यागं महाराज! मा काले त्वं कृथा वृथा ।

अद्याप्यसि युवा त्वं वै न युक्तं मरणं तव ॥ ४ ॥

स्वस्थानं गच्छ शीघ्रं त्वं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।

कुरु निष्कण्टकं राज्यं नाके शक्र इवापरः ॥ ५ ॥

चित्रसेन उवाच

न राज्यं कामये देव ! न पुत्रान्न च बान्धवान् ।

न भार्यां न च कोशं च न गजान्न तुरङ्गमान् ॥ ६ ॥

मुञ्चमुञ्च महादेव मा चिद्भ्रःक्रियतां मम । स्वर्गप्राप्तिर्ममाऽद्यैवत्वत्प्रसादान्महेश्वर

ईश्वर उवाच

यस्याऽप्रतो भवेद् ब्रह्मा विष्णुःशम्भुस्तथैव च ।

स्वर्गेण तस्य किं कार्यं स गतः किं करिष्यसि ॥ ८ ॥

तुष्टावयंत्रयोर्देवा वृणीष्व वरमुत्तमम् । यथेप्सितं महाराज सत्यमेतदसंशयम् ॥

चित्रसेन उवाच

यदि तुणालयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा । अद्यप्रभृतिपुष्पामिस्थ्यातल्पमिहसवदा
गयाशिरो यथापुण्यं कृतं युष्मामिरेव च । तयैरेदं प्रकृत्य शूलभेदं च पावनम्
यत्रयत्रस्थिता यूय तत्रतत्रवसाम्यहम् । गणानां चैत्रसर्वेषामाधिपथमयाऽस्तुमे

ईश्वर उवाच

अद्यप्रभृति तिष्ठामः शूलभेदे नरेश्वर । त्रिकालं हि त्रयोदेवाः कलारोत्रं वसामहे ॥

नन्दिसञ्ज्ञो गणार्धाशो भविष्यति भवान्ध्रुवम् ।

मत्समीपे तु भवत आदौ पूजा भविष्यति ॥ १४ ॥

प्रक्षिप्य तानि धार्ष्ट्यानि यत्र दीघतपा ययी ।

सकुटुम्बो विमानस्थः स्वगतस्त्व तथा कुटु ॥ १५ ॥

एव देवा धरं दत्त्वा चित्रसेनाय पार्थिव ।

कुण्डमूढानि याम्यायाः त्रयो देवास्तदा स्थिताः ॥ १६ ॥

परस्परं वदन्त्येव पुण्यनाथमिदं परम् । यथाहि गयाशिरः पुण्यं पूषमेव पश्यते ॥

तथा रेवातरे पुण्यं शूलभेदं न सशयः ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच

एतं तीर्थं तथा पुण्यं यथा पुण्यं गयाशिरः । सङ्घट्टिपण्डोदकेनैव नरोनिमलताव्रजेत्

एकं गयाशिरोमुक्त्वा सबतीयानि भूपते ।

शूलभेदस्य तीर्थस्य कला नाहन्ति षोडशीम् ॥ १८ ॥

कुण्डमुदीचशायाम्यायादशहस्तप्रमाणतः । रौद्रधारणकाष्ठायाप्रमाणञ्चैकविरति

एतन्प्रमाणं तर्तीयं पिण्डदानादि कमस्तु । नाघमनिरता दातुं लभन्ते दानमत्र हि

विष्णुस्तु पितरूपेण ब्रह्मरूपीपितामहः । प्रपिनामहोच्छ्रोऽभूदेव त्रिपुरावास्थिता

कदा पश्यति तीर्थं वै कदा नस्तारयिष्यति ।

इति प्रतीक्षा कुर्वन्ति पुत्राणां सततं नृप ।

शूलभेदे नरं ज्ञात्वा हृष्टाः शूलधरं सहन् ॥ २३ ॥

नापुत्रो नाथनो रोगी सप्तजन्मसुजायते । एकविंशतिपितुःपक्षेमातुश्चैकविंशतिम्
भार्यापक्षे दशैवेह कुलान्येतानि तारयेत् । शूलभेदवनेराजञ्छाकमूलफलैरपि ॥

एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवतिभोजिता ।

पञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं कुरुते भक्तिमात्ररः ॥ २६ ॥

कुलानिप्रेतभूतानि सर्वाण्यपि हि तारयेत् । द्विजदेवप्रसादेन पितृणाञ्च प्रसादतः
श्राद्धदो निवसेत्तत्र यत्रदेवो महेश्वरः । स्युरात्मघातिनोयेष गोब्राह्मणहनाश्च ये
दंष्ट्रिभिर्जलपाते घ चिद्युत्पातेषु ये नृताः ।

न येषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ २६ ॥

तत्र तीर्थे तु यस्तेषां श्राद्धं कुर्वीत भक्तिः । मोक्षावाप्तिर्भवेत्तेषां युगमेकं संशयः
अज्ञानाद्यत्कृतं पापं बालभावाच्च यत्कृतम् । तत्सर्वनाशयेत्पापं स्नानमात्रेण भूपते
रजकेन यथा ध्रौतं बह्वं भवतिनिर्मलम् । तथापापोऽपितृतीर्थे स्नातो भवतिनिर्मलः

संन्यासं कुरुते योऽत्र तीर्थे विधिसमन्वितम् ।

ध्यायन्नित्यं महादेवं स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ३३ ॥

क्रीडित्वा स यथाकामं स्वेच्छया शिवमन्दिरे ।

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेऽसौ शुभे कुले ॥ ३४ ॥

रूपवान्सुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ।

राजा चा राजपुत्रो चा धर्माधारसमन्वितः ॥ ३५ ॥

एतत्ते कथितं राजंस्तीर्थस्य फलमुत्तमम् ।

यच्छ्र त्वा मानवो नित्यं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ३६ ॥

य इदं श्रावयेन्नित्यमाख्यानं द्विजपुङ्गवान् । श्राद्धे देवकुले वाऽपि पटेत्पर्वणि पर्वणि

गीर्वाणास्तस्य तुष्यन्ति मनुष्याः पितृभिः सह ।

पठतां शृण्वतां चैव नश्यते सर्वपातकम् ॥ ३८ ॥

लिखित्वा तीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ।

जातिस्मरत्वं लभते प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ ३९ ॥

एदगेके षसेत्तावद्यावदक्षरमन्वितम् ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहस्या सहिताया पञ्चमेरेवाखण्डे
शूलभेदमाहात्म्ये काशीराजमोक्षगमनवर्णननाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५

पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मगङ्गावतरणयाघराक्योपदेशमथनपूर्वकदानादिफलवर्णनम्

उत्तानपाद् उवाच

अन्यच्च श्रोतुमिच्छामि केन गङ्गाऽवतारिता ।

एदृशीर्षे स्थिता देवी पुण्या कथमिहाऽऽगता ॥ १ ॥

पुण्यादेवशिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् । एतदाख्याहिमेसर्वप्रसन्नोयद्विशङ्क

ईश्वर उवाच

शृणुष्वैकमना भूत्वा यथागङ्गाऽवतारिता । देवी सर्वमहामागासवलोकहितार्थं

अस्ति चिन्थ्यो नगोनाम याम्याशाया महापते ।

गीवाणास्तु गता सर्वे तस्य मूर्ध्नि नरेश्वर ॥ ४ ॥

तत्रघाटानितागङ्गा ब्रह्माद्यैरखिलैः सुरैः । अभ्यर्च्यैश जगन्नाथ देवदेव जगद्गुरुः

जटामध्यस्थिता गङ्गा मोक्षयस्वेति भूतले ।

भास्वन्ती सा ततो मुक्ता द्येण शिरसा भुवि ॥ ५ ॥

तत्र स्थाने महापुण्या देवैरुत्पादिता स्वयम् ।

ततो दधनदी जाता सा हिताय नृणा भुवि ॥ ७ ॥

वसन्ति ये तत्रे तस्याः स्नानं कुर्वन्ति भक्तितः ।

पिरन्ति च जलं नियतं ते यान्ति यमालयम् ॥ ८ ॥

यत्र सा पतिता कुण्डे शूलभेदे नराधिप ।

देवनद्याः प्रतीच्यां तु तत्र प्राची सरस्वती ॥ ६ ॥

याम्यायां शूलभेदस्य तत्रतीर्थमनुत्तमम् । तत्रदेवशिलापुण्यास्वयं देवेन निर्मिता

तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ।

पितरस्तस्यतृप्यन्ति याचदाभूतसम्प्लवम् ॥ ११ ॥

तत्रस्नात्वा तु योभक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेन्नृप ।

स्वल्पाग्नेनापि दत्तेन तस्य घ्राऽन्तो न विद्यते ॥ १२ ॥

उत्तानपाद् उवाच

कानि दानानि दत्तानि शस्तानि धरणीतले ।

यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥

देवशिलाया माहात्म्यंस्नानदानादिजंफलम् । व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्यंतद्दस्त्वमे

ईश्वर उवाच

आसीत्पुरामहावीर्यश्चेदिनाथोमहाबलः । वीरसेनइतिख्यातोमण्डलाधिपतिर्नृप

राष्ट्रे तस्यरिपुर्नास्तिनव्याधिर्नचतस्कराः । न चाधर्मोऽभवत्तत्रधर्म एवहिसर्वदा

सदा मुदान्वितो राजा सभार्यो बहुपुत्रकः ।

एकासीद् दुहिता तस्य सुरूपा गिरिजा यथा ॥ १७ ॥

इष्टा सा पितृमातृभ्यां वन्द्युवर्गजनस्य च । कृतंघैवाहिकंकर्मकालेप्राप्तेयथाविधि

अनन्तरं चेदिपतिर्द्वादशाब्दमखेस्थितः । ततस्तस्यास्तु योभर्त्तासमृत्युवशमागतः

विधवां तां सुतां इष्टा राजा शोकसमन्वितः ।

उवाच वषट् तत्र स्वभार्या दुःखपीडिताम् ॥ २० ॥

प्रिये दुःखमिदं जातं याचजीवं सुदुःसहम् । नैपारक्षयितुं शक्या रूपयोचनगर्विता

दूपयेतकुलंकाऽपिकथंरक्ष्याहिवालिका । नोपायोविद्यतेकाऽपिभानुमत्याश्चरक्षणे

परस्परं विवदतोः श्रुत्वा तत्कन्यकाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

भानुमत्युवाच

न लज्जामि तवाग्रेऽहं जल्पन्ती तात ! कर्हिचित् ।

सत्यं नोत्पद्यते दोषो मदर्थं ते नराधिप ॥ २३ ॥

अद्यप्रभृत्यहं तात! धारयिष्ये न मूर्खं जान् । स्थूलवस्त्रपटाङ्गुतुधारयिष्यामिने शूढे
करिष्यामि व्रतान्याशु पुराणविहितानि च ।

आत्मानं शोषयिष्यामि तोषयिष्ये जनार्दनम् ॥ २५ ॥

ममैषा वर्तते बुद्धिर्यदित्यतामन्यसे । भानुमयावच ध्रुत्वा राजासहर्षितोऽभवत्
तीययात्रा समुद्दिश्य कोशं दत्त्वा सुपुष्कलम् ।

धिसूज्य पुरयान् नृद्धान् नृत्वा तस्या सुरक्षणे ॥ २७ ॥

पुत्पयान्त्सामुधाश्चापि ब्राह्मणान् स पुरोहितान् ।

दासीदासान्पदातीक्ष्य चास्या सरक्षणक्षमान् ॥ २८ ॥

ततः पितुर्मतेनेव गङ्गातीरगतासती । अवगाह्य तटे द्वे तु गङ्गायाः स नराधिप ॥
नित्यं सम्पूज्य सद्भिः प्राङ्गन्धमात्प्रादिभूषणैः ।

द्वादशाब्दानि सा तीरे गङ्गायाः स्मवस्थिता ॥ ३० ॥

त्यक्त्वा गङ्गा तदा राज्ञी गता काष्ठा तु दक्षिणाम् ।

प्राप्ता सा सचिवैः साङ्गं यत्र रेवा महानदी ॥ ३१ ॥

समापञ्च स्थितान्त्रयैर्लोकैः समरकण्ठके । उदग्याम्येपुनीर्थेपुनीर्थेतीर्थेजगामसा
स्नात्वा स्नात्वाऽऽपूज्यधिप्राङ्भक्तिपूर्वमनन्दिता ।

वारणीं सा दिशं गत्वा देवनद्याश्च सङ्गमे ॥ ३३ ॥

वदशं चाध्रमपुण्यं मुनिमण्डलैः समाकुलम् । दृष्ट्वा मुनिमण्डलं सा प्रणिपत्येदमब्रवीत्
माहात्म्यमस्य तीर्थस्य नाम चैवाऽस्य कीदृशम् ।

कथयन्तु महाभागा! प्रमादं क्रियतामम ॥ ३५ ॥

श्रुत्वा उचुः

अत्रतीर्थं तु धारयात् घ्नन् दत्तपुराहरे । महेश्वरेण तुष्टेन देवदेवेन शूलिना ॥
अत्रतीर्थेन तु स्नात्वात्तर्पयेत्पितृदेवता । अनिर्वर्तिकागतिमनस्य जायतेनात्रसशय
द्वितीयेऽह्नितो गच्छेच्छूभ्रे देतपस्विनि । पूर्वोक्तेन विधानेन स्नानं कुर्यात्तथाविधि

जन्मत्रयकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । जलेन तिलमात्रेण प्रदद्याद्भ्रूलित्रयम् ॥

तृप्यन्ति पितरस्तस्य द्वादशाब्दान्यसंशयम् ।

यः श्राद्धं कुरुते भक्त्या श्रोत्रियैर्ब्राह्मणैर्नृप ॥ ४० ॥

वार्युष्याद्यास्तु वर्ज्यन्ते पितृणां दत्तमक्षयम् ।

अपरेऽहि ततो गच्छेत्पुण्यां देवशिलां शुभाम् ॥ ४१ ॥

वीक्ष्यते जाह्नवीपुण्यादेवैस्तपादिता पुरा । स्नात्वा तत्र जलं दद्यात्तिलमिश्रं नराधिप
सकृत्पिण्डप्रदानेन मुच्यते ब्रह्महत्याया ।

एकादश्यामुपोयित्वा पक्षयोरुभयोरपि ॥ ४३ ॥

क्षपाजागरणं कुर्यात्पठेत्पौराणिकोकथाम् । विष्णुपूजां प्रकुर्वीतपुण्यधूपनिवेदनैः
प्रभाते भोजयेद्द्विप्रान्दानं दद्यात्स्वशक्तितः ।

चतुर्थेऽहि ततो गच्छेद्यत्र प्राचीं सरस्वती ॥ ४५ ॥

ब्रह्मदेहाद् विनिष्क्रान्ता पाचनार्थं शरीरिणाम् ।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४६ ॥

श्राद्धं कृत्वा यथान्यायमनिन्द्यान्भोजयेद् द्विजान् ।

पितरस्तस्य तृप्यन्ति द्वादशाब्दान्यसंशयम् ॥ ४७ ॥

सर्वदेवमयं स्थानं सर्वतीर्थमयं तथा । देवकोटिसमाकीर्णं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम्

त्रिरात्रं कुरुते योऽत्र शुचिः स्नात्वा जितेन्द्रियः ।

पक्षं मासं च पण्मासमब्दमेकं कदाचन ॥ ४९ ॥

न तस्य सम्भवो मर्त्यं तस्य वासो भवेद्विचि ।

नियमस्थो विमुच्येत त्रिजन्मजनिताद्घात् ॥ ५० ॥

विनापुंसातुयानारी द्वादशाब्दं शुचिव्रता । तिष्ठतेसाऽक्षयंकालं हृद्रलोकेमहोयते
मुनीनां वचनं श्रुत्वा मुदा परमया ययौ । ततोऽवगाह्य तत्तीर्थमहर्निशमतन्द्रिता

दृष्ट्वा तीर्थप्रभावं तु पुनर्वचनमंत्रपीतम् । श्रूयतां वचनं मेऽद्य ब्राह्मणाः सपुरोहिताः
न त्त्रैजामीदृशं स्थानं यावेत्तीर्थमहर्निशम् ।

मत्पितुश्च तथा मानु कथयध्वमिदं वच ॥ ५८ ॥
 त्वत्कन्या शूलभेदस्था नियता व्रतचारिणी ।
 एवमुक्त्वा स्थिता सा तु तत्र मानुमती नृप ॥ ५९ ॥
 एकान्तरोपवासस्था शनैर्मासोपवासिता
 देवशिलास्थिता नित्यं दध्यौ सा चक्रपाणिनाम् ॥ ६६ ॥
 अहर्निश दहेद्द्रु धूप घन्दनञ्च सदीपकम् ।
 पादशौच स्वयं कृत्वा स्वयं भोजयते द्विजान् ॥
 द्वादशाब्दानि सा राशी सुव्रता तत्र सस्थिता ॥ ५७ ॥

ईश्वर उवाच

अन्यद्देवशिवायास्तु माहात्म्यगृष्टुभूपते । कथयामिमहाबाहोसेतिहामपुरातनम्
 कश्चिद्दनेचरोऽप्याध शयन सह भायया । दुर्भिक्षपीडितस्तत्र आमिषार्थं व्रतगत-
 नापश्यत्प्राक्षिणस्तत्र न मृगाश्च फलानि च ।
 सरस्ततो ददर्शाऽथ पद्मिनीखण्डमण्डितम् ॥ ६० ॥
 दृष्ट्वा सरोवर तत्र शयनी वाक्यमब्रवीत् ।
 कुमुदानि गृहाण त्व दिव्यान्याहारसिद्धये ॥ ६१ ॥

देवस्य पूजनार्थं तु शूलभेदस्य यत्नत । चिक्रयो भवितातत्र धर्मशीलो जनो यत
 भार्याया वचन ध्रुत्वा जग्राह कुमुदानिस । उत्तीर्णस्तुतटे याचद्द्रुष्ट्वाध्रीवृक्षमप्रत
 ध्रीफलानिगृहीत्या तु सुपत्रानिचिशेषत । शूलभेद स सम्प्राप्तोददर्श सुवह्वङ्गनान्
 क्षेत्रमासेमिनेपक्षेणकादशयानराधिप । तस्मिन्नहनिनाध्रीयुयांलावृद्धास्तथास्त्रिय
 मण्डप ददृशे तत्रवृत्त देवशिलोपरि । घर्त्रे सम्येषितदिव्य स्रष्ट्माल्यैरुपरभेभितम्
 ऋषयश्चाऽऽगतास्तत्र ये चाऽऽश्रमनिवासिन ।

सोपवासा सनियमा सर्वे माग्निपरिग्रहा ॥ ६७ ॥

देवतघास्तेरम्ये मुनिसङ्घे भमाकुले । आगच्छद्विद्वृपघ्नेष्ट मार्गान्तत्र न लभ्यते
 दृष्ट्वाजनपदतत्रताभार्या शयरोऽब्रवीत् । गच्छपृच्छस्व कमपिकिमघबानकारणम्

पर्वाणि यानि श्रूयन्ते किंस्वित्सूर्येन्दुसम्प्लवः ।

अयनं किं भवेद्य किं वाऽक्षयतृतीयका ॥ ७० ॥

ततः स्वभर्तुर्वचनाच्छयरी प्रस्थितातदा । पप्रच्छनारीदृष्ट्वाऽप्रेदत्त्वाग्रे कमले शुभे
तिथिरद्यैव का प्रोक्ता किं पर्व कथयस्व मे ।

किमयं ज्ञाति लोकोऽयं किं वा स्नानस्य कारणम् ॥ ७१ ॥

नार्युवाच

अद्य घैकादशीपुण्या सर्वपापक्षयङ्करी । उपोषिता सकृद्येन नाकप्रार्थि करोतिसा
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वाशयरी शयराय वै । कथयामासषाव्यग्रास्त्रीवाक्चं नृपसत्तम
अद्य त्वेकादशीपुण्या वालवृद्धैरुपोषिता । मदनैकादशीनाम सर्वपापक्षयङ्करी ॥

नियता श्रूयते तत्र राजपुत्री सुशोभना ।

व्रतस्था नियताहारा नाम्ना भानुमती सती ॥ ७६ ॥

नेतया सदृशी काचित्त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।

दृश्यते सा वरारोहा ह्यवतीर्णा महीतले ॥ ७७ ॥

भार्याया वचनं श्रुत्वा शवरस्तां जगाद् ह ।

कमलानि यथालाभं दत्त्वा भुङ्क्ष्व हि सत्त्वरम् ॥ ७८ ॥

ममैवावर्ततेबुद्धिर्नभोक्तव्यंमयाध्रुवम् । न मयोपार्जितंभद्रे ! पापबुद्ध्याशुभंकचित्

शवर्युवाच

न पूर्वं तु मया भुक्तं कस्मिंश्चैवतुवासरे । भुक्तशेषंमयाभुक्त्यावत्कालंस्मराम्यहम्

भार्यया निश्चयं ज्ञात्वा स्नानं कर्तुं जगाम ह ।

अर्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानं कृत्वा तु भक्तितः ॥ ८१ ॥

सर्वान्देवान्नमस्कृत्य गतो देवशिलां प्रति ।

तस्यौ स शङ्कमानोऽपि नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ८२ ॥

यस्यास्तु कुमुदे दत्ते तथा राड्यै निवेदितम् ।

तद्दृष्ट्वा पद्मयुगलं तां दासीं सदाऽब्रवीत्तदा ॥ ८३ ॥

कुत्र पद्मद्वयं लब्धं कथ्यतामप्रतो मम । शीघ्रं तत्रैव गत्वा च पद्मानानय पापराज
धान्येन घसुना वाऽपि कमलानि समानय ।

भानुमन्या वच ध्रुत्वा गता सा शयरं प्रति ॥ ८५ ॥

श्रीफलानि च पुष्पाणि वह्न्यन्यानि देहि मे ॥ ८६ ॥

शशयुषा च

श्रीफलानि सपुष्पाणि दास्यामि च विशेषतः ।

न लोभो न स्पृहा मेऽस्ति गत्वा राज्ञीं निवेद्य ॥ ८७ ॥

तथा च सत्वरं गत्वा यथावृत्तनिवेदितम् । शशयुक्तपुरस्तस्यासविस्तरपरवच
तस्यास्तु वचनं ध्रुत्वा राज्ञी तत्र स्वयं गता ।

उवाच शरणीं प्रीत्या देहि पद्मानि मूल्यतः ॥ ८८ ॥

शशयुषा च

न मूल्य कामयेदेवि' फलपुष्पसमुद्भवम् । श्रीफलानिचपुष्पाणियथेष्टमम गृह्यताम्
अथा कुरु यथान्याय वासुदेवे जगत्पती ।

राशयुषा च

धिना मृत्य न गृह्णामि कमलानि तत्राऽधुना ।

धान्यस्य स्वारिकामैका ददामि प्रतिगृह्यताम् ॥ ८९ ॥

दशविंशत्यर्शश्चत्वारिंशदद्याऽपि वा । गृहाण वा स्वारिशतं दुर्मिश्रामोधिमुत्तर
घमुरत्नगुरणं च अन्वते यदर्भाप्सितम् । तसर्वैसम्प्राप्त्यामिन्मार्गं नमशाप

शशयुषा च

नाहारं चिन्तयाम्यत्र मुक्त्या देव परातने । देवराजं चिन्ताभद्रे नान्याबुद्धि प्रयसंते

राशयुषा च

न चयाऽन्नपरित्याज्यसर्पमभ्रेप्रतिष्ठितम् । तस्मात्सर्वप्रशन्नेतममाश्रं प्रतिगृह्यताम्
तपस्विनो महामाता येद्याऽरण्यनिवासिनः ।

गृह्णन्धारि ते सर्वे वाचन्तेऽन्नमन्दिताः ॥ ९० ॥

शवर्युवाच

निषेधश्च कृतः पूर्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । सत्येनतपने सूर्यःसत्येन ज्वलतेऽनलः
 सत्येन तिष्ठत्युदधिर्वायुः सत्येन चाति हि ।
 सत्येन पच्यते सस्यं गायः क्षीरं स्रवन्ति च ॥ ६६ ॥
 नत्याधारमिदं सर्व्वं जगत्स्थायवरजङ्गमम् ।
 तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन सत्यं सत्येन पालयेत् ॥ १०० ॥
 देवकार्यं तु मे मुक्त्वा नाऽन्या बुद्धिः प्रवर्त्तते ।
 गृहाण राक्षि! पुष्पाणि कुरु पूजां गदाभृतः ॥ १०१ ॥
 श्रूयते द्विजवाक्यैस्तु न दोषो विद्यते क्वचित् ।
 कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पाक्षता दधि ॥
 मांसं शय्याऽऽसनं धानाः प्रत्याख्येया न वारि च ॥ १०२ ॥

राज्युवाच

रामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च । क्रीतं प्रतिग्रहे लब्धं पुष्पमेधं चतुर्विधम् ॥
 तमं पुष्पमारण्यं गृहीतं स्वयमेव च । मध्यमं फलमारामे त्वधमं क्रीतमेव च ॥
 प्रतिग्रहेण यद्दुग्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

पुरोहित उवाच

हाणराक्षि! पुष्पाणिकुरुपूजां गदाभृतः । उपकारःप्रकर्त्तव्योव्यपदेशेन कर्हिचित्
 इश्वर उवाच

श्रीफलानि सपद्मानि दत्तानि शवरेण तु ।

गृहीत्वा तानि राक्षी सा पूजाञ्चक्रे सुशोभनाम् ॥ १०६ ॥

।पाजागरणञ्चक्रेश्रुत्वापौराणिकीकथाम् । शवरस्तुततोभार्यामिदं वचनमब्रवीत्
 दीपार्थं गृह्यतां स्नेहो यथालाभेन सुन्दरि !।

कृत्वां दीपं ततस्तौ तु कृत्वा पूजां हरः शुभाम् ॥ १०८ ॥

अकतुर्जागरंरात्रौध्यायन्तो धरणीधरम् । ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकं जनम्

स्नाति वै शूत्रभेदे तु देवनद्यातयाऽपरे । सरस्यन्त्या नरा त्रेचिन्मार्कण्डस्यहृदेऽपं
 चक्रतीर्थं गताश्चक्रुः स्नानं केचिद्विधानतः ।

शुष्यस्नेजना सर्व्वे स्नात्वा देवशिलोपरि ॥ १११ ॥

श्राद्धं चक्रुः प्रयत्नेनश्रद्धयापूतचेतसा । तान्द्रष्ट्वा शररो वित्तुं पिण्डाश्चक्रुःप्रयत्नतः
 भानुमत्या तथा भक्तुं पिण्डनिक्षणं कृतम् ।

अनिन्द्या भोजिता विप्रा दम्भवार्युप्यर्जिता ॥ ११२ ॥

हृदिप्याशैस्तथा दध्ना शर्करामधुसर्पिणा । पायसेनतु गव्येन कृतान्नेनविशेषतः
 भोजयित्वा तथा राज्ञी ददौ दानं यथाविधि ।

पादुकोपानहौ छत्रं शय्या गोवृषमेव च ॥ ११५ ॥

विविधानि च दानानिहेमरत्नं प्रानानि च । चक्रतीर्थंमहाराजकपिलायप्रयच्छति
 पृथ्वी नेत भवेद्भक्ता सशैल्यनकानना ॥ ११६ ॥

उत्तानपाद उवाच

यानि यानि च दानानि शस्त्रानि जगतीपने ।

नानि सदाणि देवेश! कथयस्व प्रसादतः ॥ ११७ ॥

ईश्वर उवाच

तिलप्रदं प्रजामिष्टा दीपदध्नुस्तमम् । भूमिदं स्वर्गमाप्नोति दीधमायुर्हिरण्यदं
 गृहदो रोगरहितो रूप्यदो रूपवान्भवेत् । वासोदध्नुःसालोक्यमर्कसायुज्यमश्वदं
 वृषदस्तु श्रियपुण्यं गोदाताश्च त्रिविधम् । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदं
 धान्यदं शाश्वतं सौम्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।

पायश्रुथिथीवासस्तिलकाञ्जनसर्पिणाम् ॥ १२१ ॥

सर्व्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । येनयेन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥
 तेननेन सभावेन प्राप्नोतिप्रतिपूजितम् । दृष्ट्वा दानानिसर्वाणिराज्ञीदत्तानियानिच

उवाच शररो भार्या यत्तच्छृणु नरेश्वर । पुराणं पठितं भद्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
 धृतञ्च तन्मया सर्वं दानधर्मफलं शुभम् । पूर्वजन्मार्जितं पापं स्नानदानप्रतादिभिः

शरीरं दुस्त्यजं मुक्त्वा लभते गतिमुत्तमाम् ।
 संस्तरसागराद्गीतः सत्यं भद्रे! यदामि ते ॥ १२६ ॥
 अनेकानि च पापानि कृतानि बहुशो मया ।
 घातिता जन्तवो भद्रे निर्दग्धाः पर्वताः सदा ॥ १२७ ॥
 तेन पापेन दग्धोऽहं दारिद्र्यं न निवर्त्तते ।
 तीर्थावगाहनं पूर्वं पापेन न कृतं मया ॥ १२८ ॥
 तेनाऽहं दुःखितो भद्रे ! दारिद्र्यमनिवर्त्तकम् ।
 मानुर्गृहं प्रयाहि त्वं त्यज स्नेहं ममोपरि ॥
 नगच्छद्गं समाख्या मोकतुमिच्छाम्यहं तनुम् ॥ १२९ ॥

श्रावणुवाच

मात्रा पित्रा न मे कार्यं नाऽपि स्वजनवान्धर्वैः ।
 या गतिस्तव जीवेश! सा ममापि भविष्यति ॥ १३० ॥
 न खीणामीदृशो धर्मो विना भर्त्रा स्वजीवितम् ।
 श्रूयन्ते बहवो द्रोया धर्मशास्त्रेष्वनेकधा ॥ १३१ ॥

पारणं कुरुभोजेन्द्रव्रतयेनननश्यति । यत्तेऽभिवाञ्छितं फिञ्चिद्विष्णवेकत्तुमर्हसि
 भार्याया वचनं श्रुत्वा मुमुदे शबरस्ततः ।
 गृहीत्वा श्रीफलं शोभ्रं ह्योमं कृत्वा यथाविधि ॥ १३३ ॥
 सर्वदेवानामस्मृत्य भुक्तोऽपि च तथा सह ।
 चैत्र्यां तु चिपुवं ज्ञात्वा तस्यो तत्र दिनत्रयम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेवाखण्डे सगङ्गाचरणव्याधवाक्योपदेशकथनपूर्वकंदानादिफलवर्णनं नाम

पट्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय

व्याधस्वर्गगमनवर्णनम्

इधर उवाच

भानुमतीद्विजान्भोज्य सुभुजेभुक्तशेषत । भुक्त्वा सुसुखमास्थायतदनपरिणाम्य
त्रयोदश्या ततो गत्वा मदनारण्यतिथौ तदा ।

मावण्डस्य हृदे स्नात्वाऽऽनच्य देव गुहाशयम् ॥ २ ॥

वृत्तोपचासनियमा स्नापयित्वा महेश्वरम् । पञ्चासृतसुगन्धेन धूपदीपनिघ्नेन
आचयद्विविधैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्च सुशोभितैः ।

क्षपानागरणं कृत्वा श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥ ४ ॥

नृत्यगीतेस्तथास्तोत्रैर्दध्यौदेवमहेश्वरम् । अत्रयिस्तारितसर्वदेवस्याऽप्रेयथाविधि
घातुवण्यसुता सर्वे भोजिता स्वपरिच्छदा ।

घातुदश्या दिनं यावत्सम्पूज्य वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥

शङ्खवादित्रभेरीभिः पटहध्वनिनाम्निम् । क्षयाजागरणं कृत्वा प्रभूतजनसङ्घम्
नृत्यगीतेस्तथा स्तोत्रैः प्रेरिता सा निशा तदा ।

प्रभाते भोजिता विप्रा पादमेधुसर्पिषा ॥ ८ ॥

दत्त्वा दानानि विप्रभ्यः शक्त्या विद्रानुसारत ।

अचयित्वा महापुष्पैः सुगन्धैर्मदनेन च ॥ ९ ॥

विधिरैः सङ्गमचक्रैश्च देव सम्पूज्यवेष्टित । स्यादामलम्भमानैश्चषट्पदीपसमुच्चयैः
षड्भानैर्विविधैर्मध्यैः सुवृत्तीर्मादकादिभिः । यतस्त्रेऽप्राहणा सर्वैर्वेदाध्ययनसुतपर

तपय कान्तयाञ्चकृ पञ्चक नाम नामत ।

आदित्यस्य दिनं त्वच तिथि पञ्चदशी तथा ॥ १२ ॥

त्याध्रमेव न नक्षत्र सक्रान्तिर्विपुवतथा ।

व्यतीपातस्तथा योगः करणं विष्टिरेव च ॥ १३ ॥

पञ्चकंताम पर्वतदयनादिघनगुणम् । अत्र दत्तं हृतं जप्तं सर्वं भवति घ्राऽक्षयम् ॥

ते द्विजा भानुमत्याऽथ शूलभेदं गताः सह ।

दृशुः शयरं कुण्डे भार्यया सह संस्थितम् ॥ १५ ॥

पेशान्ती स दिशंगत्वा पर्वते भृगुमूर्द्धनि । पतितुं च समारूढोभार्ययासहपार्थिव

भानुमन्युवाच

एतिष्ठतिष्ठ महासत्त्व शृणुष्ववघ्ननंमम । किमर्थं त्यजसि प्राणानद्यापिअयुवाभवान्

कः सन्तापः क उद्वेगः किं दुःखं व्याधिरेव च ।

शिशुः संदृश्यसेऽद्याऽपि कारणं कथ्यतामिदम् ॥ १८ ॥

शयर उवाच

कारणं नास्ति मे किञ्चिन्न दुःखं किञ्चिदेव तु ।

संसारभयभीतोऽहं नान्याः बुद्धिः प्रवर्तते ॥ १६ ॥

दुःखेनलभ्यतेयस्मान्मानुष्यजन्मभाग्यतः । मानुष्यजन्मचासाद्ययोनधर्मसमाचरेत्

स गच्छेन्निरत्यं योगमात्मद्रोपेण सुन्दरि !

तस्मात्पतितुमिच्छामि तीर्थेऽस्मिन्पापनाशने ॥ २१ ॥

राश्युवाच

अद्यापि वसते कालो धर्मस्योपार्जनेतव । कृतापकृतकर्माणि व्रतदानैर्घिशुद्ध्यति ॥

अहं दास्यामि धान्यं वा वासांसि द्रविणं बहु ।

नित्यमाचर धर्मं त्वं ध्यायन्नित्यं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

शयर उवाच

नैवाहं कामये वित्तं न धान्यं वस्त्रमेव च ।

यो यस्यैवान्नमश्नाति स तस्याऽश्नाति किल्बिषम् ॥ २४ ॥

राश्युवाच

कन्दमूलफलाहारो भ्रमित्वा भैक्ष्यमुत्तमम् । अवगाह्यसुतीर्थानि सर्वपापैः प्रमच्यं

ततो विमुक्तपापस्तु यत्किञ्चित्कुस्ते शुचि ।

कर्मणा तेन पूतस्त्व सद्गतिं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ २१ ॥

शबर उवाच

अन्नमद्यमयात्यक्तप्राणेभ्योऽपिमहत्तरम् । सत्यं न लोपयेदुदेविनिश्चिताऽन्नमतिर्मम
प्रसादं क्रियतां देवि क्षमस्वाऽथ जनैः सह । अर्धोत्तरीयवस्त्रेणसयम्यात्मानमुद्यत

भार्यया सहितो व्याधो हरिं ध्यात्वा पपात ह ।

नगार्द्धात्पतितो यावद्गतजीवो नराधिप ॥ २६ ॥

चूर्णोभूर्त्ता हि तौ दृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ।

त्रिमुहूर्त्ते गते काले शररो भार्यया सह ॥ ३० ॥

दिव्यं विमानमारूढो गतध्यानोत्तमा गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिसाहस्र्या सहिताया एञ्चमेऽध्यायः
रेवास्रष्टे व्याघ्रस्वर्गगमनवर्णननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

अधातां देवदेवेश भानुमन्यकरोष किम् । एष मे सशयोदेव ऋषयस्त्व प्रसादतः ॥

शुभर उवाच

चिन्तयित्वा मुहूर्त्तं सा गता कुण्डस्य सश्रिणी ।

दृष्ट्वा कुण्डस्य माहात्म्यं राक्षा हर्येण पूरिता ॥ २ ॥

विप्रान्वहन्समाह्वयं पूजयामास तःश्रणात् ।

दत्त्वा तु विधिचद्दानं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मज ॥ ३ ॥

निश्चयंपरमं कृत्वा स्थिताशान्तेन चेतसा । ततः सम्पूज्य विधिवत्पितृन्देवान्नराधिप
क्षपयित्वा पक्षमेकं मधुमासस्य सा स्थिता । अमावास्यां ततो राज्ञी गता पर्वतसन्निधौ
नगशृङ्गं समारुह्य कृत्वा मुकुलितीं करौ । विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वा निदं घघनमब्रवीत्

मम माता पिता भ्राता ये चान्ये सखियान्धवाः ।

क्षमापयित्वा सर्वास्तान्वचनं मम कथ्यताम् ॥ ७ ॥

त्वत्पुत्री शूलभेदे तु तपः कृत्वा स्वशक्तिः ।

विसृज्य चैव साऽऽत्मानं तस्मिंस्तीर्थे दिवं ययौ ॥ ८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सन्देशं कथयिष्यामस्त्वयोक्तं शोभनव्रते । मातापितृभ्यां सुश्रोणिमातेभ्युद्वेगसंशयः
ततो विसृज्य ताल्लोकान् स्थिताः पर्वतमूर्द्धनि । अर्धोत्तरीयवस्त्रेण गाढं च दृष्ट्वा पुनः पुनः

ततश्चिक्षेप साऽऽत्मानमेकचित्ता नराधिप !

नगाद्धं पतिता यावत्तावद्दृष्टाः सुराङ्गनाः ॥ ११ ॥

भोभो वत्से महाभागे! भानुमत्यतितापसि ।

दिव्यं विमानमारुह्य कौलासम्प्रतिगम्यताम् ॥ १२ ॥

ततः सा पश्यतां तेषां जनानां त्रिदिवं गता ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितः सर्वः शूलभेदस्य विस्तरः । यः श्रुतः शङ्करात्पूर्वमृषिद्वेषसमागमे ॥

यद्दं पठते भक्त्या तीर्थे देवकुलेऽपि वा । स मुच्यते महापापादपि जन्मशतार्जितात्
ब्रह्महास्यसुरापीषस्तेयी च गुरुतल्पगः । गोघाती स्त्रीविघाती च देवब्रह्मस्वहारकः

स्वामिद्रोही मित्रघाती तथा विश्वासघातकः ।

परन्यासापहारी च परनिक्षेपलोपकः ॥ १७ ॥

रसभेदी तुलामेदी तथा वाद्भुङ्गिकस्तु यः ।

यः कन्याविघ्नकर्ता च तथा विक्रयकारकः ॥ १८ ॥

परभार्या भ्रातृभार्या शौ स्तुराकन्वया तथा । अमिगामीपद्येर्गतथाधर्मप्रदूषका
मुच्यन्ते सर्वे ष्वैते शूत्रभेदप्रभाषत ॥ २० ॥

य इदधावयेच्छास्त्रे विप्राणाभुषतानृप । मुदं प्रयान्ति संहृष्टा पितरस्तस्यमर्षश
यक्षेदं शृणुयाद्भवत्या पश्यमानं नरोपशी ।

स मुत सर्वपापेभ्य सर्वकल्याणभागमवेत् ॥ २२ ॥

इद यशान्यमायुष्यमिदं पावनमुत्तमम् । पठनांशृष्यता नृणामायु कीर्त्तिविपदः

इति कथितमिदं ते शूत्रभेदम् पुण्य महिम न हि मनुष्यै धूयते यत्सपापे ।

मदनरिपुतद्विन्या याम्पकूलस्थितस्य प्ररुद्रुरितकन्दोच्छेदुद्वाङ्कल्पम् ॥११

इति धीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेखाखण्डे शूत्रभेदनीर्धमाहात्म्यवर्णननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५८ ॥

शूत्रभेदमाहात्म्यं समाप्तम्

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

तत पुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

श्रुते यस्या प्रभावे तु सर्वपापे प्रमुच्यते ॥ १ ॥

रेखाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । यत्राऽस्ते सर्वदा देवो घेदमूर्त्तिर्दिवाच

कुरक्षेत्रं यथापुण्य सार्धकामिकमुत्तमम् । इद तीर्थं तथा पुण्यं सर्वकामफलप्रद

कुरक्षेत्रे यथावृद्धिर्दानस्य जगतीपते । पुष्करिण्यातथा नाऽत्र घर्द्धते नाऽप्रसङ्गा

यद्यमेक तु यो दद्यात्सौघर्णं मस्तके नृप ।

पुष्करिण्यां तथा स्थानं यथा स्थानं नरे स्मृतम् ॥ ५ ॥

सूर्यग्रहे तु यः स्नात्वा दद्याद्दानं यथाविधि ।

हस्त्यश्वरथरत्नादि गृहं गाश्च युगन्धरान् ॥ ६ ॥

सुवर्णरजतं वाऽपि ब्राह्मणेभ्योददाति यः । त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणम्भवेत्
तिलमिश्रेण तोयेन तर्प्येत्पितृदेवताः । द्वादशाब्दे भवेत्प्रीतिस्तत्र तीर्थं महीपते!

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिणा । श्राद्धदो लभते स्वर्गं पितृणां दत्तमक्षयम्
अक्षतैर्वदरैर्विल्वैरिडुदैर्वा तिलैः सह । अक्षयं फलमाप्नोति तस्मिन्स्तीर्थे न संशयः

तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ।

आदित्यहृदयं जप्त्वा पुनरादित्यमर्चयेत् ॥

स गच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥ ११ ॥

ऋचमेकां जपेद्यस्तु यजुर्वासामएव च । स समग्रस्य वेदस्य फलमाप्नोति वै नृप
यस्त्र्यक्षरं जपेन्मंत्रं ध्याधमानो दिवाकरम् ।

आदित्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥

यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ।

स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

“रेवाखण्डे पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं

नामैकोनविंशतमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

षष्ठितमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धर्माकर्ण्डेय उवाच

भूयोऽप्यहं प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् । सवदुःखहरपार्थसर्वविघ्नविनाशनम्
आयुर्धीवद्भननित्यपुत्रदस्वर्गादशिषम् । यस्यतीर्थस्यैषाऽन्यानितीर्थानिदुःखनन्दन
नालभन्त धिय नाके मर्त्ये पातालगोचरे ।

कुरुक्षेत्रे गया गङ्गा नैमिषे पुष्करे तथा ॥ ३ ॥

घाराणसी च केदार प्रयागं रद्रनन्दनम् । महाकालं सहस्राक्षं शुक्रतीर्थं नृपोत्तम
रवितीर्थस्य सर्वाणि कला नार्हन्ति षोडशीम् ।

रवितीर्थे हि यद्वृक्ष तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ५ ॥

स्नेहात्तेवथयिष्यामिवाद्भैनातिपीडित । शृणुष्व तु रूपय सर्वतगोनिष्ठामहौजस
श्रुत मे रद्रनानिधये नन्दिस्कन्दगणे सह ।

पायत्या वृष्ट शम्भुश्च रवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ ७ ॥

शम्भुना च यदाख्यात गिरिजाया ससम्भ्रमम् ।

तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीत श्रुत मया ॥ ८ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुयत्नेनपाण्डव । दुर्मिक्षोपहतायिभ्रान्तमदानुसमाधिता
उद्दालको घशिष्टश्च मापडव्यो गीतमस्तथा ।

याज्ञवल्क्योऽथ गर्गश्च शाण्डिल्यो गाल्वस्तथा ॥ १० ॥

नाचिकेतो विभाण्डश्च बालखिल्यादयस्तथा ।

शातातपश्च शङ्खश्च जैमिनिर्गोभिस्तथा ॥ ११ ॥

ततश्चैतानि श्रुत्वा सर्वे परमं महत्प्रसादता । तीर्थयात्रावृत्तातेऽस्तु नर्मदाया समन्तत

जम्बीरैरजुं नैःकुञ्जैःशमीकेशरकिंशुकैः । तस्मिंस्तीर्थमहापुण्ये सुगन्धिकुन्तुमाकुले
पुत्रागनारिकेलैश्च खदिरैः कल्पपादपैः । अनेकधापदाकीर्णं मृगमार्जारसङ्कुलम् ॥
ऋक्षहस्तिसमाकीर्णं चित्रकैश्चोपशोभितम् । प्रविष्टाऋषयः सर्वे घनेपुष्पसमाकुले

घनान्ते च स्त्रियो दृष्ट्वा रक्ता रक्ताम्बरान्विताः ।

रक्तमाल्यानुशोभाढ्या रक्तचन्दनचर्चिताः ॥ १७ ॥

रक्ताभरणसंयुक्ताः पाशहस्ताभयावहाः ।

तासां समीपगा दृष्ट्वाः कृष्णजीभूतसन्निभाः ॥ १८ ॥

महाकाया भीमवक्त्राः पाशहस्ता भयावहाः ।

अनावृष्ट्युपमा दृष्ट्वा आतुराः पिङ्गलोचनाः ॥ १९ ॥

दीर्घजिह्वा करालास्या तीक्ष्णदंष्ट्रा दुरासदा ।

वृद्धानारी कुरुश्रेष्ठ दृष्ट्वाऽन्या ऋषिपुङ्गवैः ॥ २० ॥

ततः समीपगा वृद्धा तस्य वृन्दस्य भारत !

स्वाध्यायनिरता विप्रा दृष्ट्वास्तेः पापकर्मभिः ॥ २१ ॥

ऊचुस्ते तु समूहेन ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ।

अस्माकं स्वामिनः सर्वे तिष्ठन्ते तीर्थमध्यतः ॥

ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषांसर्वेष्वेव त्वरान्विताः । जग्मुस्तेनर्मदाकक्षंदृष्ट्वा रेवां द्विजोत्तमाः

ततः केचित्स्तुवन्त्यन्ये जय देवि! नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥

नमोऽस्तु ते सिद्धगणैर्निषेचिते! नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रमङ्गले !

नमोऽस्तु ते विप्रसहस्रसेचिते! नमोऽस्तु रुद्राङ्गसमुद्भवे! घरे ! ॥ २५ ॥

नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने! नमोऽस्तु ते देवि! घरप्रदे! शिवे !

नमामि ते शीतजले! सुखप्रदे! सखिदरे! पापहरे! विचित्रिते ! ॥ २६ ॥

अनेकभूतौघसुसेचिताङ्गे ! गन्धर्वयक्षोरगापचिताङ्गे !

महागजौघैर्महिषैर्वराहैरापीयसे ऋषिसहोर्मिमाले ! ॥ २७ ॥

नमामि ते सर्ववरे' सुखप्रदे' विमोघयास्मानघपाशवद्भान् ॥ २८ ॥
 भ्रमन्ति तावन्नरक्षेपु मर्त्या यावत्तवाम्भो नहि मथ्रयन्ति ।
 रघुप करंध्रन्द्रमसो रवेक्षेत्रेवि दद्यात्परम परम पद तु ॥ १६ ॥
 अनेकमस्तारभयार्दिताना पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
 गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्रे' इन्द्रैरनेकैरभिसम्भृतानाम् ॥ ३० ॥
 नद्यश्च पूता विमग्ना भरन्ति त्वा देवि' मग्नाप्य न सशयोऽत्र ।
 तु सानुराणामभय ददासि शिष्टैरनेकैरभिपूजिताऽसि ॥ ३१ ॥
 विष्णुत्रदहाश्च निमग्नदेहा भ्रमन्ति तावन्नरक्षेपु मया ।
 महायत्नस्तनरद्गुमद्गु जठ न यावत्तव ससृशति ॥ ३२ ॥
 म्नेच्छा पुलिन्दास्त्वथ यानुधाना पियन्ति येऽम्भस्तवदेवि' पुण्यम् ।
 तेऽपि प्रमुच्यन्ति भयाच्च घोरात्किमत्र विप्रा भवपाशभीता ॥ ३३ ॥
 सरामि नद्य क्षयमभ्युपेता घोरे युगेऽस्मिन्क्लिन्नावसृष्टे ।
 त्व भ्राजस देवि जगौघपूणा दिवीच नक्षत्रपथे च गङ्गा ॥ ३४ ॥
 तव प्रासादाद्वरदे विशिष्टे काच यथेम परिवाचयित्वा ।
 याम्याम मोक्षं तव सुप्रसादाद्वयं यथा त्वं कुरु न प्रमादम् ॥ ३५ ॥
 त्वामाश्रिता ये शरण गताश्च गतिस्त्वमग्नेव पितेव सुत्रान् ।
 त्वत्पालिता यावदिम सुवोर काल त्वनावृष्टित क्षिपाम ॥ ३६ ॥

षष्ठस्तुता तदादेवी नमदास्मरिता वरा । प्रयक्षासापरामर्धिप्रार्थनानायुधिष्टि

धामाकण्डेय उवाच

पठन्ति ये स्तोत्रमिदं नरन्द्र' शृण्वन्ति भक्त्या परया प्रशान्ता ।
 ते यान्ति रद्रं कृपसयुतत यानेन दिव्याम्बरभूपिताङ्गा ॥ ३७ ॥
 ये स्तोत्रमेतत्स्मृतं जपन्ति स्नात्वा च तोयेन तु नमदाया ।
 तन्मयोऽन्तकाले सरिदुत्तमेयं गतिं विशुद्धामधिराद्दाति ॥ ३८ ॥
 प्रातः समुधाय तथा शयानो य कीर्तयेतानुदिनं स्तवैन्द्रम् ।

देहक्षयं स्वे सलिले ददाति समाश्रयं तस्य महानुभाव ॥ ४० ॥

पापैर्विमुक्ता द्विवि मोदमानाः सम्भोगिनश्चैव तु नान्यथा च ॥ ४१ ॥

प्रसन्नानर्मदादेवीस्त्रोत्रेणाऽनेनभारत । जलेनाप्यायितान्विप्रान्दक्षिणापथवाहिनी
अमृतत्वं तु घो दक्षि योगिभिर्यज्ञगम्यते । दुर्लभं यत्सुरैःसर्वैर्मत्प्रसादाह्लमिष्यथ
इति ते ब्राह्मणाराजहर्षेव्या वरमनुत्तमम् । गमिष्यन्तःप्रीतचित्ताद्रष्टुश्चित्रमद्भुतम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दृष्टास्तेः पुरुषाःपार्थनर्मदातटसंस्थिताः । ज्ञानदेवार्चनासक्ताःपञ्चण्वमहाबलाः
ते दृष्टा ब्राह्मणैः सर्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । सम्पृष्टास्तेर्महाराज यथा तदवधारय ॥

विप्रा ऊचुः

वनान्ते खीयुगं दृष्ट्वा महारौद्रं भयावहम् । वृद्धाश्चपुरुषास्तत्रपाशहस्ताभयावहाः
दुर्धर्षा दुर्निरीक्ष्याश्च इतश्चेतश्च,चञ्जलाः । व्याहरन्तःशुभांवाचं न तत्रगतिरस्तिधै

अपरस्परयोः सर्वे निरीक्षन्तः पुनः पुनः ।

तैस्तु तद्वचनं प्रोक्तं तत्सर्वं कथ्यतामिति ॥ ४६ ॥

अस्माकं,पुरुषाः पञ्च तिष्ठन्ति तत्र सत्तमाः ।

ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ ५० ॥

अथ ते पुरुषाः पञ्च श्रुत्वा वाक्यमिदं शुभम् ।

परस्परं निरीक्षन्तो वदन्ति च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

कृते कस्य कुतो याताः किमुक्तं तैर्भयावहैः ॥ ५२ ॥

पुरुषा ऊचुः

तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वदक्षिणपश्चिमैः । उत्तरैश्चकृतंभवत्या न पापं तैर्व्यपोहितम्

निष्पापाश्चाथ सञ्जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ।

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे बह्विकालोपमा द्विजाः ॥ ५४ ॥

पातकानि च घोराणि यान्यचिन्त्यानि देहिनाम् ।

पापिष्टेन तु कैकेल गुरुदारा निषेविता ॥ ५५ ॥

हनघाऽन्येनमित्रस्यंमुचर्षं घनन्तया । प्रह्लाहत्यामदारौद्रावृताघाऽन्येनपातकम्

सुरापानं तु धान्यस्य सञ्जातं घाप्यकामेन ।

गोवध्या घाप्यकामेन वृता धीकेन पापिना ॥ ५७ ॥

अकामतोऽपि सर्वेषां पातकानि नराधिप ।

ब्राह्मणानां तु ने ध्रुत्वा घाप्यं तद्विस्मयान्विता ॥ ५८ ॥

सद्यस्यतदाजातापापिष्ठागतरन्मरा । तीघस्याऽस्यप्रभावेणनर्मदाया प्रमाद्यत

। षड्विपातकानां तु प्रवेशाऽऽप्रजायते । परं सञ्चित्यनेसर्वेषापिष्ठाद्यपरस्परम्

चित्रमानु स्मृतस्तेस्तु चिचिन्त्य हृदये हरिम् ।

स्नात्वा रीचाजने पुण्ये तर्पिता पितृदेवता ॥ ६१ ॥

नन्वा तु माम्बर देव हृदि ध्यात्वा जनादनम् ।

प्रदक्षिण तु त भक्त्या ज्वलन्त जातवेदसम् ॥ ६२ ॥

पतिता पाण्डवध्रेष्ठं पापोद्विद्रा महीपते ।

सार्विकीं वासनां वृत्वा त्यक्त्वा रजस्तमस्तया ॥ ६३ ॥

इत ते पावके सर्वंत्वायाउत्तरे तरे । विमानस्थास्तदादृष्टाब्राह्मणीस्नीयुधिष्ठिरं

भाक्षयमनुलं दृष्टमृषिभिनमदातरे । तदाप्रभृति ते सर्वे रागद्वेषविवर्जिता ॥ ५॥

रविनीधं द्विजाऽहृष्टा सेवन्ते मोक्षकाडक्षया ।

तीघस्याऽस्य च यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ६६ ॥

पीडितो वृद्धभावेन भक्त्या प्रीतो नरोवर ।

उद्देश कथयिष्यामि द्विकोशाभ्यन्तरे स्थित ॥ ६७ ॥

हरक्षत्र यथा पुष्य रविनीध धन मरा । ईश्वरेण पुरारुगत यण्मुखस्य नराधिप

ध्रुव रद्राघ ते सर्वैरह तत्र समीपग ।

ईश्वर उवाच

रातण्डप्रहणे प्राप्ते ये प्रजन्ति यदानन । रविनीधं कुक्षीये तु यमेतत्कर्म लभेत् ॥

स्नाने दाने तथा जप्ये होमे चैव विशेषत ।

कुरुक्षेत्रे समं पुण्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥

ग्रामे वा यदि घाऽरण्ये पुण्या सर्वत्रनमंदा । रवितीर्थंविशेषेण रेवा पुण्यफलप्रदा
पृच्छ्यां सूर्यदिने भक्त्या व्यतीपाते च वैधृतौ ।

सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽमायां ये व्रजन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७१ ॥

कामक्रोधैर्विमुक्ताश्चरागद्वेषैस्तथैवच । उपोष्यपरया भक्त्या देवस्याऽग्नेनराधिप
रात्रौजागरणं कृत्वा दीपंदेवस्त्रयोधयेत् । कथां चै वैष्णवीं पार्थ वेदाभ्यसनमेवच
ऋग्वेदं वा यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् । ऋचमेकां जपेद्यस्तु स वेदफलमाप्नुयात्
गायत्र्या च घतुर्वेदफलमाप्नोति मानवः । प्रभाते पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः ॥
भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन शक्तितः । छत्रोपानहशय्यादि गृहदानेनपाण्डवः ॥
ग्रामधूर्वहदानेन गजकन्याहयेन च । विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयं भवेत् ॥ ७८ ॥

शत्रुश्च मित्रतां याति चिपं चैवाऽमृतं भवेत् ।

ग्रहा भवन्ति सुप्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ ७६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातंरवितीर्थफलंनृप । ये शृण्वन्ति नराभक्त्या रवितीर्थफलंशुभम्
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता रविलोके वसन्ति हि । गोदानेनचयत्पुण्यं यत्पुण्यंभृगुदर्शने
केदार उदकं पीत्वा तत्पुण्यं जायते नृणाम् ।

अब्दमभ्वत्थसेवायां तिलपात्रप्रदो भवेत् ॥ ८२ ॥

तत्फलं समवाप्नोति आदित्येऽभरकीर्त्तनात् ।

श्रुते यस्य प्रभावे न जायते यन्नृपात्मजः ॥ ८३ ॥

तत्सर्वकथयिष्यामिभक्त्यातव महीपते । पापानिघप्रलीयन्तेभिन्नपात्रेयथाजलम्
तीर्थस्याऽभिमुखोनित्यंजायतेनाऽत्रसंशयः । गुह्याद्गुह्यतरंतीर्थंकथितंतवपाण्डव
पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामिमित्रावघातिनाम् ।

तीर्थाऽख्यानं शुभं तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे आदित्येऽभरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंताम पष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

करोडीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्त्राजेन्द्रकरोडीश्वरमुत्तमम् । यत्र वै निहतास्तात दानवाःसपदानुगाः
इन्द्रादिदेवैः संहृष्टैः सततं जयवुद्धिभिः । तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरम् ॥

कुड्मैर्द्वेषसमूहैश्च दानवा निहता रणे ।

तेषां शिरांसि संगृह्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३ ॥

निक्षिप्य नर्मदातोये वन्धुभाघमनुस्मरम् ।

तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे स्थापयित्वा उमापतिम् ॥ ४ ॥

इन्द्रेणसहिताःसर्वेऽपूजयँल्लोकसिद्धये । हृष्टचित्ताःसुराःसर्वे जग्मुराकाशमण्डलम्

दानवानां महाभाग सूदिता कोटिरुत्तमा ।

तदाप्रभृति तर्त्तीर्थं करोडीति महीतले ॥ ६ ॥

विख्यातं तु तदा लोके पापघ्नं पाण्डुनन्दन ॥

अष्टम्यां च घनतुर्दश्यामुभौ पक्षौ च भक्तितः ।

उपोष्य शूलिनश्चाग्रे रात्री कुर्वीत जागरम् ॥ ७ ॥

सत्कथापाठसंयुक्तो वेदाध्ययनसंयुतः । प्रभातं विमले प्राप्ते पूजयेत्त्रिदशेश्वरम् ॥

पञ्चामृतेन संस्नाप्य श्रीखण्डेन च गुण्डयेत् । शस्तैः पल्लवपुष्पैश्च पूजयेत्तु प्रयत्नतः

बहुरूपंजपन्मन्त्रं दक्षिणाशां व्यवस्थितः । यथोक्तेन विधानेन नाभिमात्रेजलेक्षिपेत्

तिलाञ्जलिं तु प्रेताय दक्षिणाशामुपस्थितः ।

श्राद्धं तत्रैव विप्राय कारयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

विपमैरग्रजातैश्च वेदाध्ययनतत्परैः । गोहिरण्येन सम्पूज्य ताम्बूलैर्भोजनैस्तथा ॥

भूपणैःपादुकाभिश्च ब्राह्मणान्पाण्डुनन्दन ।

भवेत्कोटिगुणं तस्य नात्र फार्या विचारणा ॥ १३ ॥

तस्मिन्नीधे तु यः कश्चिरपेदेहं विधानतः ।

तस्य भयति यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ १४ ॥

यापद्मयीति त्रिष्टुप्ति मय्यस्य नमदाजले ।

नाहसति घमांश्चा शिवगोके सुदुर्हभे ॥ १५ ॥

ततः कालाञ्च्युतम्लन्मादिह मानुषता गतः ।

कोटीधनति धीमाञ्जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥

विधर्मममायुक्तो मेधारी धीज्ञपुत्रकः । विख्यातो वसुधापृष्टेर्दीर्घायुर्मानवोभवेत्

तस्मरति तर्तीयं तत्र गत्वा नृपोत्तमः ॥ करोतीश्वरमभ्यर्च्यं प्राप्नोति परमायतिम्

शुचन्द्रयमे शूद्रादिर्येषंशुभिस्तथा । विज्ञेदेवैस्तथा सर्वे स्थापितस्त्रिदशेश्वर

वेद्याया उत्तरे कृते लोकाणां हितकाम्यया ।

मानवो मन्त्रिस्युक्तः प्रामादं कारयेत्तु यः ॥ २० ॥

स्मिन्नीधे नरश्रेष्ठ सद्गति ममयाप्नुयान् । न्यायोपात्तप्रतिवेदार्थपापाणकंशुके-

ब्राह्मणे. शत्रियैर्वैश्ये शूद्रे. स्त्रीमिश्र शक्ति ।

नेऽपि यान्ति नरा लोके शादूरे सुरपूजिते ॥ २१ ॥

यः शृणोति सदा मन्यया माहान्ध्र्यं जीर्यते नृपः ।

तस्य पापं प्रणश्येत् वणमामाभ्यन्तरं च यत् ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाह्व्यामहिताया पञ्चमेखाखण्डे

करोतीश्वरतीर्थमाहान्ध्रवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

त्रिपष्टितमोऽध्यायः

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र! कुमारेश्वरमुत्तमम् । प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरसन्निधौ

पण्मुखेन पुरा तात! सर्वपातकनाशनम् ।

आराध्य परया भक्त्या सिद्धिः प्राप्ता नराधिप ! ॥ २ ॥

देवसैन्याधिपो जातः सर्वशत्रुनिवर्हणः ।

उग्रतेजा महात्माऽसौ सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ ३ ॥

तदा प्रभृतितत्तीर्थसञ्जातं नर्मदातटे । तत्रतीर्थे तु यो गत्वा एकचित्तो जितेन्द्रियः

कार्तिकस्य चतुर्दश्यामष्टम्यां च विशेषतः । स्नापयेद्द्विरिजानाथं दधिदुग्धेन सर्पिणा

गीतं तत्र प्रकर्त्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि । ब्राह्मणैः श्रोत्रियैः पार्थपट्कर्मनिरतैः शुभैः

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अक्षयं पाण्डुनन्दन । सर्वतीर्थमयं तीर्थं निर्मितं शिखिना नृप

एतत्ते सर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम् । कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यते पाण्डुनन्दन!

मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥



चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । नराणां पापनाशाय भ्रगान्त्येऽश्वरमुत्तमम्
नमस्कृत्या नरो राजन्मुच्यते ब्रह्महत्याया । कार्तिकेः प्रतुमासस्य वृष्णपक्षे घनुर्दशी

घृतेन स्नापयेद् देवं समाधिस्थो जितेन्द्रिय ।

एकविंशतिमुत्तरेपे तो न च्यवेदैः श्वरात्पदान् ॥ ३ ॥

धनं चोपानर्ही छत्रं दद्याच्च घृतकम्पलम् । भोजनं चैव सर्वपापसर्वं कौटिल्येण भवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमोऽध्यायः
अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आनन्देश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र आनन्देश्वरमुत्तमम् । रद्रस्य परमानन्दो यत्र जातो युधिष्ठिर
तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षयं वरम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आनन्दश्चैव सजातो रद्रस्य द्विजसत्तम । कथयतामेव तत्सर्वसङ्क्षेपात्सहयान्धवै-
श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामि नृपथेष्ठ ! आनन्देश्वरमुत्तमम् । दानवानां चर्षं कृत्वा देवदेवीमहेश्वर ॥

पूजितो देवतेः सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नैः । आनन्दसंगुतो देवो ननर्त चुपवाहनः ॥
 मृगयन् रूपमाभ्याय गौर्याद्यार्जाङ्गुसंस्थितः । भूतघ्नतालकद्रुतर्भैरवैर्भैरवो मृतः ॥
 ननर्त नर्मदातीरे दक्षिणेपाण्डुनन्दन ! । तुष्टैर्मरुद्गणैः सर्वैः स्थापितः कमलासनः
 तदाप्रभृति तत्तीर्थमानन्देश्वरमुच्यते । अप्रम्यां च मनुदंश्यां पीर्णमास्यांनगाधिप
 चिद्विषयाच्छर्चयेद्देवं मुगन्धेन चित्तेपयेत् । ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्रयथाशक्त्यायुधिष्ठिर
 सोदानं तत्र कर्त्तव्यं चक्रदानं शुभाचरम् । पसन्तम्प्रयोदश्यांश्राद्धं तत्रैव कारयेत्
 इन्द्रैर्वद्रेर्विन्धैरक्षतैश्च जलेन वा । प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वर उत्तमे ॥ १०॥
 आनन्दिताभयेगुम्नेयाचदाभूतगम्प्लवम् । सन्ततेर्वै न चिच्छेदः सप्तजन्ममुजायते
 आनन्दोहि भयेत्तेषां प्रतिजन्मनि भारत ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिमाहन्त्र्यांमंहितायांपञ्चमेऽध्यायः

आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

पट्टपष्टितमोऽध्यायः

मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मातृतीर्थमनुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं नर्मदादक्षिणे तटे
 मातरस्तत्र राजेन्द्र ! सञ्जाता नर्मदा तटे । उमार्द्धनारिदिवेशो व्यालयज्ञोपवीतधृक्
 उवाचयोगिनीवृन्दं कष्टं कष्टमहो हर । अजेयाः सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

तीर्थमत्र विधानेन प्रख्यातं वसुधातले ।

पवं भवतु योगिन्य इत्युक्त्वाऽन्तराच्छिवः ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या नवम्यां नियतः शुचिः ।

उपोष्य परया भक्त्या पूजयेन्मातृगोचरम् ॥ ५ ॥

तस्यस्युमांतर प्रीताप्रीतोऽयंबृषवाहन । वन्यायासृत्पत्सायाअपुत्रायायुधिष्ठिर
स्नापनधारभेत्तत्र मन्त्रशास्त्रविदुत्तम । सहिरण्येन कुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वित
स्नापयेत्पुत्रकामाया वास्यपात्रेण देशिकः ।

पुत्र सा लभते नारी धीर्यवन्त गुणान्वितम् ॥ ८ ॥

योयं काममभियायेत्ततः सलभते नृप । मातृतीर्थत्परंतीर्थं न भूत न भविष्यति
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिमाहस्रया सहिनायांपञ्चमेऽध्यायतण्डे
मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चदशितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तपष्टितमोऽध्यायः

लुङ्गे श्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात' जन्मध्ये व्यपस्थितम् ।

लुङ्गेश्वरमितिष्यातं सुरासुरनमाहृतम् ॥ १ ॥

इदंतीर्थं महापुण्यं नानाधर्मं मदीतले । अम्यतीर्थस्यमाहात्म्यमुत्पत्तिरनुभागत
भार्गीवपुरामहाधीर्यो दानशोभश्चरितः । बालभृष्ट इतिष्यात सुरासुरनसुतस्य च
गङ्गातटं समाधित्य सद्यार विपुत्रं तपः ॥

अधोमुक्तोऽपि संस्थित्वाऽपिबद्ध भुममहतिशाम् ॥ ४ ॥

ततश्चानन्तरं देवस्त्रिण्डेह्य मयामह । दृष्ट्वा न पार्यती सा तु तपस्सुषेणवस्थितम्
परस्परस्य महाशेष भुमारी तिष्ठत नरा । प्रगीर्षं तं कुत्स्याऽऽदेहि शीघ्रं वरं विमो'

ईश्वर उवाच

यदुत्तं वचनं देवि' अतमगोचन शिमे । स्वकार्यं च सदाशिल्यं परकार्यं विगतशोभम्

मूर्खस्त्रीवाल्मीकिणां यश्छन्देनाऽनुवर्तते । व्यसने पतते घोरे सत्यमेतदुद्दरितम्

देव्युवाच

भार्यायाऽभ्यर्थितो भर्ता कारणं बहु भाषते ।

लघुत्वं याति सा नारी एवं शास्त्रेषु पठ्यते ॥ ६ ॥

प्राणत्यागं करिष्यामि यदि मां त्वं न मन्यसे ।

पार्वत्या प्रेरितो देवो गतोऽसौ दानवं प्रति ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थं पितृसेधूमं किमर्थं तप्यसेतपः । किं दुःखं किं नुसन्तापो वदकार्यमभीप्सितम्
युवा त्वं दृश्यसेऽद्यापि वर्षातिरेव च । तदाश्च हि मे सर्वं तपसः कारणमहत्

दानव उवाच

अचला दीयतां भक्तिर्मम स्यैर्यं तवोपरि । अपरं वर्षसाहस्रं निर्विघ्नं मे गतं विभो
दिवसानां सहस्रे द्वे पूर्णे त्वत्तपसा मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

याचयाऽभीप्सितं कार्यं तुष्टोऽहं तव सुव्रत । देवस्य वचनं श्रुत्वा चिन्तयामास दानवः
किं नाकं याचयाम्यद्य किमद्य सकलां महीम् ।
एवं सचिन्तयामास कामवाणेन पीडितः ॥ १६ ॥

दानव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि मे प्रभो ।

नंग्रामैस्तु न तुष्टोऽहं बलं नास्तीति किञ्च न ॥ १७ ॥

यस्य मूर्धन्यहं देवपाणिना समुपस्पृशे । देवदानवगन्धर्वो भस्मसाद्यात् तत्क्षणात्

ईश्वर उवाच

यत्त्वया चिन्तितं किञ्चित्तत्सर्वं सफलं तव । उत्तिष्ठ गच्छ शीघ्रं त्वं भवनं प्रति दानव

दानव उवाच

सर्थायतां देवदेवेश! यावज्ज्ञास्यामि ते वरम् ।

नारद उवाच

देवदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सर्वेषामेव देवेशो हरते ध्रुवमापदम् ॥
असंभाव्यं न चक्रव्यंमनसापि न चिन्तयेत् । ईदृशींनैवबुद्ध्यामिथापदंचविभोतव

ईश्वर उवाच

गच्छ नारद शीघ्रं त्वं यत्र देवो जनार्दनः । विदितं च त्वया सर्वं यत्कृतंदानवेनतु
अवध्यो दानवो ह्येव सेन्द्रैरपि मरुद्गणैः । गत्वा तु केशवं देवं निवेद्य महामुने ॥

नारद उवाच

न तु गच्छाम्यहं देव सुप्तः क्षीरोद्ग्रीसुखी । केशवःप्रेरणे ह्येषामादेशोदीयतांप्रभो

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा राजानं च तथा प्रभुम् ।

गुरुं चैवाऽदितः कृत्वा शयानं न प्रबोधयेत् ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

यदि कचिदगारेषु बहिरूपयते महान् । निधनंयान्ति तत्रस्था यद्बुद्ध्येरन्नसूरयः

नारद उवाच

शीघ्रं गच्छ महादेवआत्मानं रक्ष सुप्रभो । गच्छाम्यहं न सन्देहो यत्रदेवोजनार्दनः

ततो नन्दिमहाकाली स्तम्भहस्तौ भयानकौ ।

जघ्नतुर्दानवं तत्र मुद्रादिभिरायुधैः ॥ ४६ ॥

त्रयोऽपि च महाकायाः सप्ततालप्रमाणकाः ।

न शमो जायते तेषां युध्यतां च परस्परम् ॥ ४७ ॥

ततश्चानन्तरंचिप्रोऽगच्छत्तंकेशवं प्रति । सुप्तं क्षीरार्णवेऽपश्यच्छेषपर्यङ्कसंस्थितम्

लक्ष्म्या पादयुगं गृह्य ऊरूपरि निवेशितम् ।

अप्सरोगीयमानं तु भक्त्याऽऽनम्य च केशवम् ॥ ४६ ॥

अद्य मे सफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् । उत्थापयस्वदेवेशंलक्ष्मिस्त्वमविशंकिता

नारदस्यवचः श्रुत्वा पदाङ्गुष्ठं व्यमर्दयत् । नारदस्तिष्ठतेद्वारिउत्तिष्ठमधुसूदन

देवोऽपि नारदं दृष्ट्वापरंर्हर्षमुपागतः । स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठ ! सुप्रभाताऽद्यशर्वरी ॥

नारद उवाच

अथ मे सफल देवप्रभात तवदशनात् । कुशात् च न देवानां शीघ्रमुत्तिष्ठगम्यताम्
धीविष्णुरुवाच

प्रह्लादन्द्रश्च रुद्रश्च ये ध्यान्ये तु मरुद्गणा । आपद् कारणघघतत्ममास्थानुमहसि
नारद उवाच

दानयेन महार्ताय तपान्तत सुदारुणम् । रुद्रेण च घरो दत्तोभस्मत्वं मनमेत्मितम्
घरदानयतेनैव स दय हन्तुमहति । ईदृश चेष्टित प्रात्वा नीतो देवोऽमरं सह ॥
नारदस्य घघ ध्रुवात्तगामस्यमुहिर्हरि । दृष्ट्वा देवस्तर्माशातगच्छन्तदिशमुत्तराम्
दृष्ट्वा देव च रुद्रोऽथ परिष्वज्य पुन पुन । नमस्सृत्य जगन्नाथ देव घ मधुसूदन
विष्णुरुवाच

भयस्य कारण देव' कथ्यता च महेश्वर । देवदानवयक्षाणां प्रेययेय यमालयम् ॥
ललाटे च रतो घर्मो युष्माकश्च महेश्वर ।

छित्वा शिरस्तथाङ्गानि इन्द्रियाणि न मशय ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

नास्ति सौम्यं च मुखपु नास्ति सौम्यं च रोगिषु ।

परार्थिने न सौम्यं तु स्त्रीजिते च विशेषत ॥ ११ ॥

स्त्रीजितेन मया विष्णो' घरो दत्तस्तु दानये ।

यस्य मूर्ध्नि न्यसेत्पार्णि स भवेद्भस्मपुञ्जवत् ॥ १२ ॥

अनेयश्चामरक्षीव मया ह्युक्त स केशव । हन्तुमिच्छतिमा पापउपायस्तवविघने
विष्णुरुवाच

गच्छन्तु अमरा सच युष्माभि महशङ्कर । उपाय सत्रयाम्यथ वधार्थदानवस्यघ
देवायाश्च तटे तिष्ठ देव त्वममरं सह । कालक्षेपो न कस्तव्योगम्यतात्वरितम्प्रभो

दक्षिणा यत्र गङ्गा च रवा चैव महानदी ।

यत्र यत्र च दृश्येत् प्राचीञ्चैव सरस्वती ॥ १६ ॥

सप्तपष्ठितमोऽध्यायः] * विष्णुमाययादानवमोहवर्णनम् * ७५१

तत्समं च महातीर्थं न मर्त्यैर्धैव दृश्यते । स्नानं त्रै तत्रकुर्वन्तिदानञ्चैवतुभक्तिः
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः । एतत्तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥

गम्यतां तत्र देवेश! लुङ्केशं त्वं सहामरैः ।

विष्णोस्तु वचनादेव प्रविष्टो हृदमुत्तमम् ॥ ६६ ॥

रतिं सुमहतीञ्चक्रे सह तत्र मरुद्गणैः । ततश्चानन्तरं देवो मायां कृत्वा ह्यनेकधा ॥

वसन्तमासं संसृज्य उद्यानवनशोभितम् । अशोकैर्बकुलैश्चैव ब्रह्मवृक्षैः सुशोभनैः ॥

श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजचम्पकैः ।

श्रीफलैश्च तथा तालैः कदम्बोदुम्बरैस्तथा ॥ ७२ ॥

अश्वत्थादिद्रुमैश्चैव नानावृक्षैरनेकशः । नानापुष्पैःसुगन्धाद्यैर्भ्रमरैश्चनिनादिनम्

तस्मिन्मध्ये महावृक्षो न्यग्रोधश्च सुशोभनः ।

बहुपक्षिसमायुक्तः कोकिलारावनादिनः ॥ ७४ ॥

कृष्णेन च कृतं तस्मिन्कन्यारूपं च तत्क्षणात् ।

न तस्याः सदृशी कन्या त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७५ ॥

अन्याश्च कन्यकाः सप्त सुरूपाः शुभलोचनाः ।

दिव्यरूपधराः सर्वा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ७६ ॥

पुमांसमभिकाङ्क्षन्त्यो यद्येकः कामयेत्स्त्रियः ।

मौक्तिकै रत्नमाणिक्यैर्वैडूर्यैश्च सुशोभनैः ॥ ७७ ॥

कामहारैश्चवंशीश्चबद्धोहिन्दोलकःकृतः । आरूढाश्च महाकन्या गायन्ते सुस्वरंतदा

मारुतः शीतलो वाति वनं स्पृष्ट्वा सुशोभनम् ।

वातेन प्रेरितो गन्धो दानवो घ्राणपीडितः ॥ ७८ ॥

ततः कुसुमगन्धेन विस्मयं परमंगतः । आघ्राय चेदृशं पुण्यं न दृष्टं न श्रुतं मया

वने चिन्तयतः किञ्चिद्दध्वनिगीतं सुशोभनम् ।

गीतस्य च ध्वनिं श्रुत्वा मोहितो मायया हरिः ॥ ८१ ॥

व्याधस्यैव महाकूटे पतन्ति च यथा मृगाः ।

कालस्पृष्ट (कालपृष्ट) स्तथा वृष्ये पतितश्च नराधिप ॥ ८२ ॥

दृष्ट्वा कन्या च तां दैत्यो मूर्च्छंया पतितो भुवि ।

पतिनेन तु दृष्ट्वा कन्या घटतले स्थिता ॥ ८३ ॥

आस्यं दृष्ट्वा तु नारीणां पुनः कामेन पीडितः ।

गृहीत्वा हेमदण्डं तु ता पातयितुमिच्छति ॥ ८४ ॥

कन्योवाच

मा मानुष्यशय त्वं हि कुमार्यहं कुलोत्तम !।

भो मुञ्चमुञ्च मा शीघ्रं यावद्गच्छाम्यहं गृहम् ॥ ८५ ॥

दातव उवाच

अहं विद्यामिच्छामि त्वयासहसुराशोभने । भूयुष्टे मरुते रात्री भवन्त्येवंनसंशयः

कन्योवाच

पितारश्चति कौमार्ये भर्तांश्चतिर्योवने । पुत्रोरक्षतिवृद्धत्वे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति

न स्वातन्त्र्य मर्मावास्ति उत्पन्नाऽहं महत्कुलै ।

याच्यस्तु मन्विता भ्राता मातापि हि तर्ष्य च ॥ ८८ ॥

दातव उवाच

यदि मा नैच्छसे त्वय स्वातन्त्र्यं नावलम्बसे ।

ममापि च तदा हत्या सत्यं च शुभलोचने ! ॥ ८९ ॥

कन्योवाच

विश्वासो नैव कर्तव्यो यादृशे तादृशे नरे ।

नराः स्त्रीषु विचित्राश्च लम्पटाः काममोहिताः ॥ ९० ॥

परिणीय तु मा त्वं हि भुङ्क्ष्य भोगान्मया सह ।

जन्मनाशो भयेत्पश्चात् त्व नाम्न्यो भयेन्मम ॥ ९१ ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैशी शूद्रा यावत्तर्ष्य च ।

द्वितीयो न भवेद्द्वर्ता एकाकी चेह जन्मनि ॥ ९२ ॥

दानव उवाच

यत्त्वया गदितं वाक्यं तन्मया धारितं हृदि ।
प्रत्ययं मे कुदृष्याऽद्य यत्ते मनसि रोचते ॥ ६३ ॥

कन्योवाच

जानीष्व गोपकन्यां मां क्रीडामि सखिभिः सह ।
अस्मत्कुलेषु यद्विष्यं तत्कुरुष्व यथाविधि ॥ ६४ ॥
न तद्विष्यं कुलेऽस्माकं चिपं कोशं न तत्तुला ।
गोपान्वयेषु सर्वेषु हस्तः शिरसि दीयते ॥ ६५ ॥
कामान्धेनैव राजेन्द्र! निक्षिप्तो मस्तके करः ।

तत्क्षणाद्गस्मसाद्भूतो दग्धस्तृणचयो यथा ॥ ६६ ॥

केशवोपरिदेवैस्तुपुष्पवृष्टिः शुभाकृता । हृष्टाःसर्वेऽगमन्देवास्वस्थानंविगतज्वराः
क्षीरोदं केशवोऽगच्छत्कालपृष्ठे निपातिते । यद्दंष्ट्रणुयाद्भवत्याचरितंदानवस्यस्र

स जयी जायते नित्यं शङ्करस्य चसोयथा ।

एतस्मात्कारणाद्राजैर्लुङ्केश्वर (लुङ्केश्वर) मितिश्रुतम् ॥ ६६ ॥

लीनं च पातकं यस्मात्त्वानमात्रेण नश्यति ।

त्वगस्थिशोणितं मांसं मेदस्नायुस्तथैव च ॥ १०० ॥

मज्जाशुक्रगतंपापं नश्यते जन्मकोटिजम् । लुङ्केश्वरे महाराज तोयं पिवति भक्तितः

त्रिभिःप्रसृतिमात्राभिः पापं याति सहस्रधा ।

विशेषेण चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ तु चाष्टमी ॥ १०२ ॥

उपोष्य यो नरो भक्त्या पितॄणां पाण्डुनन्दन !

उद्भृतान ते सर्वे नारकीयाःपितामहाः ॥ १०३ ॥

काकिणीं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे । तेन दानफलंसर्वंकुरुक्षेत्रादिकं च यत्
प्राप्तं तु नान्यथा राजञ्छङ्करो चदते त्विदम् ।

स्पर्शलङ्गमिदं राजञ्छङ्करेण तु निर्मितम् ॥ १०५ ॥

स्पर्शमात्रे मनुष्याणाद्यद्रवासोऽमिजायते । तेन दानफलसर्वं ब्रह्मक्षेत्रादिकञ्च यत्
एतस्मात्कारणाद्राजंलोकपालाश्च रक्षका ।

दुर्गा च रक्षणे सृष्टा घनुर्हस्तघरा शुभा ॥ १०७ ॥

धनदो लोकपालेशो रक्षकश्चेश्वरस्य च । रक्षति च सदा कालं ग्रहव्यापाररूपतः ॥
पुत्रभ्रातृसमारूपं स्वामिसम्बन्धरूपिभि । लुङ्केश्वर घराजेन्द्रदेवीनांऽद्यापिमुच्यते
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिमाहस्रचासहितायापञ्चमेऽध्यायस्य ऋषिः
रेखाखण्डे लुङ्केश्वरतीयंमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टपष्टितमोऽध्याय

धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धनदस्य तु नतीर्थं ततो गच्छेद्युधिष्ठिर । नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥
सर्वतीर्थफलं तत्र प्राप्यते नात्र मशय । क्षेत्रमासत्रयोदश्या शुरुषक्षे जितेन्द्रिय-
उपोष्य परया भक्त्या राश्री कुर्वीत जागरम् ।

पञ्चामृतेन राजेन्द्र! स्नानपयेद्धनर्द्धं बुध ॥ ३ ॥

दीर्घं शृतेन दातव्यं गीतं वाचस्वकारयेत् । प्रभातेपूजयेद्विप्रानात्मनः श्रेय इच्छति
प्रतिग्रहममर्यां च विद्यासिद्धान्तपादिन ।

श्रीतस्मात्तत्रियायुक्तान्परदारपराङ्मुखान् ॥ ५ ॥

पूजयेद्गोहिरण्येन यत्त्रोपानहभोजने । उग्रशय्याप्रदानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
त्रिजन्मजनित्रं पापधनदस्यप्रभाचत । स्वगर्दं दुर्विनीतानाधिनीतानांघमोक्षदम्
अचर्दं च दृष्टिणाभवेज्जन्मनिजन्मनि । कुलीनत्वदुःखहानि स्वभाषाज्ञायतेनरे
एवाधिभ्यसो भवेत्तेषां नर्मदोदकसेवनात् ।

धनदस्य तु यस्तीर्थं विद्यादानं प्रयच्छति ॥ ६ ॥

स याति भास्करे लोके सर्वव्याधिविचर्जिते ।

देवद्रोणीं च तत्रैव स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥ १० ॥

ये प्रकुर्वन्ति भूयिष्ठां रेवाया दक्षिणे तटे । तेयान्ति शाङ्करे लोकेसर्वदुःखविचर्जिते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्रमङ्गलेश्वरमुत्तमम् । स्थापितंभूमिपुत्रेणलोकानांहितकाम्यया

तोपितः परया भक्त्या शङ्करः शशिशेखरः ।

चतुर्दश्यां गुरुर्देवः प्रत्यक्षो मङ्गलेश्वरः ॥ २ ॥

ब्रूहि पुत्र! वरं शुभ्रं तत्ते दास्यामि मङ्गल ॥ ३ ॥

मङ्गल उवाच

प्रसादं कुरु मे शम्भो प्रतिजन्मनि शङ्कर । त्वदङ्गस्वेदसम्भूतो ग्रहमध्येवसाम्यहम्

त्वत्प्रसादेन ईशान पूज्योऽहं सर्वदैवतैः । कृतार्थोह्यद्य सञ्जातस्तव दर्शनभाषणात्

स्थानेऽस्मिन्देवदेवेश मम नाम्ना महेश्वरः । एवं भवतुतेपुत्रेत्युक्त्वाघान्तरधीयत

मङ्गलोऽपि महात्मा वै स्थापयित्वा महेश्वरम् ।

आत्मयोगवलेनैव शूलिनाऽपूजयत्ततः । ७ ॥

सर्वदुःखहरंलिङ्गं नाम्नावै मङ्गलेश्वरम् । तत्र तीर्थेतु वैराजन्ब्राह्मणान्प्रीणयेत्सुधीः

सपत्नीकान्पृथग्पृथग् चतुर्थ्यङ्गारके व्रते । पत्नीभर्तारसंयुक्तं चिद्वासं श्रोत्रियं द्विजम्

प्रतान्ने घैव गौर्धुर्यै शिवमुद्दिश्य दीयते ।

प्रीयतां मे महादेव सपत्नीको वृषध्वज ॥ १० ॥

वख्युग्म प्रदातव्यंलोहित पाण्डुनन्दन । पूर्वही रत्नवर्णां च शुभ्रं वृष्ण तथैव च
उत्र शय्या शुभा घैव रत्नमालयानुलेपनम् ।

दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥

खतुर्ध्यान्तु तथाऽष्टम्या पक्षयो शुक्लवृष्णयो ।

श्राद्ध तत्रैव कर्त्तव्यं विस्रशाठयेन धर्जित ॥ १३ ॥

प्रेता भयन्तिमुप्रीता युगमेरु महीपते । मपुत्रो जायते मस्य प्रतिजन्म नृपोत्तम
तस्य तीर्थस्य भावेन सर्वाङ्गरुचिरो नृप । मङ्गलभवते घरोनाऽशुभं विद्यते षड्विन्
भवत्या य कीर्त्तयेन्नित्य तस्य पापं व्यपोहति ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रपा [सहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेखाखण्डे मङ्गलेऽथरतीथमाहात्म्यवर्णननामैकोनत्रितितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

सप्ततितमोऽध्याय

रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कुटे तीर्थं परमशोभनम् । रविणा निर्मितं पाथं सर्वपापक्षयङ्करम्
स्वारीन भास्करस्तत्र तिष्ठत घोत्तरे तटे ।

सवव्याधिहरं पु सा नर्मदाया व्यवस्थित ॥ २ ॥

पृथ्वापृथ्वावृषभ्रष्टह्यम्याचक्षतुर्दशीम् । ज्ञानय कारयेन्मर्त्यं श्राद्धप्रनेषु भक्ति
तस्य पापक्षयं पाथं सूयलोके महीयते ॥ ३ ॥

ततः स्वर्गाच्चयुतः सोऽपि जायते विमले कुले ।

धनाढयोव्याधिनिर्मुक्तो जीवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामेश्वरं ततश्चान्यच्छृणु पाण्डवसत्तम । सिद्धोयत्र गणाध्यक्षो गौरीपुत्रो महाबलः

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य धूपनैवेद्यपूजनैः ॥ २ ॥

प्रसाद्यजगतामीशं सर्वपापः प्रमुच्यते । अष्टम्यां मार्गशीर्षस्य तत्र स्नात्वा युधिष्ठिर

यो येन यजते तत्र स तं काममवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विमप्ततितमोऽध्याय

मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नतो गच्छेन्नु राजेन्द्र मणिनागेश्वरशुभम् । उत्तर नर्मदाकूले सर्वपापक्षयद्वम् ॥
स्थापित मणिनागेन लोकाना हितकाम्यया ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आशीर्विधेण सर्पेण ह्यम्बरस्तोयित कथम् ।

शुद्रासर्वस्य लोकस्य भयदा विशालिनि ॥ २ ॥

कथ्यतातात मे सर्वं पातकस्योपशान्तिदम् । मम सत्तापत्रदुःखदुर्योधनसमुद्भवम्

कणभीष्मोद्भव रौद्र दुःख पाञ्चालिसम्भवम् ।

नव वक्रशम्भुर्जाघेन प्लावित निवृत्ति गत ॥ ४ ॥

ध्रुवा नव मुम्बोर्द्गीता कथा वै पापनाशिनीम् ।

अयुक्तमिद्रमस्माक द्विज' क्लेशो न शाम्यति ॥ ५ ॥

अथवाप्राप्स्यतेतातविद्यादानस्ययत्फलम् । तत्फलप्राप्यननित्यकथाध्वजणतोहर

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यथा यथा त्व नृप' भापसे च तथा तथा मे सुखमेति भारती ।

शोधिलयता वा जरयान्वितस्य त्वन्सौहृद नश्यति नीव तात ॥

शृणुष्व तस्मात्सह बान्धवैश्च कथामिमा पापहरा प्रशान्ताम् ॥ ७ ॥

कथयामि यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥

कथित पूर्वतो वृत्ते पारम्पर्येण भारत ॥ ९ ॥

हे भाय कश्यपरास्तासबलोवैष्यनुत्तमे । गरुत्मन्त च विनताऽसूतकद्रुहानथ
सन्तोषेण च ते तात तिष्ठत कश्यपे गृहे । कद्रुश्च विनतानाम द्वेष्य धनिने सदा

ताभ्यां साद्धं क्रीडते च कश्यपोऽपि प्रजापतिः ।

ततस्त्वेकदिने प्राप्ते आश्रमस्था शुभानना ॥ १२ ॥

उच्चैःश्रवं ह्यं दृष्ट्वा मनोवेगसमन्वितम् । पश्यपश्य हि तन्वद्गीहयंसर्वत्रपाण्डुरम्
धावमानमविश्रान्तंजवेनमनसोपमम् । तं दृष्ट्वासहस्राघ्राऽध्वमीर्ष्याभावेनचात्रवीत्

कद्रूखाच

ब्रूहिभद्रेसहस्रांशोरुवःकिंचरणकोभवेत् । अहं ब्रवीमि कृष्णोऽयं त्वं किं वदसितद्वद्
चिनतोवाच

पश्यसे ननु नेत्रैश्च कृष्णंश्वेतं न पश्यसि । असत्यभाषणाद्भद्रे यमलोकांगमिष्यसि
सत्यानृते तु वचने पणस्तव ममैव तु । सहस्रं चैव वर्षाणां दास्यहं तव मन्दिरे ॥

असत्या यदि मे घाणी कृष्ण उच्चैःश्रवा यदि ।

तदाऽहं त्वद्गृहे दासी भवामि सर्पमातृके ॥ १८ ॥

दिउच्चैःश्रवाःश्वेतोऽहंदासीचतर्वैवतु । एवं परस्परंद्वाभ्यां सम्वादोऽयंब्यवर्द्धत
आश्रमेषु गता बाला रात्रौ चिन्तापरा स्थिता ।

वन्धुवर्गस्य कथितं समस्तं तद्विचेष्टितम् ॥ २० ॥

पुत्राणांकथितंपार्थपणञ्चैवमयाकृतम् । हाहाकारःकृतःसर्पैःश्रुत्वामात्रापणंकृतम्
तादासीनसन्देहःश्वेतोभास्करवाहनः उच्चैःश्रवाहयःश्वेतोनकृष्णोविद्यतेकचित्

कद्रूखाच

यथाऽहंनभवेदासीतत्कार्यं च विचिन्त्यताम् । विषध्वंरोमकूपेषुह्यञ्चैःश्रवहयस्यतु
एकं मुहूर्त्तमात्रं तु यावत्कृष्णःस दृश्यते । क्षणमात्रेणचैकेन दासीसा भवते मम
दासीं कृता तु तां तन्वीं चिनतां सत्यगर्विताम् ।

ततः स्वस्थानगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २५ ॥

सर्पा ऊचुः

यथात्वंजननीघाम्यसर्वपांभुवि पूजिता । तथासाऽपिचिशेषेण चञ्चिव्यानमातरः
माता च पितृभार्या च मातृमाता पितामही ।

कर्मणा मनसा चाद्या हित तासा समाचरेत् ॥ २७ ॥

साततस्नेन वाक्येन वृद्धाकालानलोपमा । ममवास्पमकुर्वाणायैकेषिद्भुविपद्मगा
हृद्यवाहमुखेसर्वेते यास्यन्त्यविचारितम् । मातुस्नद्वचनभ्रुत्वासर्वेष्वैवभुजङ्गमा
क्वचित्प्रविण रोमेषु उच्चैर्ध्रुवहृदयस्य च । नष्टा केचिद्देशदिश कद्रुशापभयात्तत ॥

केचिद्गङ्गाजले नष्टा केचिन्नष्टा सरस्वतीम् ।

केचिन्महोदधौ लीना प्रविण विन्ध्यकन्दरे ॥ ३१ ॥

आश्रित्य नमदातोये मणिनागोत्तमो नृप । तपश्चधार विपुल्मुत्तरे नर्मदातटे ॥

मातृशापभयात्पार्थ' ध्यायते कामनाशतम् ।

अच्छेद्यमप्रतर्क्य' च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

वायुभक्ष शत साप्र तदर्धं रचिर्वाक्षक' । एव ध्यानरतस्यैव प्रत्यक्षखिपुरान्तक'
साधुसाधुमहाभागसत्त्वचास्तुभुजङ्गम । त्वयाभक्त्यागृहीतोऽहप्रीतस्तेह्य रगेऽवर

चर याद्यय मे क्षिप्रं यत्ते मनसि वत्तते ॥ ३५ ॥

मणिनाग उवाच

मातृशापभयात्त्राथङ्किष्टोऽह नर्मदातटे । त्वत्प्रसादेन मे नाथ मातृशापोभरेद्दृष्ट्या

ईश्वर उवाच

हृद्यवाहमुख चन्स' न प्राप्स्यसि ममाऽङ्गया ।

मम लोके तिवासश्च तव पुत्र' भविष्यति ॥ ३७ ॥

मणिनाग उवाच

अत्र स्थाने महादेव स्थायतामशमागत । सहस्राशेन भागेन स्थायतानमदाजटे

उपकाराय लोकाना मम नाम्नैव शङ्कर' ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

स्थापस्व परलिङ्गमाश्रया मम पन्नग । इत्युक्तवान्तर्हितो देवो जगामह्य मयासह

मार्कण्डेय उवाच

सप्ततीर्थे तु येगन्वाशुचिप्रयत्नमानसा । पञ्चम्यावाचतुर्दृश्यामष्टम्याशुक्ल'णयो

अर्चयन्ति सदा पार्थ नोपसर्पन्ति ते ममम् ।

दध्ना च मधुना चैव घृतेन क्षीरयोगतः ॥ ४१ ॥

स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमादेहार्धधारिणम् । कामाङ्गदहनं देवमघासुरनिपूदनम् ॥

स्नाप्यमानञ्च ये भक्त्या पश्यन्ति परमेश्वरम् ।

ते यान्ति च परे लोके सर्वपापविजिते ॥ ४३ ॥

श्राद्धं प्रेतेषु ये पार्थ चाप्टम्यां पञ्चमीषु च । ब्राह्मणैश्चसदायोग्यैर्वेदपाठकचिन्तकैः

स्वदारनिरतैः श्लक्ष्णैः परदारविजितैः । पट्कर्मनिरतैस्तात शूद्रप्रेषणवर्जितैः

खज्जाश्च ददुराः पण्डा वाद्भुप्याश्च कृपीचलाः ।

भिन्नवृत्तिकराः पुत्र! नियोज्या न कदाचन ॥ ४६ ॥

घृपली मन्दिरे यस्य महिषी यस्तु पालयेत् ।

स विप्रो दूरतस्त्याज्यो व्रते श्राद्धे नराधिप ! ॥ ४७ ॥

काणाण्डुपट्टाश्च मण्डाश्च वेदपाठविचर्जिताः ।

नते पूज्या द्विजाः पार्थ! मणिनागेश्वरे शुभे ॥ ४८ ॥

यदीच्छेदूर्ध्वगमनमात्मनः पितृभिः सह ।

सर्वाङ्गरुचिरां ध्रेनुं यो दद्यादग्रजन्मते ॥ ४९ ॥

स याति परमं लोकं यावदाभूतसंप्लवम् ।

ततः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि जायते विमले कुले ॥ ५० ॥

ये पश्यन्ति परं भक्त्या मणिनागेश्वरं नृप !

न तेषां जायते वंशे पन्नगानां भयं नृप ! ॥ ५१ ॥

पन्नगः शङ्कते तेषां मणिनागप्रदर्शनात् । सौपर्णरूपिणस्ते वै दृश्यन्ते नागमण्डले

फलानि घैवदानानांशृणुष्व्वाऽथनृपोत्तम । यत्रसंस्कारसंयुक्तं ये ददन्तेनरोत्तमाः

तोयं शय्यां तथा छत्रं कन्यां दासीं सुभाषिणीम् ।

पात्रे देयं यतो राजन्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ५४ ॥

सुरभीणि च पुष्पाणि गन्धवस्त्राणि दापयेत् ।

दीपं धान्य गृह शुद्धं सर्वोपस्करसयुतम् ॥ ५१ ॥

येददन्तेपरं भक्त्या ते मज्जन्ति त्रिविष्टपम् । मणिनागे नृपश्रेष्ठे यद्यदानप्रदीयते
तस्य दानस्य भावेन स्वर्गे घासो भवेद्भुवम् ।

पातकानि प्रलीयन्ते आमपात्रे यथा जलम् ॥ ५२ ॥

नमंदातोयमसिद्धभोज्य विप्रेददातिथ । सोऽपिपापैर्विनिमुक्तं क्रीडते देवते सह
तत्र स्वर्गच्युताना हि लक्षणं प्रवदाम्यहम् ।

दीर्घायुगोनीवपुत्राधनयन्त सुशोभना ॥ ५३ ॥

सर्वव्याधिविनिमुक्ता सुतभृत्यै समन्विता ।

त्यागिनो भोगमयुक्ता धर्माख्यातरता सदा ॥ ६० ॥

देवद्विनगुरोर्मन्त्रास्तीर्थसेवापरायणा ।

मातापितृवशा नित्यं द्रोहकापविचर्जिता ॥ ६१ ॥

एभिरेवगुणैर्युं जायेतरा पाण्डुरन्दन । सत्यन्तेस्वगादायाना स्वर्गोवाप्तमवन्तिने
सवर्नाधवर तीर्थं मणिनाग नृपोत्तम । तीर्थाख्यातमिदं पुण्यं यद्वैच्युयादपि
सोऽपि पापैर्विनिमुक्त शिष्यलोकेमर्हायने । न विपत्रमते तेषाविचरन्ति यथेच्छया
माद्रपद्या च यत्पृष्टपापुष्यं सूर्यस्यदर्शने । तत्फलसमाप्नोतिभारुवानश्रवणेनतु
इति श्रीस्वन्देसहापुराण एकाशातिसाहस्र्या सहिताया षष्ठमेऽधर्माखण्डे

रेखाखण्डेमणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्षनताम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापहरं पार्थ! गोपारेश्वरमुत्तमम्
गोदेहान्निःसृतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गोदेहान्निःसृतं कस्माल्लिङ्गं पापक्षयङ्करम् ।

दक्षिणे नर्मदाकूले मणिनागसमीपतः ॥

संक्षेपात्कथ्यतां विप्र! गोपारेश्वरसम्भवम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामधेनुस्तपस्तत्र पुरा पार्थ चकार ह्रः । ध्यायते परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम्
तुष्टस्तस्या जगन्नाथःकपिलायामहेश्वरः । निःसृतो देहमध्यात्तुअच्छेद्यःपरमेश्वरः
तुष्टो देवि! जगन्मातः कपिले परमेश्वरि । आराधनं कृतंयस्मात्तद्ब्रदाऽऽशुशुभानने

सुरभ्युवाच

लोकानामुपकाराय सृष्टाऽहं परमेष्ठिना ।

लोककार्याणि सर्वाणि सिद्धयन्ति मत्प्रसादतः ॥ ६ ॥

लोकाः स्वर्गं प्रयास्यन्ति मत्प्रसादेन शङ्कर !

तीर्थे त्वं भव मे शम्भो! लोकानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥

तथेति भगवानुक्त्वा तीर्थे तत्रावसन्मुदा ।

तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ।

स्नानेनैकेन राजेन्द्र! पापसङ्गं व्यपोहति ॥ ८ ॥

गोपारेश्वरगोदानं यस्तु भक्त्या च कारयेत् ।

योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनु सकाञ्चना ॥ ६

मयन्मा तरुणी शुभ्रा बहुशीरासवस्त्रका । वृणपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यावाप्रदापयेत्
 सर्वेषुचैव मासेषुकार्तिके षचिशोरन । दापयेत्पत्यामकन्या द्विजेस्वाध्यायतन्परे
 विधिना षप्रदद्याद्योपिधिनायस्नुगृह्णते । तापुर्मापुण्यकर्माणीप्रेक्षक पुण्यमाजनम्
 पिण्डदानप्रकुशांघ प्रेतानामकिसयुत । पिण्डेनैकेतराजेन्द्र प्रेतायान्तिपरागतिम्
 भक्त्या प्रणाम रद्रस्य ये कुर्वन्ति दिनेदिने । तेषापापंप्रलीयेतभिन्नपात्रेञ्च यथा
 तत्र तीर्थे तुयो राजन्वृग्भ ष समु सृजेत् । पितरन्धोदुपृतास्तेनशिवलोकेप्रदीयते
 युधिष्ठिर उवाच

वृणोत्सर्गे हृते तात फले यज्ञायते वृणाम् । तत्सर्वकथयस्वाशु प्रयत्नेन द्विजोत्तम
 धीमार्कण्डेय उवाच

सवलक्षणसपूर्णे वृषे धैव तु यत्फलम् । तदहं सप्रशयामि शृणुष्व धर्मनन्दन ॥
 कार्त्तिके धैव वैशाखे पूर्णिमाया नराधिप ॥

रद्रस्य मन्त्रिर्धौ भूत्वा शुचि स्नातो जिनन्द्रिय ॥ १८ ॥
 वृषस्यैवसमुत्सर्गं कारयेत्प्रीयताहर । सान्निध्येकारयेत्पुत्रघतस्रोषतिसकाःशुभा
 दन्वा तु विप्रमुत्प्राय सर्लक्षणसयुता । प्रीयताश्चमहादेवो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वर
 वृग्भे रौमसङ्ख्या या सर्वाङ्गेषु नराधिप । तावद्रूपंप्रमाणं तु शिवलोके महीयते
 शिवलोके वसित्वा तु यदामर्त्येषु जायते । कुले महतिसम्भूतिर्धनधान्यसमाकुले
 नीरोगो रूपवाञ्छैव विद्याढ्य सत्यवाक्च्युधि ॥

गोपारेभ्वरमाहात्म्य मया ख्यात युधिष्ठिर ॥
 गोदेहात्रिंशत् लिङ्ग नर्मदादक्षिणे तटे ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणप्रकाशीतिसाहस्रया संहिताया पञ्चमेऽधर्नाखण्डे
 रेवाखण्डे गोपारेभ्वरमाहात्म्यवर्णननाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः
गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापहरं मर्त्ये नाम्ना वै गौतमेश्वरम्
स्थापितं गौतमेनैव लोकानां हितकाम्यया ।

स्वर्गसोपानरूपं तु तीर्थं पुंसां युधिष्ठिर ! ॥ २ ॥

तत्र गच्छ परंभक्त्यायत्रदेवोजगद्गुरुः । पातकस्यचिनाशार्थं स्वर्गवासप्रदस्तथा
सौभाग्यवर्द्धनं तीर्थं जयद्रं दुःखनाशनम् । पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम्
यत्किञ्चिद् दीयते भक्त्या स्त्रलपं वा यदि वा बहु ।

तत्सर्वं शतसाहस्रमाश्रया गौतमस्य हि ॥ ५ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कृते तीर्थं पामशोभनम् । शङ्खचूडस्य नाम्ना वै प्रसिद्धं भूमिमण्डले
शङ्खचूडं स्वयं तत्र स्थितं पाण्डुनन्दन । वैनतेयभयात्पार्थं मुखद् नर्मदातटे
तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या शुचिभूत्वा समाहित ।

स्नापयेच्छङ्खचूडं तु क्षीरक्षीट्रेण सर्पिणा ॥ ३ ॥

रात्रीजागरणकुर्याद्देवस्याग्रेनराधिप । दधिभक्तेनसपूज्यब्राह्मणाञ्छसितव्रतान्
गोप्रदाने द्विजेन्द्रोऽयं सर्वपापक्षयङ्कर ॥ ४ ॥

तस्मिन्स्तीर्थे तु यः पार्थं सर्पदण्डप्रतर्पयेत् । सयातिपरमलोकां शङ्करस्यचघोषया
इति श्रीस्कान्दे महापुराणपकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽयन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र पारेश्वरमनुत्तमम् । पराशरो महात्मा वै नर्मदायास्तटे शुभे
तपश्चचार विपुल पुत्रार्थं पाण्डुनन्दन ! हिमवददुहिता तेन गौरी नारायणी नृप
तोयिता परया भक्त्यानमदोत्तरके तटे । तस्य तुष्ठा महादेवी शङ्करार्द्धाङ्गधारिणी
भोभोःपिवर थोष्ठां तुष्ठाऽहं तव भक्ति । वर याचयमेधिप्र पराशर महामने ॥१॥

पराशर उवाच

परितुष्टाऽसि मे देवियदिदेयोचरोमम । देहि पुत्रं भगवतिसत्यशीचगुणान्वितम्
वेदान्यसनशीलं हि सर्वशास्त्रविशारदम् ।

तीर्थं चाऽत्र भवेद् देवि! सन्निधानवरेण तु ॥ ६ ॥

लोकोपकारहेतोश्च स्थीयतां गिरिनन्दिनि !। पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणे तटे
श्रीदेव्युवाच

एवं भवतु ते विप्र! तत्रैवान्तरधीयत । पराशरोमहात्मा वै स्थापयामास पार्वतीम्
शङ्करं स्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् । अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च देवानां तुदुरासदम्
पराशरो महात्मा वै कृतार्थो ह्यभवन्नृप ! ॥ १० ॥

तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ।

स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि कामक्रोधविवर्जितः ॥ ११ ॥

माघे चैत्रेऽथ वैशाखेश्रावणे नृपदन्दन !। मासिमार्गशिरे चैव शुक्लपक्षे तुसर्वदा
तत्र गत्वा शुभे स्थाने नर्मदादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

उपोष्य पर्या भक्त्या व्रतमेतत्समाधरेत् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥

गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कामक्रोधविवर्जितः ।

प्रभाते विमले प्राप्ते द्विजाः पूज्याः स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

संपूज्य ब्राह्मणान्पार्थ धनदानहिरण्यतः । वस्त्रेण छत्रदानेनशय्याताम्बूलभोजनेः
प्रीणयेन्नर्मदातीरे ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् । श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठभ्रामैः पक्वैर्जलेनच
स्त्रीणां चैव तुशूद्राणामामश्राद्धं प्रशस्यते । आमंचतुर्गुणं देयं ब्राह्मणानां युधिष्ठिर
वेदोक्तेनविधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः । हस्तमात्रैः कुशिक्षेचितिलैश्चैवाक्षतैर्नृप

चिप्रा उदङ्मुखाः कार्याः स्वयं वै दक्षिणामुखाः ।

दर्भेषु निक्षिपेदन्नमित्युच्चार्य द्विजाव्रतः ॥ २० ॥

प्रेता यान्तु परेलोके तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः । पापं मेप्रशमं यानुण्तुवृद्धिं शुभंसदा

वृद्धिं यातु सदा वशो ज्ञानिवर्गोद्विजोत्तम । एवमुच्चार्यविप्राय दानदेयंस्वशक्तिं
 गोभृतिसाहिरण्यादि घात्रं वस्त्रस्वशक्तिं । दातव्यपाण्डुवधेष्टं पारोक्ष्यवराधमे
 यं शृण्वन्ति परं भक्त्या मुच्यन्ते सयथात्मैः ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेखाखण्डे पारोक्ष्यवराधीयं माहात्म्यवर्णननामप्रदसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थं माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भीमेश्वर ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्कुरम् । मेचितं ऋषिसङ्घं भीमवतधरं शुभे ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।

अपेदेवाक्षरं मन्त्रमूर्धवाद्बुद्धिवाकरे ॥ २ ॥

तस्य जन्मार्जितपापं तत्क्षणादेव नश्यति । सप्तवन्मार्जितपापगायत्र्यानश्यते ध्रुवम्
 दशभिर्जन्मभिनातशतेन तु पुराकृतम् । सहस्रेण त्रिजन्मोत्थगायत्रीहन्ति क्विल्यम्
 र्घदिक् लौकिकं चापि जाप्यं जप्तं नरोत्तरं । तत्क्षणाद्ब्रह्मैतन्मर्त्यं नोत्तरं तु कदाचन
 न देववत्मा धित्यं कदाचित्पापमाचरेत् । अज्ञानाप्रश्यते क्षिप्रं नोत्तरं तु कदाचन
 तत्र तीर्थे तु यो दानशक्तिमाधित्यं चाचरेत् । तदक्षयफलमर्थं जायते पाण्डुतन्दनं
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेखाखण्डे भीमेश्वरतीर्थं माहात्म्यवर्णननामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः
नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् । तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥

युधिष्ठिर उवाच

नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं चिनिर्मितम् । एतदाख्याहिमे सर्वंप्रसन्नोयदिसत्तम!

श्रीमार्कण्डेय उवाच

परमेष्ठिसुतः पार्थ!नारदो मुनिसत्तमः । रेवायाश्चोत्तरे कूले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥
नवनाडीनिरोधेन काष्ठावत्यां गतेन च । तोपितः पशुभर्ता वै नारदेन युधिष्ठिर !

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र! योगिनाथ अयोनिज !। चरंप्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसि वर्तते
नारद उवाच

त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्यतु । अचलातेभवेद्भक्तिः सर्वकालं ममेव तु
स्वेच्छाघारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारगः । त्रिकालज्ञोजगन्नाथगीतज्ञोऽहं सदा भवे
दिनेदिने यथा युद्धं देवदानवमानुषैः । पातालेमर्त्यलोके वा स्वर्गे वाऽपि महेश्वर
पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वतीं तथा । तीर्थं लोकेषु विख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम्

ईश्वर उवाच

एवं नारद! सर्वं तु भविष्यति न संशयः । चिन्तितं मत्प्रसादेन सिद्धं यत्तेनात्र संशयः

स्वेच्छाघारो भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे ।

मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥ ११ ॥

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।

ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥ १२ ॥

मम प्रियङ्कर दिव्य नृत्यगीत भविष्यति । कलिं च पश्यसे नित्य देवदानवकिन्नरै
 र्वत्तीर्थं भूतले पुण्य मप्रसादाद्भविष्यति । वेद्वेदाद्गतस्वज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविदः ॥

एकस्त्वममि नि सङ्गो मत्प्रसादेन नारदः ॥ १४ ॥

इत्युक्त्यान्तदधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम् ।

स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १५ ॥

पृथिव्यामुत्तम तीर्थं निर्मितनारदेन तु । तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रिय
 मासि भाद्रपदे पाथः कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ १७ ॥

छत्र तत्र प्रदातव्य ब्राह्मणे शुभलक्षणे । शस्त्रेणतु हता येवै तेषां श्राद्ध प्रदापयेत् ॥
 ते यान्ति परम लोक पिण्डदानप्रभाषतः ॥ १८ ॥

कपिलास्तत्रदातव्यापितृनुदिश्यभारतः । इत्युच्चार्यद्विजेदेव्यायान्तु ते परमागतिम्
 अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादतः । नमदातोयभावेनन्यायार्जितधनस्यच

तेषां चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परा गतिम् ॥ २० ॥

इत्युच्चार्य द्विजे देवा दक्षिणा च स्वशक्तिः ।

हविष्यान्न विशालाक्षः द्विजानां चैव दापयेत् ॥ २१ ॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्य नृत्य गीत च कारयेत् ।

अवाप्त तैर्न वै सर्वं यः करोतीश्वरात्पथे ॥ २२ ॥

न याति रुद्रसाक्षिभ्यमिति रुद्र स्वयं जगौ ।

विद्यादानेन चैत्रेण अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

ध्रुवहास्तत्रदातव्याभूमि सस्यवती नृप । चित्रभानु शुभेमन्त्रे प्रीणयेत्तत्रमक्तिः
 आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारतः । ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालनृत्यग्रेसच

तीर्थे नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तत्र । चित्रभानुमुखादेवा सर्वदेवमयो ऋषि
 ऋषिणा प्रीणिता सर्वे तस्मात्प्रीत्योः* हुताशनः ।

पूजिते हव्यवाहे तु दारिद्र्यं नैव जायते ॥ २७ ॥

धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि । कुलीनाश्च सुवेपाश्च सर्वकालं धनेन तु
प्लवो नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम् ।

धनं नराणामृतवस्तरूपां गतं गतं यौचनमानयन्ति ॥ २६ ॥

धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्यर्जितम् । यमेनच यमत्वं हि इन्द्रत्वंघैवचज्जिणा
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम् ।

नारदेश्वरमाहात्म्याद् ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥ ३१ ॥

सर्वतीर्थवरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु । पृथिव्यां सागरान्तायां रेवायाश्चोत्तरे तटे
तद्वरं सर्वतीर्थानां महापातकनाशनम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाण्डेय उवाच

गतो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थद्वयमतुत्तमम् । दधिस्कन्दंमधुस्कन्दं सर्वपापक्षयङ्करम्

दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।

उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ॥ २ ॥

न व्याधिर्न जरा तस्य न शोको नैव मत्सरः ।

दशचन्द्रशतं यावज्जायते विमले कुले ॥ ३ ॥

मधुस्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ।

नाऽसौ वैवस्वतं देवं पश्येद्द्वै जन्मसप्ततिम् ॥ ४ ॥

मधुनासह सम्मिथ पिण्डयस्तुप्रदापयेत् । तस्यपीत्रप्रपीत्रेम्योदारिद्र्यनैवजायते
 दधिभिः सहसमिथ पिण्ड यस्तु प्रदापयेत् ।
 तस्मिंस्तीर्थे नर स्नात्वा विधिषदक्षिणामुख ॥ ६ ॥
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
 द्वादशाश्वानि तुप्यन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥
 इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेवाखण्डे दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन
 नामैकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नन्दिकेश्वरमुत्तमम् । यत्रसिद्धो महानन्दीतलेसर्ववदाम्यहम्
 रेवाया पुरतः कृत्वा पुरा नन्दीगणेश्वर । तपस्तपजयं कुर्वंस्तीर्थात्तीर्थंजगाम ह
 दधिस्कन्द मधुस्कन्द यावत्स्यत्वा तु गच्छति ।
 तापक्षणे महादयो नन्दिनाथमुवाच ह ॥ ३ ॥

श्वर उवाच

भोभो प्रसन्नो नन्दीश परकृणुयथेप्सितम् । तपसातेनतुष्टोऽह तीर्थंवात्राहृतेन ते
 नन्दीश्वर उवाच

न चाऽहं कामये वित्तं न चाऽहं कुलसन्ततिम् ।
 मुक्त्वा न कामये कामं तप पादाम्बुजात्परम् ॥ ५ ॥
 वृमिर्काटपतङ्गेषु त्रियग्योनिं गतस्य वा ।

जन्म जन्मान्तरेऽप्यस्तु भक्तिस्त्वयि ममाऽचला ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महादेवः परया कृपया नृप !।

गृहीत्वा तं करे सिद्धं जगाम निलयं हरः ॥ ७ ॥

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या व्यक्षं प्रपूजयेत् ।

अग्निप्रोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा प्राणत्यागं करोति चेत् ।

शिवस्याऽनुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ९ ॥

ततः कालेन महता जायते विमले कुले । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जीवेच्च शरदां शतम्
एतत्तेकथितं तात ! तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् । दुर्लभं मर्त्यसञ्ज्ञस्य सर्वपापक्षयं करम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज वरुणेश्वरमुत्तममम् । यत्र सिद्धो महादेवो वरुणो नृपसत्तम
पिण्याकशाकपर्णेश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।

आराध्य गिरिजानाथं ततः सिद्धिं परां गतः ॥ २ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ।

पूजयेच्छङ्करं भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ३ ॥

कुण्डिकावर्द्धनीं वाऽपि महद्वा जलभाजनम् । अन्नेन सहितं पार्थतस्य पुण्यफलं शृणु
यत्फलं लभते मर्त्यः सन्नेद्वादशवर्षिके । तत्फलं समवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं तोयमन्नं च नृपसत्तम ! ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।

घरुणास्य पुरे वासो यावदाभूतसप्लवम् ॥ ७ ॥

पश्चात्पूर्णे तत्र काले मर्त्यलोके प्रनायने । अन्नदानप्रदो नित्य जीवेद्वर्षशतं नरः ।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिनाया पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्विचशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतो गच्छेन्महीपालवह्नितीर्थमनुत्तमम् । यत्रसिद्धोमहातेजास्तप कृत्वाहुताशनः

सर्वभक्ष्यं कृतो योऽसौ दण्डके मुनिना पुरा ।

नमदातदमाधित्यं पूतो जातो हुताशनः ॥ २ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।

अग्निप्रवेशं कुर्वन् स गच्छेदग्निस्ताम्यताम् ॥ ३ ॥

भक्त्या स्नात्वा तु यस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः ।

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यसशयम् ॥ ४ ॥

नस्येयाऽनन्तरराजन्कौबेरतीर्थमुत्तमम् । कुबेरोयत्र भसिद्धोयक्षाणामधिपः पुरा

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा समन्यच्य जगद्गुहम् ।

उमया सहितं भक्त्या सवपापं प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

तत्र तार्यं तु यः स्नात्वा दद्याद्विप्राय काञ्चनम् ।

नाभिमात्रं जले तिष्ठन्म लभेतावुर्द्धं फलम् ॥ ७ ॥

दधिस्कन्दे मधुस्कन्दे नन्दीशे घरुणालये ।

आग्नेये यत्फलंतात स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

ते वन्द्या मानुषे लोके धन्याःपूर्णमनोरथाः । यैस्तुदृष्टंमहापुण्यंनर्मदातीर्थपञ्चकम्
ते यान्ति भास्करे लोके परमे दुःखत्राशने । भास्करादैश्वरेलोकेचैश्वरादनिवर्त्तके
नीयतेसपरेलोकेयावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततःस्वर्गाच्चयुतोमर्त्यो राजाभवतिधार्मिकः
सर्वरोगविनिर्मुक्तोभुनक्तिसधराचरम् । विष्णुश्च देवता येषानर्मदातीर्थसेविनाम्
अखण्डितप्रतापास्ते जायन्ते नाऽत्र संशयः ।

गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ १३ ॥

ग्रामे वा यदिवाऽरण्ये पुण्यासर्वत्रनर्मदा । रेवातीरेवसेन्नित्यं रेवातोयंसदापिवेत्
स स्नातः सर्वतीर्थेषुसोमपानंदिनेनिने । गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्राश्चसरांसिघ
कल्पान्ते सङ्क्षयं यान्ति न मृता तेन नर्मदा ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्ताखण्डे
रेवाखण्डे दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वयशीतितमोऽध्यायः.

त्रयशीतितमोऽध्यायः

हनूमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमशोभनम् । ब्रह्महत्याहरं प्रोक्तं रेवातटसमाश्रयम् ॥

हनूमताभिधं ह्यत्र विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हनूमन्तेश्वरं नाम कथं जातं वदस्व मे । ब्रह्महत्याहरं तीर्थं रेवादक्षिणसंस्थितम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहो! सोमवंशविभूषण !

गुह्याद् गुह्यतर तीर्थं नाख्यात कस्यचिन्मया ॥ ३ ॥

नव स्नेहात्प्रथम्यामि पीडितो वाङ्मकेन तु । पूर्वं जात महद्युद्धं रामरावणयोरपि
पुत्रस्तयो ब्रह्मण पुत्रो विश्रवास्तस्य वै सुत ।

रावणम्लेन संवातो दशास्यो ब्रह्मराक्षस ॥ ५ ॥

शैलोऽभविजयीभूत प्रसादाच्छूलिन स ध ।

गीर्वाणा विजिता सर्व रामस्य गृहिर्णा हुता ॥ ६ ॥

धारित कुम्भकर्णेन सीता मोघयमोघय । विभावणेन वै पापोमन्दोर्दर्यापुन-पुन-
त्वं जित कान्तवीयणरेणुकेयेनमोऽपि ध । सरामोरामभद्रेणतस्यसङ्ख्येक्यजय

रावण उवाच

यानरेक्ष नरेऽर्द्धैर्धराहेक्ष निरायुधे । देवासुरसमूहेक्ष न जितोऽह फदाचन ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुप्रीवहनुमद्गया ध कुमुदेनाङ्गदेन ध । एतैरन्यै महावीक्ष रामचन्द्रेण वै जित
रामचन्द्रेण पौलस्त्यो हत सङ्ख्ये महाबल । घनभग्नहताशूरा भ्रमज्जनसुतेन ध

रावणस्य सुतो जन्येहतध्याक्षकुमारक । शायामोरक्षसां भीम सपिष्टीवानरेणतु
एवं रामायणे वृते सीतामोक्षे वृते सति । अयोभ्यातुगतैरामेइनुमान्समहाकपि

कीलासाख्य गत शील प्रणामाय महेशितु ।

तिष्ठतिष्ठेत्यऽसी प्रोक्तो नन्दिना धानरोत्तम ॥ १४ ॥

ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राक्षसाना धधेन हि । भैरवस्य सभानूत नद्रण्यत्त्वयाकपे
इनुमानुवाच

नन्दिनाथं हरं पूच्छ पातकस्योपशान्तिदम् ।

पापोऽहं प्लवगो यस्मात्सञ्जात कारणान्तरात् ॥ १६ ॥

नन्दुवाच

रुद्रदेहोद्भवार्कि ते न श्रुताभूतले स्थिता । अधणाञ्जन्मजनिनं द्विगुणकीर्तनाद्दृग्नेत्
त्रिशञ्जन्मार्जिनंपापं न श्येद्रेयापगाहनात् । तस्मात्त्वं नमंदातीरगन्थाघत्तपोमहत्

गन्धवाहसुतोऽप्येवंनन्दिनोक्तंनिशम्य च । प्रयातोर्नर्मदातीरमौर्व्यादक्षिणसङ्गमम्
दध्यौ सुदक्षिणे देवं विरूपाक्षंत्रिशूलिनम् । जटामुकुटसंयुक्तंव्यालयज्ञोपवीतिनम्
भस्मोपचितसर्वाङ्गं डमरुस्वरनादितम् । उमार्द्धाङ्गहरंशांतंगोनाथासनसंस्थितम्
चत्सरान्तसुवह्न्यावदुपासाञ्चक्र ईश्वरम् । तावत्तुष्टो महादेव आजगामसहोमया
उवाच मधुरां वाणीं मेवगम्भीरनिस्वनाम् ।

साधुसाध्वित्युवाचेशः कष्टं वत्स त्वया कृतम् ॥ २३ ॥

नचपूर्वत्वयापापंकृतंरावणसङ्क्षये । स्वामिकार्यंरतस्त्वंहिसिद्धोऽसिममदर्शनात्
हनुमांश्च हरं द्रष्टु उमार्द्धाङ्गहरं स्थितम् ।

साष्टाङ्गं प्रणयोऽवोचजय शम्भो! नमोऽस्तु ते ।

जयाऽन्धकविनाशाय जय गङ्गाशिरोधर ! ॥ २५ ॥

एवं स्तुतो महादेवो वरदो वाक्यमब्रवीत् । वरं प्रार्थय मे वत्स प्राणसम्भवसम्भव
श्रीहनूमानुवाच

अह्नरक्षोवधाज्जाता मम हत्या महेश्वर । न पापोऽहंभवेदेव युष्मत्सम्भाषणेक्षणात्
ईश्वर उवाच

नर्मदातीर्थमाहात्म्याद्धर्मयोगप्रभावतः । मन्मूर्त्तिदर्शनात्पुत्र निष्पापोऽसिनसंशयः
अन्यञ्च ते प्रयच्छामि वरं वानरपुङ्गव ! । उपकारायलोकानां नामानितव मारुते
हनूमानञ्जनिस्तुतोवायुपुत्रोमहाबलः । रामेष्टःफाल्गुनोगोत्रःपिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः
उदधिक्रमणश्रेष्ठो दशग्रीवस्य दर्पहा । लक्ष्मणप्राणदाता च सीताशोकनिवर्त्तनः
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेदेव! उमयासह शङ्करः । हनूमानीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तिः
आत्मयोगवलेनेव ब्रह्मचर्यप्रभावतः । ईश्वरस्य प्रसादेन लिङ्गं कामप्रदं हि तत् ॥

अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

हनूमन्तेश्वरे पुत्र! प्रत्यक्षप्रत्ययं शृणु । यद्ब्रूतं द्वापरस्यादौ त्रेतान्ते पाण्डुनन्दन
सुपर्वा नाम भूपालो बभूव वसुधातले ।

तस्य राक्ष सदा सौख्यं नरा दीर्घायुषः सदा ॥ ३७ ॥

स पुत्रधनसयुक्तश्चारीरोपद्रव्यजितः । शतबाहुर्बभूवाऽस्य पुत्रो भीमपराक्रमः ॥

आसक्तोऽस्मीं सदा कालं पापधर्मनरेभ्यः ।

अटाटपत घरा सर्वा पर्वताश्च वनानि च ॥ ३७ ॥

षडधार्थं मृगयूयानामागतो विन्ध्यपर्वतम् ।

तद्वृजानिममार्कणं हस्तियूयसमाचिने ॥ ३८ ॥

सिंहघित्रकशोभाढ्यं मृगवाराहसङ्कुले । ब्राह्मिणत्वासवनेराजा नर्मदामानत वचितः ॥

हनुमन्तघनेप्राप्तः शतक्रोशप्रमाणके । घिघिणाचनशोभाढ्यं कदम्बनरसङ्कुले ॥

नियं पालाशजम्बीरं करद्वलदिरैस्तथा ।

पाटलैर्वदरैर्युक्तं शमीतिन्दुकशोभितम् ॥ ४१ ॥

मृगयूर्धं समाच्छत्रशिखण्डिस्वरनादितम् ।

पारावतकसङ्घाना समन्तात्स्वरशोभितम् ॥ ४२ ॥

शरत्कालेऽरमद्राजा बहुले चाऽश्विनस्य स ।

धनमध्यगतोऽद्राक्षीद् भ्रमन्त पिङ्गलद्विजम् ॥ ४३ ॥

पुस्तिकाकरसस्थं च परच्छं चपत्रं द्विजम् ॥ ४४ ॥

शतबाहुरयाच

एकार्कं त्वं घने कस्माद् भ्रमसे पुस्तिकाकर ।

इतस्तोऽपि सम्पश्यन्कथयस्य द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण उवाच

कान्यकुब्जात्समायात प्रेषितो राजकन्यका ।

अस्थिक्षेपाय वै राजन्हनुमन्तेभ्यरे जले ॥ ४६ ॥

राजोवाच

अस्थिक्षेपो जले कस्माद्धनुमन्तेभ्यरे द्विज ।

क्रियते केन कायण साध्वर्यं कथ्यता मम ॥ ४७ ॥

सुपर्वणः सुतोऽयानं त्यक्त्वा भूमौ प्रणम्य च ।

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाब्राह्मणायनरोऽवर ! । तमस्तं कथयामासवृत्तान्तंस्त्वं पुरातनम्

ब्राह्मण उवाच

शिवण्डीनाम राजाऽस्ति कान्यकुब्जे प्रतापवान् ।

अपुत्रोऽसौ महीपालः कन्या जाता मनोरथः ॥ ४६ ॥

जातिस्मरा सुघार्वङ्गी नर्मदायाः प्रभावतः ।

पित्रा च सैकदा कन्या विवाहाय प्रजल्पिता ॥ ५० ॥

वनित्ये पुत्रि! संसारे कन्यादानं ददाम्यहम् ।

श्वः कृत्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चाऽपराह्निकम् ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं घास्य न घाकृतम् ॥ ५२ ॥

कन्योवाच

दृच्छेयं यत्र काले हि तत्र देया त्वया पितुः ।

पुत्रीवाक्पादसौ राजा विस्मितो घातमववर्षीत् ॥ ५२ ॥

शिष्यण्ड्युवाच

कथ्यतां मे महाभागे! साश्चर्यं भाषितं त्वया ।

पितुर्वाक्येन सा बाला उत्तमा हागतान्तिकम् ॥ ५३ ॥

कथयामास वद्वृत्तं हनूमन्तेश्वरे नृप । कलापिनी एहं तात युता भर्त्रावसं तदा

रेवोर्व्यासंगमान्निःस्रया रेवायादक्षिणेतटे । हनूमन्तवनेपुण्येचिक्रीडाहं यदृच्छया

भर्तृयुक्ता च संसुभारजन्यां सरलेनगे । आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधात्ताविनमुत्तमम्

भर्तृयोगयुता पापैर्दृष्टाऽहं वधच्छिन्तकैः । पाशवधंसमादाय बद्धाहं स्वमिनासह

श्रीषां ते मोटयामासुः पिच्छाच्छोदनकं कृतम् ।

दुताशनमुखे तैस्तु सह कान्तेन लुब्धकैः ॥ ५८ ॥

परिमज्ज्यावयोर्मांसं भक्षयित्वा यथेष्टतः ।

दुताः स्वस्थेन्द्रियाः रात्रौ सा गताः शर्वरी क्षयम् ॥ ५९ ॥

प्रभाते मासशेखरं जम्बुकैर्गृध्रयातिमि ।

मच्छरीरोद्भवं चास्थि ख्यायुमांसेन घावृतम् ॥ ६० ॥

गृहीत घातिर्नकेन चाकाशात्पतित तदा ।

त मामभक्षणं दृष्ट्वा परे पक्षिण आगता ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा पक्षिसमूहं तु अस्थिखण्डं व्यसर्जयत् ।

विहगानां समस्नानां घावतां चैव पश्यताम् ॥ ६२ ॥

पतित नर्मदातोये हनूमन्नेश्वरे नृप । मदीयमस्थिखण्डं च पतित नर्मदाजले ॥ ६३

तस्यतीर्थस्यपुण्येनजाताऽहपुरिका तव । भूपकन्यात्वद्विजातापूर्णचन्द्रनिमानना

जातिस्मरानरेन्द्रस्यमजाताभगत कुत्रे । तस्माद्विवाहं नेच्छामिममभर्तानृपोत्तम

विषमे वृत्तंतेऽद्यापि शत्रुन्तमृगजातिषु ।

तस्यास्थिशेषं राजेन्द्र! तस्मिंस्तीर्थे भविष्यति ॥ ६६ ॥

तत्क्षेपणार्थं वै तात प्रेय्याऽद्य द्विजोत्तमम् । एतत्ते सर्वमाख्यात कारणनृपसत्तम

मद्भर्ता विषमे स्थाने शत्रुन्तमृगजातिषु । यदि प्रेयसे नात कञ्चित्त्वं नर्मदातटे

तस्याह कथयिष्यामि स्थानैर्द्विद्वैश्वलक्षितम् ।

शिरण्डिनाऽप्यहं तत्र द्वाद्द्वतो ह्यवनीपने ॥ ६६ ॥

दास्यामिचिशतिप्रामाण्यगच्छत्वं नर्मदातटे । प्रेरणमेप्रतिज्ञातमलक्ष्म्यापीडितेनतु

वन्योघाघ

गच्छ त्वं नर्मदापुण्यांसर्वपापक्षयद्वुरीम् । आग्नेष्यांसोमनाथस्यहनूमन्नेश्वरपर

अक्षप्रवेशेन रेखाया विस्तीर्णो वटपादप । करञ्ज कटहलैश्च सन्निधाने घटान्य च

न्यप्रोधमूलमाश्रित्ये सूक्ष्मान्यस्वीनि द्रश्यन्ति ।

समृद्य तानि सगृह्य गच्छ रेवां द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥

आभिनस्येऽन्नित पक्षे त्रिपुरारस्तु ये तिथी ।

स्नाप्य त्रिशूलिनं भक्त्या राश्रीं त्वं कुरु जागरम् ॥ ७४ ॥

क्षिपे प्रमात तानि त्वं नाभिमात्रजलस्थितम् ।

इत्युच्चार्यं द्विजश्रेष्ठ! विमुक्तिन्तस्य जायताम् ॥ ७१ ॥

क्षिप्त्वाऽस्यीनि पुनः स्नानं कर्त्तव्यं त्वघनाशनम् ।

पयं कृते तु राजेन्द्र! गतिन्तस्य भविष्यति ॥ ७२ ॥

कथितं कन्यया यच्च तत्सर्वं पुस्तिकाकृतम् ।

आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ! तीर्थेऽप्र दुरितापहो ॥ ७३ ॥

सोऽमिरानंततोदृष्टानीत्वाऽस्यीनिनरेश्वरः! पूर्वोक्तैर्नविधानेनप्राक्षिपंतर्मदाम्भसि

पुष्यवृष्टिःपपाताऽऽशु साधुसाध्यिनि पाण्डव !

विमानं च ततो दिव्यमागतं वर्हिणस्तदा ॥ ७४ ॥

दिव्यरूपधरो भूत्वा गतो नाफे कलापवान् ।

पयं तु प्रत्ययं दृष्ट्वा हनूमन्तेश्वरे नृप ॥ ७५ ॥

चकारानशनं विप्रः शतबाहुश्च भूपतिः । शोषयामासतुस्तीं स्वर्माश्वराराधनेरतीं

ध्यायन्तीं तस्यतुर्द्वयं शतबाहुद्विजोत्तमीं । मासाधेनमृतोराजा शतबाहुर्महामनाः

किङ्कणीजालशोभाढ्यं विमानं तत्रचागतम् । साधुस्ताधुनृपश्रेष्ठविमानारोहणंकुरु

शतबाहुरुवाच

नायामि स्वर्गमार्गाग्रं विप्रो याचन्न नंस्थितः ।

उपदेशप्रदो मह्यं गुरुरूपी द्विजोत्तमः ॥ ७६ ॥

अप्सरस ऊचुः

लोभावृतो ह्ययं विप्रो लोभात्पापस्य संग्रहः ।

हनूमन्तेश्वरे राजन् ! ये मृताः सत्त्वमास्थिताः ॥ ७७ ॥

ये यान्ति शाङ्करेलोके सर्वपापक्षयङ्करे । नैवपापक्षयध्यास्य ब्राह्मणस्य नरेश्वर !

गृहं च गृहिणीञ्चित्तब्राह्मणस्य प्रवर्त्तते । शतबाहुस्ततो विप्रमुवाच विनयान्वितः

त्यजमूलमनर्थस्यलोभमेनंद्विजोत्तम । इत्युक्त्वास्वर्ग्ययोराराजास्वर्गकन्यासमावृतः

दिनेः कौश्विद्वतो विप्रः स्वर्गं वेतालिकैर्धृतः ।

चर्हो च काशीराजस्य पुत्रस्तीर्थप्रभवतः ॥ ७८ ॥

आत्मानं कन्यया दत्तं पूर्वजन्म व्यचिन्तयन् ।

सा च तं प्रौढमालोक्य पितुराज्ञामवाप्य च ॥

स्वयम्बरे स्वभर्तारं लेभे साध्या नृपात्मजम् ॥ ६० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतद्वृत्तान्तमभवत्तस्मिन्स्तीर्थेनृपोत्तम । एतस्मात्कारणान्मेभ्यताधमेतत्सदात्

अप्रम्याचा चतुर्दश्या सर्वकालनरेभ्यः । विशेषाच्चाग्निनेमामि वृष्णपक्षेचतुर्दशी

स्नापयेद्दाश्वर भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिणा ।

दध्ना च खण्डयुक्तेन कुरातोयेन वै पुनः ॥ ६३ ॥

श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्डयेच्च महेश्वरम् । ततः सुगन्धपुष्पीञ्च विश्वपत्रैश्च पूजये

मुचुकुन्देनकुन्देन जातीकाशकुशोद्भवैः । उमन्मुनिपुष्पीञ्चैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवं

अभयेत्परया भक्त्या हनूमन्तेश्वर शिवम् । गुनन दापयेद्द्वीप मैलेन तद्भायत

श्राद्धं च कारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुर्वाणैर्गृहपालैर्ब

तपयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या घसनाभ्रहिरण्यतः ।

नरकस्था दिव यान्तु प्रोच्येति प्रणमेद् द्विजान् ॥ ६८ ॥

पतितान्वजयेद्ब्रह्मविप्रान्वृषली यस्य गेहिनी । स्ववृषञ्चापस्तिवज्यवृषैरन्यैर्गुणाय

वृषलीं तां चिदुर्द्धवा न शूद्री वृषली भवेत् । ब्रह्महत्या सुरापान गुरदारनियेण

सुवर्णहरणन्यास मित्रद्रोहोद्भव तथा । नश्यते पातकं सर्वमियेव शङ्करोऽग्रवी

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वाक्प्रलापेन भो घत्स यहुनोक्तेन किं मया । सर्वपातकसयुक्तो दद्याद्दानद्विजन्मं

गोदानञ्च प्रकृतव्यमस्मिन्स्तीर्थ विशेषतः ।

गोदानं हि यत् पाथं सर्वदानाधिकं स्मृतम् ॥ १०३ ॥

मघदेवमया गावसचदेवास्तदात्मका । शृङ्गाग्रेषुमर्हापालशक्रोवसतितिव्यश

उरस्कन्दशिरोऽखाललान्पृथग्भव्यज । घन्द्राकलोघनेर्देशोजिह्वायाञ्चसरस्यर्त

महद्गणाः सदा साध्या यस्या दन्ता नरेभ्यः ।

हुङ्कारे चतुरो वेदान्विद्यात्साङ्गपदक्रमान् ॥ १०५ ॥

ऋषयो रोमकूपेषु ह्यसङ्ख्यातास्तपस्विनः ।

दण्डहेस्तो महाकायः कृष्णो महिषवाहनः ॥ १०६ ॥

यमः पृष्टस्थितो नित्यं शुभाशुभपरीक्षकः ।

चत्वारः सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ १०७ ॥

विष्णुपादोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापनाशिनी ।

प्रस्रावे संस्थिता यस्मात्तस्माद्बन्धा सदा बुधैः ॥ १०८ ॥

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला ।

गोमयालेपनं तस्मात्कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ! ॥ १०९ ॥

गन्धर्वाप्सरसोनागाः खुराश्रेषु व्यवस्थिताः ।

पृथिव्यां सागरान्तायां यानि तीर्थानि भारत !

तानि सर्वाणि जानीयाद्दौर्गव्यं तेन पाचनम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वदेवमयी धेनुर्गोर्वाणाद्यैरलङ्कृता । एतत्कथयमे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयो विष्णुर्गावो विष्णुशरीरजाः ।

देवास्तदुभयात्तस्मात्कल्पिताविविधा जनैः ॥ ११२ ॥

श्वेता वा कपिला वापि क्षीरिणी पाण्डुनन्दन ।

सवत्सा च सुशीला च सितवस्त्राऽवगुण्ठिता ॥ ११३ ॥

कांस्यद्रोहनिका देया स्वर्णशृङ्गी सुभूषिता ।

हनुमन्तेश्वरस्याऽग्रे भक्त्या विप्राय दापयेत् ॥ ११४ ॥

नियमस्थेनसा देयास्वर्गमानन्त्यमिच्छता । असमर्थायैवेद्युर्विष्णुलोकेप्रयान्तिने

असौलोकेच्युतोरारजन्भूतले द्विजमन्दरे । कुशलोजायतेपुत्रोगुणविद्याधनर्द्धिमान्

सर्वपापहरं तीर्थं हनुमन्तेश्वरं नृप ! शृण्वन्विमुच्यते पापाद्घर्णसङ्कुसम्भवात् ॥

दूरस्थश्चिन्तयन्पर्यन्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ११८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया पञ्चमेऽवन्तीषण्डे

रेवासण्डे हनुमन्तेभरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अश्वेतोदाहरन्तीभमितिहासं पुरातनम् ।

कौलासे वृच्छते भक्त्या यणमुत्साय शिचोदितम् ॥ १ ॥

इति उवाच

पूर्वत्रेतायुगेस्कन्द! हतोरामेणरावण । चतुर्दश तदा कोट्यो निहता ब्रह्मरक्षसाम्

हनेषु तेषु धी तत्र रक्षणाय दिवीकसाम् । महानन्दस्तदा जातस्त्रिषु लोकेषु पुत्रक

तत मीतासमासाद्यममवानरपुङ्गवै । रामोऽप्ययोध्यामायातो भरतेनकृतोत्सव

तरुमे समर्पयामास स राज्यं लक्ष्मणाग्रज ॥ ४ ॥

तस्मिन्प्रशासति ततो राज्यं निहतकण्टकम् ।

कृतकार्योऽथ हनुमान्कौलासमत्पुरा ॥ ५ ॥

ततो नन्दीप्रतीहारोरुद्राशमपि तं कपिम् । नक्षसङ्गमयामानरुद्रेणाऽधोघृष्टारिणा

तेन वृणस्तदा नन्दी किं मया पानक वृतम् ।

येन रुद्रवपुः पुण्यं न पश्याम्यम्बिकान्वितम् ॥ ७ ॥

नन्दुवाच

त्यथाऽचतरणं चान्ते ॥ १ ॥

॥ याऽपि हि वृत्त पापमुपमोगेनशाम्यति

हनुमानुवाच

किं मयाऽकारि तत्पापं नन्दिन्दैवार्थकारिणा ।

राक्षसाश्च हता दुष्टा चिप्रयशाङ्गवातिनः ॥ ६ ॥

ततन्तदालापकुतूहली हरो निजांशभाजं कपिमुग्रतेजसम् ।

उवाच द्वारान्तरदत्तदृष्टिः पुरः स्थितं प्रेक्ष्य कपीश्वरं पुनः ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

गङ्गा गया कपे! रेवा यमुना च सरस्वती । सर्वपापहरानद्यस्तामुन्नानं समाचर

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सोमनाथसमीपस्थं तत्र त्वं गच्छ वानर

तत्र स्नात्वा महापापं गमिष्यति ममाऽऽजया ।

उत्पत्य वेगाद्धनुमाञ्छीरेवादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

जगाम सुमहानादस्तपश्चक्रे सुदुष्करम् । तस्य चै तप्यमानस्य रक्षोवधकृतं तमः

विलीनं पार्थ कालेन कियतेशप्रसादतः । ततो देवैः समं देवस्तत्तीर्थमगमद्भरः ॥

कपिमालिङ्ग्यामास घरं तस्मैप्रदत्तवान् । अद्यप्रभृति ते तीर्थं भविष्यति न संशयः

कपितीर्थं ततो जातं तस्यौ तत्र स्वयं हरः । हनूमन्तेश्वरोनाम्नासर्वहत्याहरस्तदा

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या लिङ्गं प्रपूजयेत् ।

सर्वपापानि नश्यन्ति हरस्य घघनं यथा ॥ १८ ॥

तत्राऽस्थीनि विलीयन्ते पिण्डदानेऽक्षया गतिः ।

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तद्भि कोटिगुणं भवेत् ॥ १९ ॥

हनुमानप्ययोध्यायां रामद्रष्टुमथाऽगमत । चकार कुशलप्रश्नंस्वस्वरूपंन्यवेदयत्

श्रीराम उवाच

कुर्वतोदेवकार्यं तेममकार्यं च कुर्वतः । ततोऽहमपिपापीयांस्तपस्तपस्याभ्यसंशयम्

तत्रैव दक्षिणे कूले रेवायाः पापहारिणि । अतुर्विंशतिवर्षाणि तपस्तेपेऽथराघवः

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थः श्रीरेवास्नानमाचरन् ।

स्थापयामासतुलिङ्गे तौ तदारामलक्ष्मणौ । प्रभावात्सत्यतपसोरेवार्तीरेमहामती

निष्पापता तदा वीरी जग्मन् रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

ततस्तदा देवपुरोगमो हरो गतो हि धी पुण्यमुनीवरै सह ।

आगत्य तीर्थं धर दरु ददौ तदा निजा कला तत्र विमुच्य तीर्थे ॥ २५ ॥

मुनिभि सवतीर्थाता क्षित कुम्भोदक भुवि ।

एकस्य लिङ्गनामाध कलाकुम्भस्तथाऽभवत् ॥ २६ ॥

कुम्भेऽवर् इति ख्यातस्तदा देवगणार्धित ।

रामोऽपि पूजयामास तद्विङ्ग देवसेवितम् ॥ २७ ॥

ततो धर ददौ देवो रामकीर्त्यभिदृष्टये । चतुर्विंशतिमे धर्मे रामो निष्पापतागत

यदा कन्यागत पद्भुगुरुणा सहितो भवेत् । तदेवदेवयात्रेयमिति देवा जगुमुदा ॥

यथा गोदावरीतीर्थं सवतीर्थफल भवेत् । तथाऽत्रेवास्नानेनलिङ्गानादर्शनेऽपि नाम्

करिष्यन्त्यत्र ये श्राद्धपितृणामप्रदातटे । कुम्भेऽवसमीपस्थास्तत्फलशृणुष्वमुख

याचन्तो शोभकृपा स्यु शरीरेसवद्देहिताम् । तावद्वर्षप्रमाणेनपितृणामभयाभति

पृथिव्या देवता सर्गं सर्वतीर्थानि यानि तु ।

तन्मन्त्रे तत्फल मर्त्या लिङ्गत्रयचिलोकनात् ॥ ३३ ॥

अपुत्रो लघनेपुत्रनिन्दनोघनमाप्नुयान् । सरोगोमुच्यतेरोगाक्षाऽत्रकायाविघारणा

सिंहराशिगते जीवे यत्स्याद्गोदावरीफलम् ।

तद्वद्वादशगुण स्वन्दं कुम्भेऽवसमीपत ॥ ३५ ॥

ये जानन्ति न पश्यन्ति कुम्भशम्भुमुपापतिम् ।

नर्मदादक्षिणे कृते तेषा जन्म निरथकम् ॥ ३६ ॥

यथा गोदावरीयात्राकसंगामुनिशासनात् । चतुर्विंशतिमे धर्मेनयेयदेवमापितम्

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावच्च दिवि नारका । तावत्तदक्षयं दानंरेवाकुम्भेऽवसान्तिके

महादानानि दीयानि तत्र लीकीर्विघ्नशृणौ । गोदान्प्रशंसन्ति सौम्यं राजनतया

स्नानेन किं पुनः स्कन्द ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४० ॥

तत्र तीर्थेतुयःस्नात्वाश्राद्धं कुर्याद्युधिष्ठिर । एकोत्तरंकुलशतमुद्धरेच्छिवशासनात्
यानि कानि च तीर्थानि चासमुद्रसरांसि च ।

शिवलिङ्गाच्च नस्येह कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४२ ॥

एवं देवा वरं दत्त्वाहरीश्वरपुरोगमाः । स्वस्थानमगमनपूर्वमुक्त्वातन्नामचोत्तमम्
तीर्थस्याऽस्य वरं दत्त्वा स रामो लक्ष्मणाग्रजः ।

अयोध्यां प्रविवेशाऽसौ निष्पापो नर्मदाजलात् ॥ ४४ ॥

सौवर्णीं च ततः कृत्वा सीतां यज्ञं चकार सः ।

अनुमन्थ्य मुनील्लोकान्देवताश्च निजं कुलम् ॥ ४५ ॥

पुरा त्रेतायुगे जातं तत्तीर्थं स्कन्दनामकम् ।

नियमेन ततो लोकैः कर्त्तव्यं लिङ्गदर्शनम् ॥ ४६ ॥

तावत्पापानि देहेषु महापातकजान्यपि । यावन्नप्रेक्षते जन्तुस्तत्तीर्थं देवसेवितम्
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थं ये द्रक्ष्यन्ति हरं परम् ॥ ४८ ॥

तस्मान्मोहं परित्यज्य जनैर्गन्तव्यमादरात् ।

तीर्थाऽशेषफलावाप्त्यै तीर्थं कुम्भेश्वराह्वयम् ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेति शम्भुवचसा स पडाननोऽथ नत्वा पितुःपदयुगाम्बुजमादरेण ।

सम्प्राप्य दक्षिणतटं गिरिशखवन्त्याःकीशाग्रयरामकलशाख्यशिवात् ददर्श
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमैऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णननामः

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः.

सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनर्मदाया पुरातनम् । ब्रह्महत्याहरतीर्थं वाराणस्यासमहितम् ।
युधिष्ठिर उवाच

भाक्ष्यं कथ्यता ब्रह्मन्यद्वृतनमदातटे । वाराणस्या सम कस्मादेतत्कथयमे प्रभो
निमग्नो दुःखससारे हृतराज्यो द्विजोत्तम ।
युष्मद्गार्गीजठस्नातो निर्दुःख सह वान्धवै ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

माधुमाधु महाबाहोसोमवशविभूषण । पृणोऽस्मिदुल्लभतीर्थं शुराद्गुणतरपम्
आदौ पितामस्तावत्समस्तजगत प्रभु ।
मनसा तस्य सञ्जाता दशैव ऋषिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

मरीचिमथ्यङ्गिरसो पुत्रस्त्य पुलह मतुम् । प्रचेतस यमिष्ठ च भृगु नागमेव च
जज्ञे प्राचेतस दश महातेजा प्रजापति ।

दक्षस्याऽपि तथा जाता पञ्चाशद् दुहिता वि ॥ ७ ॥

ददौ स दश धमाय कश्यपाय त्रयोऽश । तथैव स महाभाग समविशतिमिन्द्रे
रोहिणी नाम या नामामभीष्टा साऽभवद्विधो ।

शेयामु वरुणा वृथा शनो दक्षेण चन्द्रमा ॥ ९ ॥

क्षयरोग्यमवशन्द्रो दक्षस्याय प्रजापते । सच शापप्रभावेण निस्तेजाः शर्वरीपति
गत पितामह सोमो धेपमानोऽमृताशुमान् ।

पद्मयोने नमस्तभ्य देवगम नमोऽस्तु ते ॥

ब्रह्मोवाच

निस्तेजाः शर्वरीनाथ कलाहीनश्च दृश्यसे । उद्विग्नमानसस्तात सञ्जातश्चेनहेतुना
सोम उवाच

दक्षशापेन मे ब्रह्मन्निस्तेजस्त्वंजगत्पते । निर्हारश्चाऽस्यशापस्यकथ्यतांमेपितामह
ब्रह्मोवाच

सर्वत्र सुलभा रेवा त्रिपु स्थानेषु दुर्लभा । ओङ्कारेऽथभृगुक्षेत्रे तथाचैवोर्विसङ्गमे
तत्र गच्छ क्षपानाथयत्र रेवान्तरं तदम् । त्वरितोऽसौ गतस्तत्रयत्ररेवोर्विसङ्गमः
काष्ठावस्थः स्थितः सोमो दध्यौ त्रिपुरवैरिणम् ।

यावद्वर्षशतं पूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १६ ॥

प्रत्यक्षः सोमराजस्य वृषासन उमापतिः ।

नाष्ट्राङ्गं प्रणिपत्योच्चैर्जय शम्भो! नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥

जय शङ्कर! पापहराय! नमोजय ईश्वर ते जगदीश! नमः ।

जय वासुकिभूषणधार! नमो जय शूलकपालधराय नमः ॥ १८ ॥

जय अन्धकदेहविनाश! नमो जय दानववृन्दवधाय नमः ।

जय निष्कलरूप! सकलाय नमोजय काल कामदहाय नमः ॥ १९ ॥

जय मेचककण्ठधराय नमो जय सूक्ष्मनिरञ्जनशब्द! नमः ।

जय आदिरनादिरनन्त! नमो जय शङ्कर! किङ्करमीश भज ॥ २० ॥

एवं स्तुतोमहादेवःसोमराजेनपाण्डव । तृप्तस्तस्य नृपश्रेष्ठ! शिवयाशङ्करोऽब्रवीत्
ईश्वर उवाच

वरं प्रार्थय मे भद्र! यत्ते मनसि वर्त्तते । साधुसाधुमहासत्त्व तुष्टोऽहं तपसा तव
सोम उवाच

दक्षशापेन दग्धोऽहं क्षीणसत्वो महेश्वर । शापस्योपशमं देव कुरु शर्म मम प्रभो ! ॥
ईश्वर उवाच

तव भक्तिगृहीतोऽहमुमया सह तोषितः ।

स्युवाच

सन्देशं श्रूयतां विप्र! यदि गच्छसि सङ्गमे ।

मद्भर्ता तिष्ठते तत्र शीघ्रमेव विसर्जय ॥ ४१ ॥

काकिनी च ते भार्या तिष्ठते वनमध्यगा । इत्याकर्ण्यगतोविप्र सङ्गमे सुगदुर्लभे
वृक्षच्छायाऽन्वितः कण्वो ब्राह्मणेनाऽवलोकितः ।

उवाच तं प्रति तदा वचनं ब्राह्मणोत्तमः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच

वनान्तरे मया दृष्टा बाला कमललोचना । रक्ताम्बरधरा तन्वी रक्तचन्दनचर्चिना
रक्तमालया सुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेशणा ।

वृक्षारूढाऽवदृष्टाक्यं मद्भर्ताप्रेष्यतामिति ॥ ४२ ॥

कण्व उवाच

कस्मिन्स्थाने तु विप्रेन्द्रविद्यते मृगलोचना । कस्यसाकेनकार्येणसर्वमेतद्ददाशु मे-

ब्राह्मण उवाच

सङ्गमादर्द्धकोशे सा उद्यानान्तेहिविद्यते । वचनाद्ब्राह्मणस्यैतन्नजानापार्थिवेन तु
तदा स कण्वभूपालः स्वकं दूतं समादिशत् ।

कण्व उवाच

गच्छ त्वं पृच्छतां तां काऽऽगता क्व च गमिष्यसि ।

प्रेषितस्त्वरितो दूतो गतो नारीन्मीपतः ॥ ४८ ॥

वृक्षस्थां ददृशे बालामुवाच नृपसत्तम !

मन्नाथः पृच्छति त्वां तु काऽसि त्वं क्व गमिष्यसि ॥ ४६ ॥

कन्योवाच

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।

इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५० ॥

ब्रह्महत्याघसञ्जाता मृगरूपधरद्विजात् । मयायुक्तोऽपितैराजामुक्तस्तीर्थप्रभावतः

अर्द्धत्रोशान्तरान्मध्ये ब्रह्महत्या न सम्भिशोत् ।

सोमनाथप्रभाचोऽय घाराणस्या समं स्मृतं ॥ ५२ ॥

गच्छन्व प्रप्यता राजाशाद्रमत्र न मगध । गतोभृत्यस्ततःशीघ्रंविपमानमुचिह्व
समन्वकथयामासपटुवृत्तहि पुरातनम् । तस्यवाक्पादमौराजापतितोधरणीतन

भृत्य उवाच

कम्मात्त्व शोचसे नाथ' पूर्वोपात्त शुभाशुभम् ।

इयाकर्ण्य वचमनस्य राजा वचनमप्रवीत् ॥ ५० ॥

प्राणराग करिष्यामि सामनाथममोपत ।

शोत्रमानीयता वद्विरिन्धनानि वद्वनि च ॥ ५१ ॥

आनात तन्पणात्मवर्धं भृशैस्त्रिदशवर्तिभि । स्नानकृत्वाशुमेतोयेसङ्गमेपापताशने
वर्धित परया मकन्या सोमनाथो प्रहोभृता ।

त्रि प्रदक्षिणत कृत्वा ज्वरन्त जातरेदसम् ॥ ५८ ॥

प्रविष्ट वप्यराजाऽर्मा हृदि ध्यात्वा जनादनम् ।

पीताम्बरधर देव जटामुकुटधारिणम् ॥ ५६ ॥

धियायुक्तं सुपणस्य शङ्खध्वजगदाधरम् । सुरारिखरन दध्यां सुरातिर्मे भवत्विति
पपात पुष्यवृष्टिस्तु साधुसाधु नृपात्मज ।

आध्वयमनुलं दृष्ट्वा किरीड्य च परस्परम् ॥ ६१ ॥

मृत ते पाचरे भृशं हृदि ध्यात्वा गदाधरम् ।

विमानस्यास्तत सर्वे सञ्जाता पाण्डनन्दन ॥ ६० ॥

निपापान्निर्दिशता सामनाथप्रभायत । छाहणेसङ्गमेतप्रध्यायमानेवृषच्चक्रम्
धीमावण्डेय उवाच

सोमनाथप्रभाचोऽयःशुभ्यैकमनाविधिम् । ब्रह्मया धा वतुदस्यामवषात्ररेदिने
विशाराच्छुभ्रपक्षवेत्तवृषवारणसप्तमी । उपोष्य यानरोमव पाराश्रीकुर्योतनागरम्
पञ्चामृतत गव्येन छापयन्परमेष्ठरम् । धीघण्डेन ततो गुण्यपुष्पपूपादिषु ददत्

नवोधयेद्दीपं नृत्यंगीतं च कारयेत् । सोमवारे तथाऽष्टम्यां प्रमाते पूजयेद्द्विजान् ।
जितक्रोधानात्मवतः परनिन्दाविचर्जितान् ।

सर्वारुचिराञ्छस्तान् स्वदारपरिपालकान् ॥ ६८ ॥

त्यत्रीपाठमात्रांश्च चिकमं विरतान्सदा । पुनर्भूवृषली शूद्री श्वरेयुर्यस्य मन्दिरं ॥

दूरतोऽसौ द्विजस्त्याज्य आत्मनः श्रेय इच्छता ।

हीनाङ्गाऽनतिरिक्तांगान्येषां पूर्वापरं न हि ॥ ७० ॥

व्रजे श्राद्धे तथा दाने दूरतस्तान् विचर्जयेत् ।

आयसीतरुणीतुल्या द्विजाः स्वाध्यायवर्जिताः ॥ ७१ ॥

आत्मानं सह याज्येन पातयन्ति न संशयः ।

शाल्मलीनावतुल्याः स्युः पट्टकर्मनिरता द्विजाः ॥ ७२ ॥

तारंघतथाऽऽत्मानं तारयन्ति तरन्ति च । श्राद्धं सोमेश्वरेपर्य्युःशुः कुर्याद्गतमत्सरं :

प्रेतास्तस्य हि सुप्रीता यावदाभूतसम्प्लवम् ।

अन्नं वस्त्रं हिरण्यं च यो दद्यादप्रजन्मने ॥ ७४ ॥

स यातिशाङ्करेलोक इति मे सत्यभाषितम् । ह्यंगयोयच्छते तत्र सम्पूर्णतरुणंसितम्

रक्तं वा पीतवर्णं वा सर्वलक्षणसंयुतम् । कुङ्कुमेन चिल्लिताङ्गावप्रजन्महयावपि ॥

स्रग्दामभूपितौ कार्यौ सितवस्त्रावगुण्डितौ ।

अङ्घ्रिः प्रदीयतां स्कन्धे मदीये ह्यमारुह ॥ ७७ ॥

आरूढे ब्राह्मणे प्रूयाद्वास्करः प्रीयतामिति । स यातिशाङ्करं लोकं सर्व्वपापविचर्जितः

उपरागे तु सोमस्य तीर्थं गत्वा जितेन्द्रियः ।

सत्यलोकाच्च्युतश्चाऽपि राजा भवति धार्मिकः ॥ ७६ ॥

तस्य वासः सदारान्न नश्यति कदाचन । दीर्वायुर्जायते पुत्रो भार्या च वशवर्तिनी

जीवेद्दर्पशतं साग्रं सर्वदुःखविचर्जितः । सोपवासो जितक्रोधो धेनुं दद्याद्द्विजन्मने

सवत्सां क्षीरसंयुक्तं श्वेतवस्त्रावलोकिताम् ।

शबलां पीतवर्णाञ्च धूम्रां वा नीलकवुराम् ॥ ८२ ॥

कपिला धा सवत्सां च घण्टामरणमूयिताम् ।

रूप्यामुरा काम्यदोहा स्वर्णाङ्गीं नरेभर ॥ ८३ ॥

श्रेतवापद्भतेवशोरक्तासौभाग्यवर्द्धिनी । शबलापीतवर्णांघ हुंखघ्न्योमम्प्रकीर्तिने

कपितानाशयेत्पाप समजन्मममुद्भवम् । मत्यगोकमवाप्नोति गोप्रदाया नरेभर ॥

पक्षान्तेऽथव्यतीपानेवै तृतीरधिसडनमे । दिनक्षये गनच्छाया ग्रहणेमास्करम्यथ

ये व्रजन्ति महात्मान सद्भ्रमेसुरदुर्हभे । मृदाचगुण्टयित्वातुघातमानसङ्गमेविशेन

हृद्यान्तजलेजाप्याप्राणायामोऽथवानृष । गायत्रीवैष्णवीर्षीर्षीश्चसौरीशैवायदृच्छया

तेऽपि पापै प्रमुच्यन्त इत्येवं शङ्करोऽप्रवीन् ॥ ८८ ॥

जगतीं सोमनाथस्य यस्नु कुर्या प्रदक्षिणाम् ।

प्रदक्षिणीकृता तेन समङ्गीपा यसुन्धरा ॥ ८९ ॥

अदहत्या मुरापानगुरुदारनियेयणम् । भ्रणहा स्वणहन्ता च मुच्यन्तेनाऽनमशय

तीर्थात्पानमिद पुण्यं य शृणोति जितेन्द्रिय ।

व्याधितो मुच्यते रोगी चारोगी सुखमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥

यत्ते सन्दहते चेत शृणु तन्मे युधिष्ठिर ।

नैकाऽपि नृप' लोकेऽम्मिन्भ्रणहत्या सुदुस्त्यया ॥ ९२ ॥

किमु पद्भिशति पाथ' प्राप या क्षणदाकर ।

सोऽपि तीवमिद प्राप्य तपस्तपत्वा सुदुधरम् ॥ ९३ ॥

विमुक्त सवपापेभ्य शीतरश्मिभू सुखी । श्रूयतेनृपर्षीरार्णीगाथागीतामहर्षिभि

त्किं प्रतिष्ठितलोकदशभ्रणहन भवेत् । अतोत्किं श्रूयंमोम स्थापयामासभारत

मेचोरिसद्भ्रमे द्वाय द्वितीयभृगुच्छ्लोके । तत सिद्धि परा प्राप्यप्रभासे तुकृतायकम्

इति ते कथित मयै तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मशुद्धिदृन्तृणाम् ॥ ९७ ॥

पुत्रार्थो लभते पुत्राश्रिष्काम स्वर्गमाप्नुयात् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तार्थं कृत्वा पर नृप' ॥ ९८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं सोमनाथस्य यत्फलम् ।

श्रुत्वा पुत्रमवाप्नोति स्नात्वा चाऽष्टौ नसंशयः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे ण्काशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवास्रण्डे सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

पञ्चशीतितमोऽध्यायः

पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज पिङ्गलावर्त्तमुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं रेवायाउत्तरेतटे
हव्यवाहेन राजेन्द्र! स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हव्यवाहेन भगवन्तीश्वरः स्थापितः कथम् । एतदाख्याहि मे सर्वप्रसादाद्वक्तुमहंसि
मार्कण्डेय उवाच

शम्भुना रेतसाराजं स्तर्पितो हव्यवाहनः । प्राप्तसौख्येन रौद्रेण गौर्याक्रीडनचेतसा
हव्यवाहमुखे क्षिप्तं रुद्रेणामिततेजसा । रुद्रस्य रेतसा दग्धस्तीर्थयात्राकृतादरः ॥
सागरांश्च नदीर्गत्वाक्रमाद्रेवां समागतः । घञ्चारपरयाभक्त्या ध्यानमुग्रं हुताशनः
वायुभक्षः शतं साग्रं यावत्तपे हुताशनः । तावत्तुष्टो महादेवो वरदो जातवेदसः ॥
नन्निधौ समुपेत्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्व हव्याश! यत्ते मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

वह्निस्त्वाच

नमन्ते सर्वलोकेश! उग्रमूर्ते नमोऽस्तु ते । रेतसा तव सन्दग्धः कण्ठीजानो महेष्टन

उपा कुरु महादेव' मम रोग चिन्ताशय ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच

हव्यवाह' भवारोगो मत्प्रमादाच्च मत्पथम् ।

अत्रतीर्थे वृत्तम्नान स्वरूप प्रतिपत्स्यसे ॥ ९ ॥

इयुस्त्वा च महादेवस्तत्रैवान्तर्धीयत । अनन्तरहव्यवाह सम्भारैवान्नेत्वरत्न
तदेवरोगनिमुक्तोऽभवद्दिव्यम्वरूपवान् । स्थापयामासदेवेशमचद्वि'पिङ्ग'श्वरम्
नाम्नामभून्वयामासनुषाचस्तुतिभिमुदा । ततोऽनगामदेश स्व देवानाहव्यवाहन'
हव्यवाहेन भूषेच स्थापित पिङ्ग'श्वर' । जितक्रो'रोहियस्तत्रउपवाससमाचरत्
अतिरात्रफ' तस्य अन्ते हृदत्वमाप्नुयात् ।

गुणान्विताय विश्राय कपिल तत्र भारत ॥ १४ ॥

अलङ्कृत्य'मचत्सा च शक्त्याऽलङ्कारभूषिताम् ।

य प्रयच्छति रात्रेन्द्र' स गच्छेत्परमा गतिम् ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे
रेखाखण्डे पिङ्ग'श्वरनाथमाहात्म्यवर्णननाम एकाशीतितमोऽध्याय' ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

ऋणप्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशामनम् । स्थापितमुत्तिसङ्घेपदुद्रहर्षशसमुद्भवे
ऋणमोचनमि'याख्यंरेवात'समाधितम् । पण्मासमनुजोभक्त्यातपयन्पितृदेयता'
देवे पितृमनुष्यैश्च ऋणमात्महन च यत् ।

मुच्यते तत्क्षणान्मर्त्यं स्नातो पे नमदाजले ॥ ३ ॥

स्वयं नृपिणं तत्र दृश्यते फलरूपतः । तत्र तार्थं नु यो राजप्रेकषितो जितेन्द्रियः
स्नात्वा दानं च वै श्याद्यसंयद्विनिज्ञापितम् ।

शृणुष्वयविनिर्मुक्तो नाथे दीप्यति देववत् ॥ १ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतितमाहस्यां पञ्चमोऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे
रेवाखण्डेशृणुष्वयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं पार्थं कापिलं तीर्थमाश्रयेत् । स्थापितं कपिले नैव सचंपातफलाशनम्
अष्टम्यां च मिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ॥

स्नापयेत्पण्या भक्त्या कपिलाक्षीरमर्षिणा ॥ २ ॥

श्रीखण्डेन मुगन्धेन गुण्डयेत महेश्वरम् । ततः मुगन्धपुष्पैश्च श्येतेऽश्वत्थसस्तम् ॥ ३ ॥

येऽर्चयन्ति जिनक्रोधा न ते यान्ति यमालयम् ।

असिपत्रवतं घोरं यमचुही मुदारुणा ॥ ४ ॥

दृश्यते नैव चिह्निः कपिलेश्वरपूजनात् ।

स्नात्वा रेवाजले पुण्ये भोजयेद् ब्राह्मणाञ्जुमान् ॥ ५ ॥

गोप्रदानेन घस्त्रेण तिलदानेन भारतम् । छत्रशय्या प्रदानेन राजा भवति धार्मिकः
तीव्रतेजाविद्योरश्च जीवत्पुत्रः प्रियम्बदः । शत्रुवर्गेन तस्य स्यात्कदाचित्पाण्डुनन्दनम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतितमाहस्यां संहितायां पञ्चमोऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोनवतितमोऽध्यायः

पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! पूतिकेश्वरमुत्तमम् । नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्कर
स्थापितं जाम्बवन्तेन लोकानां तु हितार्थिना ।

राजा प्रसेनजित्नाभ तस्या वक्षस्थलान्मणौ ॥ २ ॥

समुत्क्षिप्ते तु नेत्रैव सपूतिरभवद्ब्रह्मण । तत्र तीर्थं तपस्तत्पथा निर्घणं समजाय
तेन तस्यापितं लिङ्गं पूतिकेश्वरमुत्तमम् । यस्तत्रमनुजोभक्त्यास्नायाद्भ्रूतमस्त
सर्वान्कामानवाप्नोति सम्पूज्य परमेश्वरम् ।

वृष्णाष्टभ्यां चतुर्दश्यां सर्वकालं नराधिप !

येऽर्चयन्ति सदा देव ते न यान्ति यमालयम् ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥८६॥

नवतितमोऽध्यायः

जलाशायितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवायाउत्तरेकूलेवृष्णाद्य ताधमुत्तमम् । जलाशायीति चे नाम चिख्यात धसुधातले
दानवानां धध क्वा सुप्तस्तत्र जनार्दन । अत्र प्रशालिते तत्र देवदेवेन धमिणा
सुदर्शनं ध निष्पाप रेवाजगत्समाध्रयात् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

घक्रतीर्थं समाचक्ष्व मुनिसङ्घ्यश्च वन्दितम् ।

चिष्णोः प्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ३ ॥

श्रीमाकण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ! विरक्तस्त्वं युधिष्ठिर !।

गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं निर्मितं घक्रिणा स्वयम् ॥ ४ ॥

तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।

आसीत्पुरा महादैत्यस्तालमेव इति श्रुतः ॥ ५ ॥

नेनदेवा जिताःसर्वेहृतराज्यानराधिप । यज्ञभागान्तस्वयंभुङ्क्तेथहंविष्णुर्नसंशयः
धनदस्य हृतं वित्तं हृतः शक्रस्य चारणः । इन्द्राणीं चाञ्छतेपापो ह्यरत्नरत्नैरपि
तालमेवभयात्पार्थरविरुद्राःसवासवाः । यमःस्कन्दोजलेशोऽग्निर्वायुर्देवोधनेश्वरः
सवाक्पतिमहेशाश्चनष्टचित्ताःपितामहम् । गतादेवाब्रह्मलोकं तत्र दृष्ट्वापितामहम्
तुण्डुबुर्विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रमुखाः सुराः । शुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे
दृष्ट्वा देवान्निरुत्साहान्विवर्णानवनीपते । प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवोकसः

ब्रह्मोवाच

स्वागतं सुरसङ्घस्यकान्तिर्नष्टापुरातनी । हिमक्लिष्टप्रभावेणज्योतींशीघमुखान्विचः

प्रशमादधिपामेतदनुद्वीणं सुरायुधम् ।

वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्डितश्रीच लक्ष्यते ॥ १३ ॥

किं चायमरिदुर्वारः पाणोः पाशः प्रचेतसः ।

मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ १४ ॥

कुबेरस्य मनः शल्यं शंसतीव पराभवम् । अपविद्गतो वायुर्भग्नशाख इवद्रुमः ॥

यमोऽपि विलिखन्भूमिं दण्डेनास्तमितत्विया ।

कुरुतंऽस्मिन्नमोशोऽपि निर्वाणालातलाघवम् ॥ १६ ॥

अमी च कथमादित्याः प्रतापश्रुत्प्रीतवन् ।

पित्र्यस्तौ १५ गता प्रकामालोक्नीयताम् ॥ १७ ॥

तदुग्रत यत्सा किमित् प्रार्थयध्वं समागता ।

किमागमनदृश्य यो द्रुत नि मरार्थं सुरा ॥ १८ ॥

मयि सृष्टिर्दिलोकानां रक्षा युष्माभ्यवस्थिता ।

ततो मन्दानिगेदुभूतकमगाक्षरशोभिता ॥ १९ ॥

शुभ नेत्रमहश्चेण प्रेत्यामाम वृत्रहा । म छिनेत्र हरश्चभु सहस्रतयताधिकम् ॥

पाद्यस्यतिग्वायेद प्राञ्जलिर्जलचामनम् ।

युष्मदशोद्धमन्नात' ताग्नेयो महायत् ॥ २१ ॥

उपनापयते देवान्भूमकेतुरियोष्कित । तेनदेवाणां मर्षे दुःखितादानयेन च ॥ २२

ताग्नेयो देवपति मघाघ्नो याधते यथा ।

तन्मास्वां शरण प्राप्ता शरण नो विधे भय ॥ २३ ॥

तत प्रमन्ना भगवान्प्रेधास्तानर्षाड्य ॥ २४ ॥

प्रमोयाच

ताग्नेयेन वा मध्ये यथा तेन मम सुरा । विनामाधवद्वेनमाध्योमे नैददानव

तत सुराणां सर्वेदिरज्जिप्रमुखा नृप । क्षीरोदप्रस्थिता मर्षे दुःखितास्तनवैरिणा

त्वरिता प्रस्थिता दवा वेश्य द्रष्टुकाम्यया ।

क्षीरोद् मागर गत्वाऽस्तुवस्ते जलशायिनम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचु

जगदादिरनादिस्त्वं जगन्तोऽप्यनन्तक' ।

जगन्मूर्तिरमूर्तिस्त्वं जय गीर्वाणपूजित' ॥ २८ ॥

जय क्षीरोदशयन जय लक्ष्म्या सदावृत' । जय दानवनाशाय जय देवकिनन्दन'

जय शङ्खगदापाण जय चक्रधरप्रभो' । इति द्वेस्तुति ध्रुवा प्रबुद्धोजलशाय्यय

उवाच मधुरावाणी मेवगम्भीरनिस्वनाम् ।

किमर्थं बोधितो ब्रह्मन्समर्षेयं सुरासुरै ॥ ३१ ॥

ब्रह्मोवाच

तालमेघभयात्कृष्णं! सम्प्राप्ता तव मन्दिरम् ।

न वध्यः कस्यचित्पापतालमेघो जनार्दन ! ॥ ३२ ॥

त्वमेव जहि तं दुष्टं मृत्युं यास्यति नान्यथा ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वस्थानं गम्यतां देवाः स्वकीयां लभत प्रजाम् ।

दुष्टात्मानं हनिष्यामि तालमेघं महाबलम् ॥ ३४ ॥

स्थानं ब्रुवन्तु मे देवा! वसेद्यत्र स दानवः ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

हिमाचलगुहायां सवसते दानवेश्वरः । चतुर्विंशतिसाहस्रैः कन्याभिःपरिवारितः

तुरङ्गैः स्यन्दनैः कृष्ण! सङ्ख्या तस्य न विद्यते ।

नष्टा नानाविधास्तत्र असङ्ख्यातगुणा हरे ! ॥ ३७ ॥

द्विरद्राः पर्वताकारा हयाश्च द्विरदोपमाः । महाबलो वसेत्तत्र गीर्वाणभयदायकः

श्रुत्वादेवोवचस्तेपां देवानामातुरात्मनाम् । अचिन्तयद्गुरुमन्तं शत्रुसङ्घविनाशनम्

घक्रं करेण संगृह्य गदास्रकधरः प्रभुः । शाङ्गं च मुशलं सीरं करैर्गृह्य जनार्दनः ॥

आरूढः पक्षिराजेन्द्रं वधार्थं दानवस्य च । दानवस्य पुरेपेतुस्तपाता घोररूपिणः

गोमायुर्गृध्रमध्ये तु कपोतैः सममाविशत् । विनापातेनतस्यैव ध्वजदण्डःपपातह

सर्पमूपकयोर्द्वन्द्वं तथा केसरिनागयोः । उन्मार्गाःसरितस्तत्रावहन्नक्तविमिश्रिताः

अकालतरुपुष्पाणि दृश्यन्ते स्म समन्ततः ॥ ४३ ॥

ततः प्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् । पाञ्चजन्यश्च सहसा पूरितः पुरसन्निधौ

तेन शब्देन महता ह्यारूढो दानवेश्वरः ।

उवाच च तदा वाक्यं तालमेघो महाबलः ॥ ४५ ॥

तालमेघ उवाच

कोऽयं मृत्युवशं प्राप्नो ह्यज्ञात्वा मम विक्रमम्

धुन्धुमाराशया ह्याशु स्वमैन्यपरिवारित ॥ ४२ ॥

उलादानय त वदुक्त्वा भमाग्रे बाहुशालिनम् ॥ ४३ ॥

धुन्धुमार उवाच

आनयामि न मदेह सुरोयक्षोऽथकिञ्चर । स्थन्दनीर्घे समायुक्तोगजवाजिभट्टे मह
हृष्टस्ततो जगद्योनि सुपर्णस्थो महाबठ । श्रुयतामृचतामेवस्त्युक्तास्तेनकिङ्करा
घतुर्दृदिषु प्रधाचन्त इतश्चेतश्च सर्वत । सुपर्णेनाऽग्निरूपेण दग्धास्ते शल्मा यथा
धुन्धुमारोऽपिकृष्णेनशरघातेन ताडित । इतोवक्षस्थले पापोमृतावस्थोरधोपरि
हाहाकार तत सर्वे दानघाश्चकुरातुरा । तालमेघस्तत ब्रुद्धोरधारुढो चिनिर्गत
ददृशे केशव पाथ' शङ्खघ्नगदाधरम् ॥ ५२ ॥

तालमेघ उवाच

अन्ये ते दानघा कृष्ण' ये हता समरे त्यया ।

हिरण्यकशिपुप्रव्या न पुमासो हि तेऽच्युत ॥ ५३ ॥

इत्युक्त्वा दानव पाथ' वषयामास सायकै ।

दानवस्य शरान्मुक्ताश्छेदयामास केशव ॥ ६४ ॥

गरुमानवधीत्मैन्यमवध्य यत्सुरासुरै ।

कृष्णेन द्विगुणास्तस्य प्रेषिता स्वशिलीमुष्मा ॥ ५ ॥

द्विगुण द्विगुणीकृत्य प्रेषयामास दानव ।

तानप्यष्टगुणै कृष्णश्छेदादयामास सायकै ॥ ५६ ॥

तत ब्रुद्धेन दैत्येन श्याग्नेय वाणमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

धारण प्रेषयामास त्वाग्नेय शमित तत । धारणेनैववापव्यं तालमेघो व्यमजग्म्
सापं श्वेवहरीकेशोवायव्यस्यप्रशान्तये । नारसिंह नृसिंहोऽपिप्रेषयामासपाण्डव'
नारसिंह तनो दृष्टान्तालमेघोमहायत् । उत्तीर्य स्रग्न्दनाच्छीघ्रगृहीत्वाधङ्कधर्मणी
कृष्ण त्वा प्रेषयिष्यामि यममार्गं सुदारुणम् ।

इत्युक्त्वा दानव पाथ' आगत केशव प्रति ॥ ६१ ॥

खड्गेनाताडयद्देव्यो गदापाणिजनार्दनम् । मण्डलाग्रंततो गृह्य केशवो ह्यप्रमानसः
जवनोरःस्थले पार्थ तालमेघं महाहवे । जनार्दनस्तदा देत्यर्देत्यो हरिमहन्मुध्रे ॥
जनार्दनस्ततः क्रुद्धस्तालमेघाय भारत ! । अमोघं चक्रमादाय मुक्तं तस्यघ मूर्द्धनि
निपपातशिरस्तस्यपर्वताश्च चक्रम्पिरे । समुद्राः क्षुभिताः पार्थनद्यन्मार्गगामिनीः
पुष्पवृष्टिं ततो देवा मुमुचुः केशवोपरि । अवध्यः सुरसङ्घानां सूदितः केशवत्वया
स्वस्थाश्चैव ततो देवास्तालमेघे निपातिते ।

जनार्दनोऽपि कौन्तेय ! नर्मदातटमाश्रितः ॥ ६७ ॥

क्षीरोदां नर्मदां मत्वा अनन्तभुजगोपरि । लक्ष्म्यासमन्वितः कृष्णो निलीनध्वो नरनटे
चक्रं विभीषणं मर्त्यं ज्वालामालासमन्वितम् ।

पतितं नर्मदातीरे जलशायिसमीपतः ॥ ६६ ॥

निद्रधूर्तकलमपं जातं नर्मदातीरयोगतः । तालमेघवभ्रोत्पन्नं यत्पापं नृपनन्दन ! ॥
तत्सर्वं क्षालितं सद्यो नर्मदाम्भसि भारत ! । तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिञ्जलशायीमहीपते
चक्रतीर्थं घटन्त्यन्येकेचित्कालाघनाशनम् । चिन्व्यान् भारतं चर्ये नर्मदायां महीपते
तत्तीर्थस्य प्रभावोऽयं श्रूयतामवनीपते ! ॥

यथाऽनन्तो हि नागानां देवानां च जनार्दनः ॥ ७३ ॥

मासानां मार्गशीर्षोऽस्ति नदीनां नर्मदा यथा ।

मासि मार्गशिरे पार्थ ! ह्येकादश्यां सितेऽहनि ॥ ७४ ॥

गत्वा यो मनुजो भक्त्या कामक्रोधचिर्वर्जितः ।

वैष्णवीं भावनां कृत्वा जलेशं तु व्रजेत वै ॥ ७५ ॥

एकमुक्तं च नक्तं च तथैवाऽयाचितं नृप । उपवासं तथा दानं ब्राह्मणानां च भोजनम्
करोति च कुरुध्रे ! न स याति यमालयम् । यमलोकभयाद्दीताये लोकाः पाण्डुनन्दन
ते पश्यन्तु श्रियः कान्तं नागपर्यकशाश्रितम् । गोपीजनसमावृत्तं योगनिद्रां समाश्रितम्
विश्वरूपं जगन्नार्थं संसारभयनाशनम् ॥ ७८ ॥

स्नापयेत्परया भक्त्या श्लोद्रक्षीरेण सर्पिया । खण्डेन तोयमिश्रेण जगद्योनिं जनार्दनम् ॥

स्नाप्यमानं च पश्यति ये लोका गतमत्सरा ।

ते याति परमं लोकं सुरासुरनमस्तृतम् ॥ ८० ॥

धृतेन बोधयेद्रीपमथवा तैः पूरितम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्ने विमत्सरा
ये कथा चैष्णर्वी भक्त्या शृण्वन्ति च ऋषोत्तम ।

ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र सशय ॥ ८२ ॥

प्रदक्षिणन्ति ये मया जलशायिजगद्गुहम् ।

प्रदक्षिणीकृता तैस्तु समष्टीषा चसुधरा ॥ ८३ ॥

ततः प्रभाते विमन्त्रेपिनस्तत्पवेज्जत्रैः । श्राद्धघ्नाह्वणैस्तत्रयोग्यैः पाण्डवमानवा
स्वदारनिरते शांते परदारविवर्जके । घ्नन्त्यस्यमनशीलैश्च स्वकमनिरते शुभैः
नित्यं यजनशीलैश्च त्रिमयापरिपात्रकैः ।

श्रद्धया कारयेच्छ्राद्धं यदीच्छेच्छय आत्मन ॥ ८४ ॥

ने ध्याया मानये त्रैके घ्नन्त्या हि भुवि मानवा ।

ये घ्नन्ति सदाकात्र पादपद्माश्रया हरे ॥ ८७ ॥

जलशायं प्रपश्यति प्रयक्षं सुरनायकम् ।

पक्षोपवासं पाराकं प्रतः चाम्द्रायणं शुभम् ॥ ८८ ॥

माम्नेषवासमुग्रं च वष्टान्नपञ्चमवतम् । तत्रतादनुयं कयात्मोऽभयानतिमाप्नुयात्
धीमाकण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि निलधेनोश्च यत्फलम् ।

यथा यस्मिन्मन्त्रे दद्यात्ताने तरुणा शुभं फलम् ॥ ९० ॥

एतन्वधात्तरपुण्यमपेक्षेपायनात्परा । धनं हि नैमिषं पुण्ये नारण्यैरनेकधा ॥
इत् परममायुष्यमङ्गुत्यकीर्तिवदनम् । विप्राणाश्चाययच्चिद्दान्फत्रानन्त्यसमश्नुते
बहुभ्यो न प्रदेयानिर्गायुः शयनमिष्य । विभक्तदक्षिणाहोताद्राताः शताप्नुवन्ति च
एकमेतं प्रदातव्यं न बहुता युधिष्ठिर । सा च विक्रयमापन्ना दहत्यासमम कुलम्

तिगा श्रेतान्तिगा वृष्णास्तिगा गोमृषसधिभा ।

तिलानां तु विधित्राणां धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥ ६५ ॥

यथालाभा तु सर्वेषां घनुद्रोणा तु गौः स्मृता ।

द्रोणस्य वत्सकः कार्यो बहुना चाऽपि कामतः ॥ ६६ ॥

यस्मिन्देशे तु यन्मानं विषये वा विचारितम् ।

तेन मानेन तां कुर्वन्नश्वयं फलमश्नुते ॥ ६७ ॥

मुखपूर्वं शुष्मो भूमौ पुष्पधृपाक्षतेस्तथा । कर्णाभ्यांरत्नेदातव्ये दीपानेत्रद्वये तथा
श्रीखण्डमुरमिस्थाप्यंताभ्यां वैवतुकाञ्जनम् । उद्धर्ध्वमधुघृतं देयंकुर्यात्सर्पपरोमकम्
कम्बलेकम्बलंदद्याच्छोण्यां मधुघृतंतथा । यवसं पायसंदद्याद्घृतं क्षौद्रसमन्वितम्
स्वर्णशुद्धीरुप्यशिकारुक्मलांगूलसंयुता । रत्नपृष्ठीतुदातव्याकांस्यपात्रावदोहिनी
यत्स्याद्द्वाल्यकृतं पापं यद्वा कृतमजानता ।

वाघा कृतं कर्मघृतं मनसा यद्विचिन्तितम् ॥ १०२ ॥

जले निष्ठीवितं त्रैव मुशालं चापि लङ्कितम् ।

वृपलीगमनञ्चैव गुरुदारनिषेवणम् ॥ १०३ ॥

कन्याया गमनञ्चैव सुवर्णस्नेयमेव च । सुरापानं तथा घान्यत्तिलधेनुःपुनातिहि
अहोरात्रोपवासेनविधिवत्तां विसर्जयेत् । या सा यमपुरेवोरे नदीवैतरणीस्मृता
घालुकाऽयोऽश्मस्थला च पच्यतेयत्रदुष्कृती । अर्वाचिर्नरकोयत्रयत्रयामलपर्वती
यत्र लोहमुखाःकाका यत्र श्वानो भयङ्कराः । अस्त्रिपत्रवतञ्चैवयत्रसाकूटशात्मली
तान्नुवेन व्यतिक्रम्य धर्मराजालयं व्रजेत् । धर्मराजस्तु तं दृष्ट्वा सन्नतं वक्तिभारत
विमानमुत्तमं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् । अत्रारुह्य नरश्रेष्ठ! प्रयाहि परमां गतिम्
मा च घाटु भटे देहि मैव देहि पुरोहिते ।

मा च काणे विरूपे च न्यूनाङ्गे न च देवले ॥ ११० ॥

अवेदविदुषे नैव ब्राह्मणे सर्वधिक्रये । मित्रघ्ने च कृतघ्ने च मन्त्रहीने तथैव च ॥
वेदान्तगाय दातव्या श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । वेदान्तगसुते देयाश्रोत्रिये गृहपालके
सर्वाङ्गरुचिरे विप्रे सद्वृत्ते च प्रियन्वदे ।

पूर्णिमाया तु माघस्य कार्तिक्कामथ मारुत ॥ ११३ ॥
 वेशाम्या मागशीथ्या धाऽऽपारुया चैरामथाऽपिवा ।
 अयने विषुवे चैव व्यतापाने च सरदा ॥ ११४ ॥
 पडशान्तिमुक्ते पुण्ये छायाया कुङ्करस्य वा ।
 एष ते कथित कल्पस्तिष्ठधेतोमयाऽनन्त ॥ ११५ ॥
 ब्रह्मन्नि वैष्णव लोक दत्त्वा पार्दं यमोपरि ।
 प्राणत्यागात्पर लोक वैष्णव नाश मशय ॥
 भित्त्वाऽशु भास्वर यान्ति नाऽथ काया विधारणा ॥ ११६ ॥
 एतत्ते सवमाग्यात श्ववतीर्थफलं नृप ॥
 यच्छ्रुत्वा मानवो भक्त्या सवपापे प्रमुच्यते ॥ ११७ ॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्ताखण्ड
 रवाखण्डे जलाशायितीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम
 नवतिस्रोऽध्याय ॥ ६० ॥

एकनवतिस्रोऽध्यायः

चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्रा गच्छेन्महीपाल' तार्थ परमपावकम् ।
 चण्डादित्य नृपध्वज' स्थापित चण्डमुण्डयो ॥ १ ॥
 आस्ता पुरा महादेयी चण्डमुण्डो सुदारुणो ।
 नमदातारमाधित्य चैरतुर्विपुल तप ॥ २ ॥

ध्यायन्तो भास्वर देव तमोनाशंजगत्त्रये । नृपस्तत्तपसादेव सहस्राशुरियाच ह



साधुसाध्वितितौपार्थनर्मदायाःशुभे तटे । वरंप्रार्थयतोवीरो यथेष्टंचेतसेच्छितम्
 चण्डमुण्डावूचतुः

अजेयो सर्वदेवानां भूयास्वावांसमाहितौ । सर्वरोगैःपरित्यक्तौसर्वकालंदिवाकर
 एवमस्त्वितितौप्राह भास्करो वारितस्करः ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे भानुर्देत्याभ्यां तत्र भास्करः ॥ ६ ॥

स्थापितः परया भक्त्या तं गच्छेदात्मसिद्धये ।

गीर्वाणांश्च मनुष्यांश्च पितृस्तत्राऽपि तपयेत् ॥ ७ ॥

स वसेद्भास्करे लोके विरञ्चिदिव संवृष । घृतेन द्योधयेद्वीपं पण्ड्यां स च नरेश्वर
 मुच्यते सर्वपापैस्तु प्रतियाति दुरं रवेः ॥ ८ ॥

उत्पत्तिचण्डभानोर्यःशृणोतिभरतर्षभ । विजयी ससदानूनमाधिव्याधिविवर्जितः
 इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
 रेवाखण्डे चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥६१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र यमहास्यमनुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं नर्मदातटमाश्रितम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

यमहास्यं कथं जातं पृथिव्यां द्विजपुङ्गव ! एतत्सर्वसमाख्याहिपरंकौतूहलं हि मे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ पृष्टोऽहं नृपनन्दन । स्नानार्थंनर्मदांपुण्यामागतस्तेपितापुरा
 रजकेनयथाधीतं वखं भवति निर्मलम् । तथाऽसौ निर्मलोजातो धर्मराजो युधिष्ठिर

स पश्यन्निर्मलं देहं हसन्प्रोवाच विस्मित ॥ ५ ॥

यम उवाच

मन्पुरकथमायान्तिमनुजा पापवृद्धिता । स्नानेनैवेनरेवाया प्राप्यनेवैष्णवम्पदम्

समर्था ये न पश्यन्ति रेवा पुण्यजला शुभाम् ।

यात्यन्धैस्ते समाज्ञेया मृते पद्भिरैव वा ॥ ७ ॥

समर्था ये न पश्यन्ति रेवा पुण्यजला नदीम् ।

एतस्मात्कारणाद्राजन्हसितो लोकशासन ॥ ८ ॥

स्यापयित्वायमस्तत्रदेवस्वर्गजगाम ह । यमहासेऽबरे राजञ्जितक्रोधोजिनेन्द्रिय
विशेषाद्याऽऽश्विनेमासि कृष्णपक्षे चतुदशीम् ।

उपोष्य परया भक्त्या सर्वपापे प्रमुच्यते ॥ १० ॥

रात्रौ जारणकुर्वाद्दीप देवस्य बोधयेत् । एतेनचैवराजेन्द्र! शृणुतत्राऽस्तितत्फलम्
मुच्यते पातके सर्वैरगम्यागमनोद्भवे । अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरपेयापेयजैरपि ॥ १८ ॥

अवाहयवाहितेयत्स्याद्दोहादोहनेयथा । स्नानमात्रेणतस्यैवयान्तिपापान्यनेकधा
यमलोक न धीक्षेत मनुज स कदाचन । पितृणा परम गुणमिदं भूमौ नरेव ॥

ददतामक्षय सर्वं यमहास्ये न सशय । अमावास्याजितक्रोधोयस्तुपूजयतेद्विजान्
हिरण्यभूमिदानेन तिग्दानेन भूयसा । कृष्णाजितप्रदानेन तिग्धेनुप्रदानत ॥

विधानोक्तद्विजाप्रथाय ये प्रदास्यन्ति भक्ति ।

हयं वा कुम्भार चाऽथ धूमही सीरसयुतौ ॥ १७ ॥

कन्या बभ्रुमती वा च महिषी वा पयस्विनीम् ।

ददते ये नृपश्रेष्ठ ! नोपसपन्ति ते यमम् ॥ १८ ॥

यमोऽपिभवतिप्रीत प्रतिजन्मयुधिष्ठिर । यमस्यवाहोमहिषो महिष्यस्तस्यमातर
तासादानप्रभावेणयम प्रीतोभवेद्भ्रुवम् । नाऽसीयममवाप्नोतिपदिपापे ममावृत

एतस्मात्कारणाद्ब्रह्महिरीदानमुत्तमम् । तस्याऽशुद्धैर्जलकार्यं धृष्टवस्त्रानुवेष्टिता
धायसस्य सुरा कार्यास्ताम्रपृष्ठा सुभूषिताः ।

लवणाचलं पूर्वस्यामाग्नेय्यां गुटपर्चतम् ॥ २२ ॥

कार्पासं याम्यभागं तु नवनीतं तु नैऋते ।

पश्चिमे सप्तधान्यानि वायव्ये तन्दुलाः स्मृताः ॥ २३ ॥

सौम्ये तु काञ्चनं दद्याद्दीशानि मृतमेव च । प्रदद्याद्यमराजो मे प्रीयतामित्युद्दीरयन् ।

इत्युच्चार्य द्विजस्याग्रे यमलोकं महाभयम् । अग्निपत्रवनं घोरं यमसुहृन्सुदारुणा

रौद्राद्यैतरुणा घैव कुम्भीपाको भयाचहः । कालसूत्रो महाभीमस्तथायमलपर्वतौ

ककचं तैलयन्त्रं च श्वानो गृध्राः सुदारुणाः ।

निरुच्छ्रास्ता महानादा भैरवो रौरवस्तथा ॥ २७ ॥

एते घौरा याम्यलोके श्रूयन्ते द्विजस्तत्तम !

त्वत्प्रसादेन ते सौम्यास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ २८ ॥

दानस्याऽस्य प्रभावेण यमराजप्रसादतः ।

नरकेऽहं न यास्यामि द्विज! जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥

यमहास्यस्य चाख्यानमिदं शृण्वन्ति ये नराः ।

तेऽपि पापविनिर्मुक्ता न पश्यन्ति यमालयम् ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र' कल्होडीतीर्थमुत्तमम् ।

विरयात् भारते लोके गङ्गाया पापनाशनम् ॥ १ ॥

दुर्लभं मनुने पार्थ रेवातटममाश्रितम् । प्राणिना पापनाशाय ऊपर पुष्कर तथा
तत्तु तीर्थमिदं पुण्यमित्येव शृण्वीवच । जाह्नवी पशुरुदेण तत्र कानार्थमागता
अतस्तद्विधतलोके कल्होडीतीर्थमुत्तमम् । त्रिरात्रकारयेत्तत्र पूर्णिमायायुधिष्ठिर

रजस्तमस्तथा प्रोथ दम्भ मात्स्यमेव च ।

पतास्यजति य पाथ तेनाम मोक्षत्र फलम् ॥ ५ ॥

पयसाम्नापयेद्देवश्रिमन् यद्यत्र्यहृतथा । पयोगोसम्भय सद्य रुचत्माजीवपुत्रिर्षी
वृत्वा तत्ताम्रने पात्रे क्षीद्रेण चैव योजिते ।

ॐ नम श्रीशिवायेति स्नान देवस्य कारयेत् ॥ ७ ॥

स याति त्रिदशस्थान नाकस्त्रीभि समावृत ।

यस्तत्र विधियत्स्नात्वा दान प्रैतेषु यच्छति ॥ ८ ॥

शुक्ला गा दापयेत्तत्रप्रीयन्ता मे पिनामहा । ब्राह्मणेशीघसम्पत्रेस्त्वदाग्निरतेसदा
मवत्सा वस्त्रसयुक्ता हिरण्योपरि मस्थिताम् ।

सत्स्ययुक्तो ददद्राजश्च्छाम्भय लोकमाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्ताखण्डे
रेवाखण्डे कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥६३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं राजन्नन्दितीर्थं ब्रजेच्छुभम् । सर्वपापहरंपुंसां नन्दिनानिर्मितम्पुरा
पापौघहतजन्तूनां मोक्षदं नर्मदातटे । अहोरात्रोपितो भूत्वा नन्दिनाथे युधिष्ठिर
पञ्चोपचारपूजायामर्चयेन्नन्दिकेश्वरम् । रत्नानि चैव विप्रेभ्यो यो दद्याद्धर्मनन्दन!

स याति परमं स्थानं यत्र वासः पिनाकिनः ।

सर्वसौख्यसमायुक्तोऽप्सरोग्भिः सह मोदते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! वदर्याश्रममुत्तमम् । सर्वतीर्थवरं पुण्यं कथितं शम्भुना पुरा
यश्चैप भारतस्याऽर्थे तत्र सिद्धः किरीटभृत् ।

भ्राता ते फाल्गुनो नाम विद्ध्येनं नारदैवतम् ॥ २ ॥

नरनारायणी द्वौ तावतातौ नर्मदातटे । क्षान्तस्त्रैव यो राजन्भक्तिमान् वैजनादने
समम्पश्यति सर्वेषु स्थावरेषु चरेषु च । ब्राह्मणं श्रुत्वा चैव तत्र प्रीतो जवाद्भनः

ऐकान्त्य पश्य कीन्तव' मयि चाऽऽमनि नान्तरम् ।

नरनारायणाम्यां हि ह्यन बदरिकाधमम् ॥ ५ ॥

स्यापि शङ्करस्त्र लोकाणुग्रहवारणात् ।

त्रिमूर्तिस्थापितं त्रिह स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥

तत्र गथा शुचिभूत्या होक्वराश्रोपयामहत् ।

रजस्नमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विक भावप्राधयेत् ॥ ७ ॥

सार्थो जागरण कृत्यामधुमात्ताण्मीदिने । अथवाच चतुर्दश्यामुभीपशोचकारं
आभिनम्य विशेषेण कथित तव पाण्डव ।

ध्यापयपरया भक्त्या क्षीरेण मधुना मह ॥ ८ ॥

दध्नाशकरया युक्त पुत्रेण समदृष्टम् । पञ्चामृतमिदपुण्यं स्थापयेदुत्तमध्वज

स्नाप्यमान शिव भक्त्या धीक्षते यो विमन्सर ।

तस्य घाम शिवोपान्ते शङ्करोके न सशय ॥ ११ ॥

शाठ्यं नाऽपि नमस्कारं प्रयुक्तं शृङ्गपाणिने ।

ससारमूल्यदानामुद्वेष्टनकरो हि यः ॥ १२ ॥

तेनार्थात् धुन तन तेनसवमनुष्ठितम् । येनोनम शिवायेतिमन्त्राभ्यास स्थिराह

य पुन ध्यापयेद् भक्त्या एकभक्तो जितेन्द्रिय ।

तस्याऽपि यत्फलं पायं पश्ये तल्लेशतस्तव ॥ १४ ॥

पाडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या षडाम्यहम् ।

ते यान्ति परमं स्थान भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥

ससारे सवसौल्याना नित्यास्ते भवन्ति च ।

आध्ययं ज्ञातिवगाणा धर्माणा नित्यास्तु ते ॥ १६ ॥

सन्पन्ना सधकामेस्तेपृथिव्यापृथिवीपते । धादतत्रैव यं कुयान्नमदोदकमिधित

योग्यैश्च ब्राह्मणै राजन्कुर्लनैर्वेदपारगै । सुरूपैश्च सुरशीलैश्च स्वदारनिरतै शुभं

आयदेशप्रनृतेश्च रुग्णैश्चैव सूरूपिमि । कारयेत्पिण्डदान वै भास्वरेकुतपस्थिं

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन ।
 पुरुषान्क्रूरपण्डांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।

एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् ।
 नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान् ।
 मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !

विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥

अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत ।
 गां वृषभेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!

स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।

प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥

अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।

नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप ! ॥ २६ ॥

स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्यवान् ॥ २७ ॥

सर्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः ।
 ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति
 इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

ऐकात्म्य पश्य कौन्तेय' भयि चाऽऽत्मनि नान्तरम् ।
 नरनारायणाभ्या हि हृत यदरिकाग्रमम् ॥ ५ ॥
 स्थापित शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।
 त्रिमूर्त्तिस्थापित लिङ्ग स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥
 तत्र गत्वा शुचिभूत्वा ह्येकरात्रोपयासहृत् ।
 रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा मास्त्विक भाषमाधयेत् ॥ ७ ॥

रात्रौ जागरण कृत्वामधुमानाष्टमीदिने । भयवाध घतुर्दृश्यामुर्मोपशौचकार्ये
 आभिन्दस्य विशेषेण कथित तव पाण्डव ॥

स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ६ ॥

दध्नाशर्करया युक्त घृतेन समगृह्यन्तम् । पञ्चामृतमिदपुण्यं स्नापयेद्दुष्टुरमन्त्र
 स्नाप्यमान शिव भक्त्या धीक्षने यो विमन्सर ।
 तस्य धाम शिवोपान्ते शबलोके न सशय ॥ ११ ॥
 शाठ्येनाऽपि नमस्कार प्रयुक्त शूलपाणिने ।
 ससारमूलप्रदानामुडेष्टनकरो हि य ॥ १२ ॥

तेनार्घीत धृत तेन तेनसद्यमनुष्ठितम् । येनोनम शिवायेतिमन्त्राभ्यास स्थिरीकृ
 य पुन स्नापयेद्द भक्त्या एकभक्तौ जितेन्द्रिय ।

तस्याऽपि यत्कल पाय' घश्ये तल्लैशतस्तव ॥ १४ ॥

पीडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या धदाम्यहम् ।

ते यान्ति परमं स्थान मिच्छ्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥

मसारे सवसौख्याना निलयास्ते भवन्ति च ।

आध्वर्यं ह्यातिवर्गाणा धर्माणा निलयास्तु ते ॥ १६ ॥

सन्पत्रा'सधकामैस्तेपृथिव्यापृथिवीपते । धाद्धतत्रैव य' कुर्याप्रमदौदकमिश्रित
 योग्यैश्च ब्राह्मणे राजन्कुलीनैर्बेदपारगै । सुरूपैश्च सुरशीलैश्च स्वदारनिरतै शुभै
 आयदेशप्रसूनैश्च शृङ्गैश्चैव सरूपिभिः । कार्येत्पिण्डदान वै भास्करेकुतपस्विणै

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्
 पुरुषान्क्रूरपण्डांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।

एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्
 मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !

चिप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥

अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम !

स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।

प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥

अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।

नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप ! ॥ २६ ॥

स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

पुनः स्वर्गाञ्च्युतः सोऽपि राजा भवति धीर्यवान् ॥ २७ ॥

सर्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालव्यासतीर्थमनुत्तमम् । दुर्लभंमनुजैःपुण्यमन्तरिक्षेव्यवस्थितम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माद्द्वै व्यासतीर्थं तदन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ।

एतदाख्याहि संक्षेपात्त्यज ग्रन्थस्य विस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधुमहावाहो धर्मवान्साधुवत्सल । स्वकर्मनिरतः पार्थतीर्थयात्राकृतादरः
दुर्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर । पीडितोवृद्धभावेन अकल्पोऽहंनृपात्मज

विसञ्ज्ञो गतचित्तस्तु सञ्जातः स्मृतिवर्जितः ।

गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाऽऽख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ५ ॥

कलिस्तत्रैव राजेन्द्र न विशेद् व्याससंश्रयात् ।

अन्तरिक्षे तु सञ्जातं रेवायाश्चेष्टितेन तु ॥ ६ ॥

विरिञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्त्तनम् ।

कथं ज्ञास्याम्यहं तात रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

व्यासतीर्थंविशेषेण लवमात्रं ब्रवीम्यतः । प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यतेऽद्यकलौयुगे
विहङ्गो गच्छतेनैवभिच्चाशूलंसुदारुणम् । तस्योत्पत्तिसमासेनकथयामिनृपात्मज

आसीत्पूर्वमहीपालमुनिर्मान्यःपराशरः । तेनात्युग्रंतपश्चीर्णं गङ्गाम्भसिमहाफलम्
प्राणायामेन सन्तस्थौप्रविष्टो जाह्नवीजले । पूर्णंद्वादशमेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः

मिक्षार्थी सञ्चरेद् ग्रामं नाचा यत्रैव तिष्ठति ।

तत्र तेन परा दृष्टा बाला घैवं मनोहरा ॥ १२ ॥

ता दृष्ट्वा स न कामार्त्तं उपाय मधुरं तदा ।
मां नयस्व पर पारं काऽमि ह्य मृगगेचने ॥ १३ ॥

नाचाण्डे नदीतीरे मम चित्तप्रमाथिनि । एषमुक्ता तु सा तेन प्रणम्यस्रपिपुङ्गवा
कथयामास ध्याऽऽत्मानं दृष्ट्वा न काममोहितम् ।
षेपत्तानां गृहे दाम्नी कन्याऽह छिनमत्तम् ॥ १५ ॥
नाद्या सरक्षणार्थाय धादिण स्वामिना विमो ।
मया विज्रपित वृत्तमदोषं ज्ञानुमर्हसि ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा तथा सोऽथ क्षण ध्यात्वाऽग्रवीदिहम् ॥ १७ ॥

पराशर उवाच

अहं ज्ञानरगाद्भेदेतवजानामिसम्भयम् । क्वचित्तं पुत्रिका न त्वराजकन्याऽमिसुन्दरि
कन्योवाच

क पिता कथ्यता ब्रह्मन्कन्या वा इन्द्रोद्भवा ।
कस्मिन्वंशे प्रसन्ताऽह क्वचित्तनया कथम् ॥ १६ ॥

पराशर उवाच

कथयामि समस्तवस्त्वया पृष्ठमशेषत । धनुनामेतिभूपाल सोमशशिभूषण ॥
जम्बूद्वीपाधिपो भद्र शत्रुणा भयवधन । शतानि सप्तमार्याणा पुत्राणाञ्चदशीवतु
धर्मेण पात्र्येहोक्तानीशवत्पूज्यने रुदा ।
म्लेच्छास्तन्याविधेयाश्च क्षीरद्वीपनिधामिन ॥ २२ ॥

तेषामुन्सादनाथायथावृत्तद्यसागरम् । मयुक्तं पुत्रभृर्यैश्चर्षीरुपेमहति स्थिने
समरते समारब्धम्लेच्छैश्चवसुनासह । जिताम्लेच्छा समस्तास्ते धनुनामृगगेचने
वरदास्ते वृतास्तेन सपुत्ररत्नवाहना । प्रजाना तस्य साराशा तवमातामृगक्षणे
प्रवासस्थे मर्हीपाले सज्जाना सा रजस्वला ।
नारीणा तु सदाकालं मन्मथो हाधिको भवेत् ॥ २१ ॥
विदोषणं ऋतो काले भिद्यन्ते कामसायकं ।

मन्मथेन तु सन्तप्ताऽचिन्तयत्सा शुभेक्षणा ॥ २७ ॥

दूतं वै प्रेषयाम्यद्य वसुराज्ञः समीपतः । आहूतः सत्वरं दूत! गच्छत्वं नृपसन्निधौ
दूत उवाच

परतीरं गतो देवि वसुराजाऽरिशासनः । तत्र गन्तुमशक्येत जलयानैर्विना शुभे
तानि यानानि सर्वाणि गृहीतानि परे तटे ।

दूतवाक्येन सा राज्ञी विषण्णा कामपीडिता ॥ २० ॥

तत्सखी तामुवाचाऽथ कस्मात्त्वं परितप्यसे ।

स्वलेखः प्रेष्यतां देवि ! शुकहस्ते यथार्थतः ॥ ३१ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु शकुन्ता यान्ति सुन्दरि !

सखिवाचयेन सा राज्ञी स्वस्था जाता नराधिप ! ॥ ३२ ॥

व्याहृतोलेखकस्तत्रलिखलेखं ममाज्ञया । त्वद्धीनासत्यभामाद्यवसोराजन्नजीवति
ऋतुकालोऽद्यसञ्जातो लिखलेखं तु लेखक ! । लिखितेभूर्जपत्रे तु लेखे वै लेखकेनतु
शुकः पञ्जरमध्यस्थ आनीतोऽद्यैव सन्निधौ ॥ ३५ ॥

सत्यभामोवाच

नीत्वालेखं गच्छशीघ्रंवसुराज्ञःसमीपतः । शकुनिःप्रणतोभूत्वागृहीत्वालेखमुत्तमम्
उत्पत्य सहसाराजज्ञगामाऽऽकाशमण्डलम् । ततःपक्षीगतःशीघ्रंवसुराजसमीपतः
क्षिप्ते लेखेशुकेनैव सत्यभामाविसर्जिते । वसुराज्ञा ततो लेखोगृह्यहस्तेऽवधारितः
लेखार्थं चिन्तयित्वातुगृह्यवीर्यं नरेवरः । अमोघंपुटिकांकृत्वाप्रतिलेखेनमिथितम्
शुकस्य सोऽर्पयामास गच्छरःशीसमीपतः । प्रणम्यवसुराजानं वीजंगृह्योत्पपातह
समुद्रोपरि सम्प्राप्तः शुकः श्येनेन वीक्षितः ।

सामिपं तं शुकं ज्ञात्वा श्येनस्तमभ्यधावत ॥ ४१ ॥

हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकः श्येनेन भारत ! । मूर्च्छया तस्यतद्द्वीजंपतितंसागराम्भसि
मत्स्येन गिलितंतच्च वीजंवसुमहीपतेः । कन्यामत्स्योदरंजातातेन वीजेन सुन्दरि
प्राप्तोऽसौ लुब्धकैर्मत्स्यं आनीतः स्वग्रहं ततः ।

यावद्विदारितो मन्स्यस्तावद् दृष्टा त्वमुत्तमे ॥ ४४ ॥

शशिमण्डलमद्भाशा म्यनज समप्रभा । दृष्टा त्वां हर्षितामर्वे क्वचिर्ताजाह्वया
हर्षिताम्नेगतामर्वे प्रधानरूपधमन्दिरम् । स्त्रीरत्नकथयाप्रासुर्गृह्णाणत्वमहाप्रम
गर्हाना नेन तन्वद्गीह्यपुत्रेणमृगेशणा । भार्या स्वामाहृतन्वद्विपाल्यस्वमृगेश
नत मा धिन्तयामाम पराशरवचस्तदा ।

पत्रमुक्त्वा तु मा नेन दत्ताऽऽमान नरेवर ॥ ४८ ॥

उवाच साधु मे व्रतम् । मन्स्यगन्धोऽनुवर्त्तते ।

नतस्मै न तु मा वाग दिव्यगन्धाधियामिता ॥ ४६ ॥

वृत्तायोगरतेनैव ज्वालयित्वा विभायसुम् । हृत्वाप्रदक्षिणवह्निमूढातेनरमान्त
जग्यानम्य मथ्ये तु कामम्यानान्यमस्पृशन् ।

ब्राह्म्या कामोसुर विप्रं भीता सा धर्मनन्दन ॥ ५१ ॥

हमन्तीतमुपाधाऽयद्गत्त्यलोकमधिधौ । नःत्रसेकधधीमन्नुवाण पामरोचिता
नतस्मै न क्षण ध्यात्वा मस्मृता हृदि तामसी ।

श्रगता तामसी माया यथा व्याप्त घराधरम् ॥ ५३ ॥

नत माविस्मितानेन कमणैवतुरज्जिता । ब्रह्मधर्याभितप्तेनस्त्रीसौम्यभीडिततद
नत मा तक्षणादेव' गमभारणर्पाडिता । प्रमृतावात्कतत्रजटिलदण्डधारिणा
कमण्डलुधर शान्त मेखगाकटिमूपितम् ।

उत्तरीयत्रतन्कन्ध विष्णुमायावियर्जितम् ॥ ५५ ॥

ततोऽपि शङ्किता पाथ' दृष्टा त कलत्रालकम् ।

वेपमाना ततो थाला जगाम शरण मुने ॥ ५७ ॥

रक्ष रक्ष मुनिधेष्ट' पराशर' मद्दामने । जात मेऽयद्भुत पुत्र कौपीनचरमेव' त्म् ।
दण्डद्वस्त जटायुक्तमुत्तरायविमूपितम् ॥ ५८ ॥

पराशर उवाच ।

मा भेरी स्यसुते जाते कुमारी त्व भविष्यसि ।

नाम्ना योजनगन्धेति द्वितीयं सत्यवत्यपि ॥ ५६ ॥

शन्तनुर्नाम राजा यः स ते भर्ता भविष्यति ।

प्रथमा महिषी तस्य सोमवंशविभूषणा ॥ ६० ॥

गच्छत्वस्वाश्रयंशुभ्रो पूर्वरूपेणसंस्थिता । माविपादंकुरुष्व्याऽत्रदृष्टं ज्ञानस्यमेवलम्
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा बाला पुत्रमाश्रिता ।

नत्वोचे मातरं भक्त्या साष्टाङ्गं चिनयानतः ॥ ६२ ॥

श्रम्यतां मातरुक्तं मे प्रसादः क्रियतामपि । ईश्वराराधने यत्नंकरिष्याम्यहमन्विके
ततः सा पुत्रवाक्येन विषण्णा चाक्रमतीत् ॥ ६४ ॥

योजनगन्धोवाच

मा त्यक्त्वा गच्छ वत्साद्य मातरं मामनागसम् ।

त्वद्वियोगेन मे पुत्र! पञ्चत्वं भाव्यसंशयम् ॥ ६५ ॥

नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति भातृसमं कुलम् ।

नाऽस्ति सत्यपरो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ६६ ॥

बालभावे मयाजात आधारः किल जायसे । न मे भर्ता न मे पुत्रः पश्य कर्मविद्वन्वनम्

व्यास उवाच

मा विपादं कुरुष्वान्तः सत्प्रमेतन्मयेरितम् ।

आपत्कालेऽस्मि ते देवि ! स्मत्तन्व्यः कार्यसिद्धये ॥ ६८ ॥

आपद्स्तारधिष्यामि श्रम्यतां मे दुरुत्तरम् ।

इत्युक्त्वा प्रययौ व्यासः कन्या साऽपि गता गृहम् ॥ ६९ ॥

पराशरस्तुतस्तत्र विषण्णो चनमश्रयतः । त्रेतायुगावसाने तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥

व्यासार्थं चिन्तयामासुर्देवाः शक्रपुरोगमाः । आख्यातो नारद्रेनैवपुत्रः पराशरस्यसः

कीवर्तपुत्रिकाजातो शानीजह सुतातटे । ततो नारदवाक्येन आगताः सुरसत्तमाः

रामः पितामहः शक्रो मुनिसङ्घैः समावृताः ।

पितामहेन वै बालो गर्भाधानादिमस्मृत ।

ह्रीपायनो ह्रीपजन्मा पाराशर्य पराशरात् ॥ ७४ ॥

वृष्णाशात् वृष्णनामायं ध्यामो वेदान्यमिष्यति ।

विरञ्जिनाऽभिपिक्तोऽनौ मुनिसद्वै पुन पुन ॥ ७५ ॥

व्यासस्य सवर्गेषु श्रुत्वा प्रययु सुरा ।

तीर्थयात्रा समारब्धा वृष्णह्रीपायनेन तु ॥ ७६ ॥

गङ्गायगाहितानेन वेदारब्ध मपुष्कर । गयाद्य नैमिष तीर्थं कुरक्षेत्रं सरस्वती ॥

उज्जयिन्या महाकात्रं न्योमनाथ प्रभासके ।

पृथिषा सागरान्ताया स्नात्वा यातो महामुनि ॥ ७७ ॥

अमृता नमदाप्रामो म्द्रदेहोद्गवाशुभाम् । साहासो नमदां दृष्ट्वा चित्तविधान्तिमापद्य

तपधधारविपुत्र नमदात्तऽमाश्रित । श्रीधमपञ्चाङ्गि मध्यस्थो वपानुस्यण्डिशय

साद्रवामाद्य हेमन्ते तिष्ठन्द्ध्यौ महेश्वरम् ।

स्वान्तहृत्कमरे रघाप्य ध्यायते परमेश्वरम् ॥ ८१ ॥

सृष्टिमहारक्षत्तारमच्छेद्य परं शुभम् । नित्यं सिद्धेश्वरं लिङ्गं पूजयेत्पान्ततरपर

अघनात्मिद्धिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभायत । प्रयत्नं शङ्करोज्जात वृष्णह्रीपायनस्य म

श्वर उवाच

तोषितोऽहं त्वया वस' परं धरय शोभनम् ॥ ८४ ॥

ध्यायन् उवाच

यदिनुणोऽसि मे दय यदि दया धरामम । प्रयत्नो नमदातीरे स्वयमेवमविष्यति

अनीनातागततोऽहं स्वप्नमादाहुमापने ॥ ८५ ॥

श्वर उवाच

एवं भवतु मे पुत्र' म्प्रमादात्संशयम् । त्वयिमनिगृहीतोऽहं प्रयत्नो नमदात्तटं

राहस्यांशात्तभायत प्रयत्नोऽहं त्वदाधमे । श्रुत्वा प्रयत्नो देव' किलात्मनगमुत्तमम्

पत्नीसंग्रहणं जातं वृष्णह्रीपायनस्य त् । शीघ्रोन्नेन विधातेन पत्नीं पालयतस्तथा

पुत्रो जातो ह्यपुत्रस्य पराशरस्तुतस्य च । देवैर्बद्धापितः सर्वैर्विरिञ्चेन्द्रपुरोगमैः
पुत्रजन्मन्यथाजग्मुर्वशिष्टाद्या मुनीश्वराः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥

मन्वत्रिविष्णुहारातयाज्जवल्ग्लोशनोद्दिताः ।

यमापस्तम्बसम्बर्त्ता कात्यायनवृहस्पती ॥ ६१ ॥

एवमाद्रिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च । सशिष्याश्च महाभागानर्मदातटमाश्रिताः
व्यासाश्रमे शुभे रम्ये सन्तुष्टा आश्रयुर्नृप ।

दृष्ट्वा तान्सोऽपि विप्रेन्द्रानभ्युत्थानवृत्तोद्यमः ॥ ६३ ॥

पितुःपूर्वप्रणम्याऽर्दोसर्वेषां च यथाविधि । आसनानिर्दोभक्त्या पाद्यमर्चन्यवेद्यत्
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा चाक्यमेतदुवाच ह । उद्धतोऽहं नसन्देहोयुष्मत्सम्भाषणार्चनात्
आरण्यानि च शाकानि फलान्यारण्यजानि च ।

तानि दास्यामि युष्माकं सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

न्यमन्त्रयत तान्सर्चान्प्रत्येकं प्रणिपत्य च । ततस्ते प्रणतं दृष्ट्वा कृष्णद्वैपायनमुनिम्
वर्द्धयित्वा जयाशीर्भिरचलोक्य परस्परम् । पराशरःसमस्तेश्च वीक्षितो मुनिपुङ्गवैः
उत्तरं दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च । एवमुक्तस्तु तेः सर्वैर्भगवान्स पराशरः ॥

प्रोवाच स्वात्मजं व्यासमृषीणां यच्चिकीर्षितम् ॥ ६६ ॥

श्रीपराशर उवाच

नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतभङ्गभयादथ । भोजनं भोक्तुकामास्ते श्राद्धे चैव विशेषतः

व्यास उवाच

करोमिभयतामुक्तमत्रैवस्थीयतां क्षणम् । यावत्प्रसाद्यसरितं करोमि विधिमुत्तमम्
एवमुक्त्वा शुचिभूत्वा नर्मदातटमास्थितः ।

स्तोत्रं जगाद् सहसा तन्नियोध नरेश्वर ! ॥ १०२ ॥

जय भगवति! देवि! नमो वरदे! जय पापविनाशिनि! बहुफलदे !

जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे! प्रणमामि तु देवनरात्तिहरे ! ॥ १०३ ॥

जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे! जय पावकभूपितधक्त्रवरे !

जय मैत्र्यदेहनिर्गनपरे' जय मन्धररक्तविशोपकरे' ॥ १०४ ॥

जय महिषयिमर्दिनि' शूलकरे जय लोचनममन्त्ररूपायहरे' ।

जय देवि' पितामहरामनते' जय भाम्ब्यरशमगिरोऽचनते ॥ १०५ ॥

जय यण्मुग्गमायुधैशानुते' जय सागरगामिनि' शम्भुनुते' ।

जय दुःखदग्निविनाशकरे' जय पुत्रकण्ठप्रविवृद्धिकरे' ॥ १०६ ॥

जय देवि' सममन्त्रशरीरधरे' जय नाकविदर्शिनि' दुःसहरे' ।

जय व्याधिचिनाशिनि' माधकरे' जय चाञ्छितन्यायिनि' मिद्धकरे' ॥ १०७ ॥

एतन्व्यामहृतस्तोत्रय एतच्छिवमग्निर्धौ । गृहे धाशुद्धमायनशामक्रोशविवर्षित
तन्म्य व्याप्तो भयेन्द्रीत प्रातश्च धृष्टवाहन । प्रातारव्याघ्रमदादेवीसवपापशयदुःखी
न ते यान्ति समादाक ये स्तुता भुवि नर्मदा ।

पितामहोऽपि मुञ्चेत देवि' चण्डगुणकीर्त्तनात् ॥ ११० ॥

चाययतिर्नैव न क्वचिन्म्यरुप धेदु नमदे' । कथं गुणानह देवि त्वन्वयाभ्यानुमुन्मटे
इति ज्ञात्वा शुषिभायवाडमनकायकममि । प्रसन्नानमदादेवी ततोवचनमप्रवीत्
मन्यदादेन तुणाऽह भोमो व्यास महासुने' ।

यदीच्छसि वर किञ्चित्त ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ ११३ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्णामि मे देवि यदि देशो धर्मो मम । धानिप्यमुत्तरेकृत्स्नरीणादानुमर्हसि
नमदोवाच

अयुक्त्याचित्त व्यास विमार्गेयप्रचनम् । इन्द्रधनुर्मै रक्षासुमार्गेनश्चर्त्तितुम्
याद्यम्यान्व वर पुत्र' यत्किञ्चिद्भुवि दुःखम् ।

एतच्छ्रुत्वा वधो दया व्याप्तो मृच्छा गतस्तदा ॥ ११४ ॥

उथा क्लेशोऽद्य मे ज्ञात इति मत्वा पपात ह ।

धरणा चञ्चिता मया सशोचनकानता ॥ ११७ ॥

मृच्छापन्न वतो व्यास दृष्ट्वा देवा मयासवा ।

हाहाकारमुखाः सर्वे तत्राऽऽजग्मुः सहस्रशः ॥ ११८ ॥

व्यासमुत्थापयामासुर्वेदव्यसनतत्परम् ।

ब्राह्मणार्थं च संक्लिष्टो नात्महेतोः सखिद्वरे ॥ ११९ ॥

गवार्थं ब्राह्मणार्थं च सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।

एवं सा नर्मदा प्रोक्ता ब्रह्माद्यैः सुरसत्तमैः ॥ १२० ॥

सुशीतलैस्तं बहुभिश्चवातै रेवाऽभिपिञ्चत्स्वजलेन भीता ।

सन्नेतनः सत्यवतीसुतोऽपि प्रणम्य देवान्सरितं जगाद् ॥ १२१ ॥

व्यास उवाच

तीर्थैः समस्तैः किल सेवनाय फलं प्रदिष्टं मम भन्दभाग्यात् ।

यद्वै वि पुण्या विफला ममाशा आरण्यपुष्पाणि यथा जनानाम् ॥ १२२ ॥

नर्मदोवाच

यतो यतो मां हि महानुभाव! निनीपते चित्तमिलातलेऽत्र ।

विन्ध्येन सार्द्धं तत्र मार्गमद्य यास्याम्यहं दण्डधरस्य पृष्ठे ॥ १२३ ॥

एवमुक्तो महातेजाः व्यासः सत्यवतीसुतः ।

दक्षिणे चालयामास स्वाश्रमस्य सखिद्वराम् ॥ १२४ ॥

दण्डहस्तो महातेजा हुङ्कारमकरोन्मुनिः ।

व्यासहुङ्कारभीता सा घलिता रुद्रनन्दिनी ॥ १२५ ॥

दण्डेन दर्शयन्मार्गं देवीतत्र प्रवर्तिता । व्यासमार्गं गता देवी दृष्टाशक्रपुरोगमैः

पुष्पवृष्टिं ततोदेवा व्यमुञ्चन्त्सहकिङ्करैः । प्रोत्फुल्लनयनाजाताःपराशरमुखाद्विजाः

किं कुर्मो ब्रूहि मे पुत्र ! कर्मणा ते स्म रञ्जिताः ॥ १२७ ॥

व्यास उवाच

तपश्च विपुलं कृत्वा दानंदत्त्वा महाफलम् । एतदेवनरैः कार्यसाधूनांयत्सुखावहम्

यदि तुष्टा महाभागअनुग्राहोह्यहंयदि । तस्मान्ममाश्रमेसर्वैःस्थीयतांनाऽत्रसंशयः

आतिथ्यं शाकपर्णेन रेवामृतविमिश्रितम् । प्रतिपन्नं समस्तैर्वैः पराशरमुखैर्ममः

स्यात्तत्र्यं स्याध्रम सर्वे र्वाया उत्तर तत्रे ॥ १३० ॥

माकण्डेय उवाच

स्नानतपणनियानि कृत्वाति द्विनसत्तमे ।

व्यासपुण्ड तना गवा होम सर्वे प्रकल्पित ॥ १३१ ॥

श्रीपुत्रैर्विल्वपत्रैश्च जुहुवनातवेदसम् । गौतमो भृगुमाण्डव्यो नारदो गोमशस्तथा

पराशरस्तथा शङ्ख षोडशिश्वरचनो मुनि ।

पिप्यगदो वसिष्ठश्च नाचिनेनो महातपा ॥ १३३ ॥

चिन्वामिश्रोऽप्यगम्यश्च उद्दालक्यमी तथा ।

शाण्डिल्यो जैमिनि कण्वो यागवत्क्योशनोऽङ्गिरा ॥ १३४ ॥

शातातपो दर्धीचिश्चरुपिगोगान्वस्तथा । जैर्गाय यस्तथादक्षोमरतोमुद्गलस्तथा

घात्स्यायनो महानेना सम्बन्त शक्तिरव च ।

नानृकण्वो भरद्वाजो घाग्विल्यारुणिस्तथा ॥ १३५ ॥

पयमादिसहस्राणि जुहुवनातवेदसम् । अग्नागकरोत्कीणाध्यानयोगपरायणा

एकचित्ता द्विना सव चतुर्होमक्रिया तदा ।

ततःसमुत्थित िङ्ग मोक्षद व्याधिनाशनम् ॥ १३६ ॥

अच्छेद्य परम देवदृष्टाव्यासस्तुतोपु च । पुण्डरीकदुर्देवा आशीवादाद्विजोत्तमा

मागङ्गा प्रणतो व्यासो देवं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ।

ब्राह्मणान्पूजयामास शाकमुत्फलेन च ॥ १४० ॥

पितृपूय द्विजा सर्वे भोनिता पाण्डुनन्दन ।

आशावादास्तत पुण्यान्दत्त्वा विशा ययु पुन ॥ १४१ ॥

तदा प्रभृति तर्तीयं व्यासाय प्रोच्यत बुधे ॥ १४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

व्यासतीथस्य यत्पुण्य तत्सर्वं कथयन्व मे ।

स्नानदानविधानं च यस्मिन्काले महाफलम् ॥ १४३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामिसमस्तंतेभ्रातृभिःसहपाण्डव । कार्तिकस्यसितेपक्षेघतुर्दश्यांजितेन्द्रियः
उपोष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ।

स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा ॥ १४५ ॥

दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन चै पुनः । श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्डयेत्परमेश्वरम्
ततः सुगन्धकुमुदैर्विल्वपत्रैश्च पूजयेत् । मुचुकुन्देन कुन्देन कुशजातीप्रसूतकैः ॥

उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च तथान्यैः कालसम्भवैः । अर्चयेत्परयाभक्त्या द्वीपेश्वरमनुत्तमम्
इक्षुगडुकदानेन तुष्यते परमेश्वरः । गडुकाष्टकदानेन पातकं यात्यहोजितम् ॥ १४६

मासार्जितं च नश्येत् गडुकाष्टशतेन च । प्राण्मासिकं सहस्रेण द्विगुणैरद्विकंतथा
आजन्मजनितं पापमयुतेन प्रणश्यति । द्विगुणैर्नश्यतेव्याधिस्त्रिगुणैःस्याद्धनागमः

षड्गुणैर्जायते चाग्मी सिद्धस्तद्द्विगुणैस्तथा ।

रुद्रत्वं दशलक्षैश्च जायते नाऽत्र संशयः ॥ १५२ ॥

पौर्णमास्यां नृपश्रेष्ठ! स्नानं कुर्वीतभक्तितः । मन्त्रोक्तेन विधानेनसर्वपापक्षयङ्करम्
चारुणं च तथाग्नेयंब्राह्मयंचैवाक्षयङ्करम् । देवान्पितृमनुष्यांश्चविधिवत्तर्पयेद्बुधः

ऋषा ऋग्वेदजं पुण्यं साम्ना सामफलं लभेत् ।

यजुर्वेदस्य यजुषा गायत्र्या सर्वमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥

अक्षरं च जपेन्मन्त्रं सौरं वा शिवदेवतम् । अथवाचैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितम्
पूजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ।

स्वदारनिरतान्विप्रान्दम्भलोभचिर्वर्जितान् ॥ १५७ ॥

भिन्नवृत्तिकरान्पापान्पतिंताञ्छूद्रसेवनान् ।

शूद्रीग्रहणसंयुक्तान्शृपली यस्य मन्दिरे ॥ १५८ ॥

परोक्षवादिनो दुष्टान्गुरुनिन्द्रापरायणान् । वेदद्वेषणशीलांश्चहेतुकान्चकवृत्तिकान्
ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दाने सर्वव्रतेषु च । गायत्रीसारमात्रोऽपिचरंविप्रःसुयन्त्रितः
नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वचिक्रयी । ईदृशान्पूजयेद्विप्रान्ब्रह्मदानहिरण्यतः

सप्तनवतितमोऽध्यायः] * व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् *

न तेषां जायते शोको न हानिर्न च दुष्कृतम् । प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गं सिद्धेश्वरं ततः
यत्र सिद्धो महाभागा व्यासः सत्यवतीमुतः ।

अस्यैव पूजनात्सिद्धो धारासर्पो महामतिः ॥ १७८ ॥

तत्र तीर्थं तु यो राजन्प्राणत्यागं करोति च ।

सूर्यलोकमसौ भित्त्वा प्रयाति शिवसन्निधौ ॥ १७९ ॥

समाःसहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्रीं पतने च षोडश ।

महाहवे पश्चिरीति गोग्रहे ह्यनाशके भारत! चाक्षया गतिः ॥ १८० ॥

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः । वायुभूतं निरीक्षन्ते ह्यागच्छन्तंस्वगोत्रजम्

अस्मद्गोत्रेऽस्ति कः पुत्रो यो नो दद्यात्तिलोदकम् ।

कार्त्तिक्यां च विशेषेण वैशाख्यां वा तथैव च ॥ १८१ ॥

स्वर्गतिं च प्रयास्यामस्तत्र तीर्थोपसेवनात् ।

एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ १८२ ॥

यः पठेत्परया भक्त्या शृणुयात्तद्गतो नृप !

सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ १८३ ॥

ऊपरं सर्वतीर्थानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः । कामप्रदं नृपश्रेष्ठ! व्यासतीर्थं न संशयः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

प्रभासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रप्रभासेश्वरमुत्तमम् । विख्यातं त्रिपुलोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रभामं तात! मे ब्रूहि कथं ज्ञातं महाफलम् । स्वर्गसोपानदं दृश्यं संक्षेपात्कथयाशुमे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दुर्भंगा रविपत्नी च प्रभा नामेति विश्रुता ।

तथा चाऽऽराधितः शम्भुरुद्रेण तपसा पुरा ॥ ३ ॥

वायुभक्षा स्थिता चर्षकपंध्यानपराधना । ततस्तुष्टोमहादेवः प्रभायाः पादुनन्दन

श्वर उवाच

कस्मात्संह्रियमे बाले! कथ्यता यद्विवक्षितम् ।

अहं हि मास्करोऽप्येको नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥

प्रभोवाच

नान्यो देवः स्त्रियः शम्भो! चिना भर्त्रा क्वचिन्प्रभो!।

सगुणो निर्गुणो चाऽपि घनाढ्यो चाऽप्यकिञ्चनः ॥ ६ ॥

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः स्त्रीणां भर्तृव देवतम् । दुर्भगत्वेन दग्धाहं सखीमध्ये सुरेश्वर

भर्तृर्यत्सुखसौख्यास्मि तेन त्रिश्याम्यहं भृशम् ॥ ७ ॥

श्वर उवाच

वह्निना मास्करस्यैव मन्त्रसादाह्वयिष्यसि ॥ ८ ॥

पार्श्वत्युवाच

अप्रमाण भवद्वाक्यं मास्करोऽपि करिष्यति ।

वृथा क्लेशो भवेदस्याः प्रभायाः परमेश्वर ! ॥ ६ ॥

उमावाक्पान्महेशान ध्यातस्तिमिरनाशनः ।

आगतो गगनाद्गानुर्नर्मदोत्तररोधसि ॥ १० ॥

भानुरुवाच

आहृतोऽस्मि कथं देव! ह्यघासुरनिपूदन ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

प्रभं पालय भो भानो! सन्तोषेण परेण हि ॥ १२ ॥

उमावाच

प्रभायामन्दिरेनित्यंस्थीयतां हिमनाशन । अग्रपत्नीसमस्तानां भार्याणां क्रियतांखे

भानुरुवाच

एवंदेविकरिष्यामितववाक्पम्बरानने । पतच्छ्रुत्वाप्रभाऽऽहता प्रत्युवाचमहेश्वरम्

प्रभोवाच

स्वांशेन स्थीयतां देव! मन्मथारे! उमापते !

एकांशः स्याप्यतामत्र तीर्थस्थोन्मीलनाय च ॥ १५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयं लिङ्गं स्थापितं तत्र पाण्डव! । प्रभासेशइतिख्यातं सर्वलोकेषुदुर्लभम्

अन्यानि यानि तीर्थानि काले तानि फलन्ति वै ।

प्रभासेशस्तु राजेन्द्र सद्यः कामफलप्रदः ॥ १७ ॥

माघमासे सितेपक्षे सप्तम्यां च विशेषतः । अश्वं यः स्पर्शयेत्तत्र यथोक्तब्राह्मणेनृप

इन्द्रत्वं प्राप्यते तेन भास्करस्याऽथवा पद्मम् ।

स्नात्वा परमया भक्त्या दानं दद्याद्गुं द्विजातये ॥ १६ ॥

नोप्रदातालभेत्स्वर्गसत्यलोकंवरेश्वर । सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभ्रां क्षीरिणींतिरुणींशुभाम्

सवत्सां वण्टासंयुक्तां कांस्यपात्रावदोहिनीम् ।

ददते ये नृपश्रेष्ठ! न ते यान्ति यमालयम् ॥ २१ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालनर्मदादक्षिणे तटे । स्थापितं वासुकीशंतु समस्ताघौघनाशनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माच्च कारणात्तात रेवाया दक्षिणे तटे ।

वासुकीशः स्थापितो वै विस्तराद्बद्ध मे गुरो ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वं समास्थाय नृत्यं शम्भुश्चकार वै ॥ ३ ॥

श्रमादजायत स्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितम् ।

पतन्तमुरगोऽश्नाति हरमौलिविनिर्गतम् ॥ ४ ॥

मन्दाकिनी ततः क्रुद्धा व्यालस्योपरि भारत ! ।

प्राप्नुह्यजगरत्वं हि भुजङ्ग क्षुद्रजन्तुकः ॥ ५ ॥

वासुकिरुवाच

अनुग्राह्योऽस्मिन्ने पापोदुर्नयोऽहंहराद्भूते । त्रैलोक्यपावनीपुण्यासरित्त्वंशुभलक्षणा
संसारच्छेदनकरीह्यार्त्तानामार्त्तिनाशनी । स्वर्गद्वारेस्थितात्त्वंहिदयांकुरुमयीश्वरि

गङ्गोवाच

कुरुष्व विपुलं चिन्ध्यं तपस्त्वं शङ्करं प्रति ।

ततः प्राप्स्यसि स्वं स्थानं पन्नगत्वं ममाज्ञया ॥ ८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोऽसौ त्वरितो चिन्ध्यं नागो गत्वा नगं शुभम् ।

तपस्तप्तुं समारमे शङ्कराराधनोद्यतः ॥ ९ ॥

नित्यं दध्यौ महादेवं श्यशंभमरक्षीयतम् । ततो धपशनेपूर्णं उपरुद्धो जगद्गुरु ॥

आगतस्तत्संसारं तु शृशृणां वाणीमुदाहरत् ॥ १० ॥

घरं घरय मे यत्नं पन्नगं त्वं वृषादर ॥ ११ ॥

वासुकिरवाच

यदि तुष्णोऽसि मे देव घरं दास्यसिशङ्कर । प्रसादात्तव देवेश भूयात्रिप्यापनामम
ताथं किञ्चित्समाख्याहि सर्यपापप्रणाशनम् ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच

पन्नगन्धमहाभाहोरेषागच्छगुभङ्करीम् । याम्येतस्यास्त्येपुण्ये स्नानकुर्यायाचिधि
इत्युक्तवान्तदधेदेवोवासुकिस्त्वरयान्वित । रूपेणाऽजगरैर्षवप्रविष्टो नर्मदान्ध्रम
मार्गेण तस्य सञ्जात जाह्वया स्रोत उत्तमम् ।

निष्पूतकल्मष सप सञ्जातो नर्मदाजटे ॥ १५ ॥

स्थापित शङ्करस्तत्रनमदायापुधिष्ठिर । ततो नागोऽरलिङ्ग प्रसिद्ध पापनाशनम्
अश्रम्या वा स्रतुद्दश्या स्नापयेन्मधुना शिवम् ।

विमुक्तकल्मष सद्यो जायन्नाऽत्र सशय ॥ १७ ॥

अपुत्रा ये नरा पाथं स्नानं कुवन्ति सङ्गमे ।

ते लभन्ते सुनाञ्छ्रेष्ठान्नात्तवीर्योपमाञ्छुभान् ॥ १८ ॥

श्रद्धे तत्रैव य कुर्यादुपवासपरायण । कुच प्रमोघयेत्प्रेतामरकाशुपनन्दन ॥ १९ ॥

सपाणा च मय यशे स्नातिवर्गे न जायते । निर्दोष नन्दते तस्य कुलनागप्रसादत
एतत्ते सवमाख्यात तव स्नेहान्मृपोत्तम ॥ २० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्रपांसंहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे
रेवाखण्डे नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

शततमोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमरोचनम् । मार्कण्डेशमिति ख्यातं नर्मदादक्षिणे तटे

उत्तमं सर्वतीर्थानां गीर्वाणैर्चन्दितं शिवम् ।

गुह्याद् गुह्यतरं पुत्र! नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥

स्थापितं तु मया पूर्वं स्वर्गलोपानसन्निभम् ।

ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ ३ ॥

अन्यस्तत्रैव यो गत्वा द्रुपदामन्तर्जले जपेत् । स पातकैरशेषैश्च मुच्यते पाण्डुनन्दन

वाचिकैर्मानसैश्चैव कर्मजैरपि पातकैः ।

पिण्डिकां स्याप्यवष्टभ्य याम्यामाशां च संस्थितः ॥ ५ ॥

योजयेच्छूलिनं भक्त्या द्वात्रिंशद्बहुरूपिणम् । देहपातेशिवं गच्छेदिति मे निश्चयोनृप

आज्येन बोधयेद्दीपमष्टम्यां निशि भारत । स्वर्गलोकमवाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्

श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या कुर्वीत नृप नन्दन । पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्

इद्गुदैर्बदरैर्विल्वैरक्षतेन जलेन वा । तर्प्येत्तत्र यो वंश्यानास्नुयाज्जन्मनः फलम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमिति ग्यात पृथिव्या पापनाशनम् । तपश्शीर्षं पुरा राजन्यलभद्रेण तत्र वै
र्षावाणा अपि तत्रैव सन्निधीनृपनन्दन ! । उमयामहित शम्भुस्त्यतस्तत्रैववेशवः
यलभद्रेण राजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापित परत्या भक्त्या शङ्कर पापनाशन

यस्तत्र स्नाति घै भक्त्या जितबोधो जिनेन्द्रिय ।

एकादश्या सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

श्राद्ध तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।

स याति परम स्थानं यलभद्रेण यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राक्षरो राजन्यमलोकनपश्यति
अनपत्या या च क्षत्री-स्त्राया द्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसालभते पार्थ सत्यसन्धदृढमतम्
तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचि प्रयतमानस ।

उपोष्य रजनीमेकां गीसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकंतीर्थराजंतु तादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुरुते राजन् स गोलक्षफलं लभेत् ।
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्वोपि रात्रौ जागरणेन च ॥

परणट्यां च महादेवो दृष्टो मे मन्मथेश्वरः ।

किं समर्था यमो रूढो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥

कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मात्कामदो नृप !

सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्र सन्ध्यायां श्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेन राजेन्द्र ! कीर्त्तितं फलमुत्तमम् ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत !

पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ८ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यां प्रकारयेत् । क्षेत्रे मासि सिते पक्षे तत्र गत्वा जितेन्द्रियः ।
रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !

दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥

स्वयथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः.

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तनो गच्छेत्सु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमितिख्यातं पृथिव्या पापनाशनम् । तपस्वीर्षणं पुरा रानन्बलभद्रेणतत्र वै
गीवाणा अपि तत्रैव सन्निधौनृपनन्दन । उग्रयासहितशम्भुस्थितस्तत्रैवकेशव
बलभद्रेणराजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापितपरया भक्त्या शङ्कर पापनाशन
यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।

एकादश्या सिते पक्षे मधुना क्षापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।

न याति परमं स्थानं बलभद्रवक्षो यथा ॥ ६ ॥

इति धास्कान्दे महापुराणव्याशतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश तनो गच्छेत्सर्वदेघनमस्मृतम् । स्नातमात्राधरो राजस्यमलोकनपश्यति
अनपत्या या सन्धारीभ्राज्याद्विपाण्डुनन्दन । पुत्रसालभतेपाथ सत्वमन्धंद्दप्रतम्
तत्र ज्ञात्वा नरोराजञ्छुचिं प्रयतमानसः ।

उपोष्य रजनीमेकां गोमहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकंतीर्थराजं तु नादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुम्भे राजन् स गोतक्षफलं लभेत् ।
नत्र नृत्यं प्रकृतं च्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्गोरे रात्रौ जागरणेन च ॥

एषण्ड्यां च महादेवो दृष्टो मे मन्मथेश्वरः ।

किं समर्था यमो रष्टो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥

कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मान्कामदो नृप !

सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्र सन्ध्यायां श्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेन राजेन्द्र ! कीर्तितं फलमुत्तमम्

एतत्ते सर्वमाग्यातं तव भवत्या तु भारत !

पृथिव्यां नागरान्तायां प्रग्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ९ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यां प्रकाशयेत् । क्षेत्रे मासि मिते पक्षे तत्र गत्वा जितेन्द्रियः

रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !

दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥

सूत्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः खण्डे

स्वाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्वयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मद्भूषणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्फण्डेय उपाद्य

ततो गच्छेत् रात्रेन्द्रा नीयं परमरोमनम् । उत्तरे नर्मदाकृते यज्ञपाटस्य मध्यत
मद्भूषणमितिष्यात् वृथिव्या पापनाशनम् । तत्रर्धाणं पुरा राजन्यमग्नेमतत्र धी
गीषाणा यपि तत्रैव मन्त्रिर्धौतृपनन्दन । उमयामहित-शम्भु-म्वितस्तत्रैवपैराव
यमग्नेणराजन्द्रमणिनामुपकारत । स्थापित-परया भक्त्या शङ्करः पापनाशन
यस्तत्र स्नानि धै भक्त्या जितत्रोषो जितेन्द्रियः ।

एकादश्यां मिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

धाद्व तत्रैव यो भक्त्या विनृणामय दापयेत् ।

न याति परम स्थानं यत्रमद्रयधो यथा ॥ ६ ॥

इति धीम्व्यान्द महापुराणरक्षाशीतिमाह्वयं सहिताया पञ्चमेऽपनीपण्डे
रपाद्यण्डे मद्भूषणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्फण्डेय उपाद्य

मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्वदेशतमस्मृतम् । स्नानमात्राश्रयो राजन्यमग्रेकनपश्यति
अनपत्या या य-नारी-स्त्रायाद्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसालमतेपार्थ सत्यसन्धइहमतम्
तत्र स्नात्वा नरोऽजऽब्दुधिं प्रयतमानसः ।

पतन्तं रक्षयेद्वैचि महापातकिनं यदि । महादोरे गता घापि दुष्टकर्मपितामहाः ॥

तद्वरन्ति सुपुत्राश्च चैतरण्यां गतानपि ।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेण परमा गतिः ॥ १४ ॥

अथ पुत्रस्य पौत्रेण प्रगच्छेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।

नास्ति पुत्रसमो यन्धुरिह लोके परत्र च ॥ १५ ॥

अहश्चमध्यरात्रे च धिन्तयानस्य तर्चदा । शुष्यन्तिममगात्राणि श्रीग्मेनश्रुदकंयथा

अनसूयोवाच

यस्त्वया शोचिनं चिप्र! तत्सर्वं शोषयाम्ग्रहम् ।

तयोद्वेगकरं यद्य तन्मे दहति चेतसि ॥ १७ ॥

येन पुत्रा भविष्यन्ति आयुष्मन्तो गुणान्विताः ।

तत्कार्यं च समीक्षस्व येन तुन्येत्प्रजापतिः ॥ १८ ॥

अत्रिस्वाच

तपस्तप्तं मया भद्रे जातमात्रेण दुष्करम् । व्रतोपवासनियमैः शाकाहारेणसुन्दरि

क्षीणदेहस्तु तिष्ठामि ह्यशक्तोऽहंमहाव्रते । तेन शोचामिचात्मानंरहस्यंकथितंमया

अनसूयोवाच

भर्तुः पतिव्रतानाशीरतिपुत्रचिचर्धिनी । त्रिचर्गसाधनासाध स्लाध्याचविदुषांजने

जपस्तपस्तीर्थयात्रा मृडेज्यामन्त्रसाधनम् ।

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि पट् ॥ २२ ॥

ईदृशं तु महादोषं स्त्रीणां तु व्रतसाधने । वदन्ति मुनयः सर्वे यथोक्तं वेदभाषितम्

अनुज्ञाता त्वया ब्रह्मंस्तपस्तप्स्यामि दुष्करम् ।

पुत्रार्थित्वं समुद्दिश्य तोषयामि सुरोत्तमान् ॥ २४ ॥

अत्रिस्वाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि । आज्ञाता त्वं महाभद्रेपुत्रार्थतपसाश्रय

देवतानां मनुष्याणां पितृणामन्वृणोभूवे । नभार्यासदृशो बन्धुखिपुलोकेपुचिद्यते

तेन देवा प्रशमन्ति न भार्यामदृश सुखम् ।

सन्मुने मन्मुखा पुराः विलोमे तु पराद्मुखा ॥ २७ ॥

तेन भार्या प्रशमन्ति सदेवासुरमानुषाः । महानने महाप्राज्ञे सहरथति शुभेज्ञे
तपस्नपस्व शीघ्रं त्वं पुरार्थं तु ममाज्ञया ।

एतद्वाक्यावमाने तु माष्टान् प्रणताऽऽर्वात् ॥ २६ ॥

त्वत्प्रसादेन विदेन्द्र! सर्वान्कामानवाप्नुयाम् ।

हमर्लालामति मा च मृगार्क्षा वरवर्णिनी ॥ ३० ॥

नियमस्था ततो भूत्वा सम्प्राप्ता नर्मदा नदीम् ।

शिरस्त्र्येदोद्भवां देवीं सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ ३१ ॥

यस्मादशतमात्रेण नश्यते पापमञ्जय । स्नानमात्रेण वै यस्या अश्वमेधकल्भेन
ये पिबन्ति महादेवि ' धृष्टधाना' एव स्वयम् ।

सामपानेन तन्नृत्य नाऽत्र काया विधारणा ॥ ३३ ॥

ये स्मरन्तिशिवारार्यायाऽत्रनाता गर्तरथि । मुच्यन्तेसद्यपापेभ्योऽदृष्टलोकप्रयान्तिने
नमदाया समापेतु तावुर्भा याननद्वये । न पश्यन्ति यम तत्र ये मृतावरवर्णिनि

तपस्नदुर्गा कृते एरण्डया मद्गमे शुभे ।

नियमस्था विशालार्क्षी शाकाहारण सुन्दरि ॥ ३६ ॥

तापयन्ती प्रीक्ष देवाऽच्छमै स्तोत्रैर्ब्रतीस्तया ।

प्रीक्षेपु च महादेवि ' पञ्चाग्नि साधयेत्तत' ॥ ३७ ॥

वगकाले चाद्रवासाश्चरेष्वान्द्रायणानि च ।

हेमन्ते तु तत्र प्राप्ते तौर्यमध्ये धमेत्सदा ॥ ३८ ॥

प्रातस्नानतनमन्ध्या बुधाद्देवर्षितर्पणम् । देवानामर्चनकृत्वा होमेषु पापपाविधि
यत्ने वैजयन्तीकाकोन्प्रातर्जाप्यदुर्तेन च । एष वर्षान्ते प्राप्ते रद्विष्णुपितामहाः

सम्प्राप्ता द्विजकूपेभ्यु येरण्या मद्गमे प्रिये ।

पुरा नस्तिनास्तस्या येदममुदरन्ति च ॥ ४१ ॥

अनसूया जपं त्यक्त्वा निरीक्ष्य ताऽमुहुर्मुहुः !

उत्थिता सा विशालाक्षी अर्धं दत्त्वा यथाविधि ॥ ४० ॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । दर्शनेन तु विप्राणां सर्वपापैः प्रमुच्यते
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणताऽव्रवीत् ।

कन्दमूलफलं शाकं नीवारानपि पावनान् ।

प्रयच्छाम्यहमद्यैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४१ ॥

विप्रा ऊचुः

तपसा तु विचित्रेण तपःसत्येनसुव्रते । तृप्ताः स्म सर्वकामैस्तु सुव्रते तवदर्शनात्
अस्माकंकौतुकं जातंतापसेनव्रतेनयः । स्वर्गमोक्षसुतस्याऽर्थतपस्तपसिदुष्करम्

अनसूयोवाच

तपसा सिध्यतेस्वर्गस्तपसापरमागतिः । तपसाच्चार्थकामौचतपसागुणवान्सुतः

तप एव च मे विप्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४२ ॥

विप्रा ऊचुः

तन्वी श्यामा विशालाक्षी क्षिग्धाङ्गी रूपसंयुता ।

हंसलीलागतिगमा त्वं च सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४३ ॥

किं च ते तपसा कार्यमात्मानं शोच्यसे कथम् ॥ ४६ ॥

अनसूयोवाच

यदिरुद्रश्च विष्णुश्च सत्रयंसाक्षात्पितामहः । गूढरूपधराः सर्वे तच्चिह्नमुपलक्ष्ये ॥

तस्या वाक्यावसाने तु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ।

स्वस्वरूपैः स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५१ ॥

चतुर्भुजो महादेवि! शङ्खचक्रगदाधरः । अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासा जनार्दनः
गरुत्मान्वाहनं यस्यश्रियाचसहितोहरिः । प्रसन्नवदनःश्रीमान्स्वयंरूपोव्यवस्थितः
पीतवासा महादेवि! चतुर्वदनपङ्कजः । हंसोपरि समारूढो ह्यक्षमालां करोद्यतः ॥
आगतो नर्मदातीरे ब्रह्मा लोकपितामहः ।

योऽसौ सयजगदुष्वापी स्वय साक्षात्प्रहेश्वर ॥ ५५ ॥

चुम्भ तु समारुढोदशथाहुसमन्वित । भस्माङ्गरागशोमाल्य पञ्चपत्रखिलोचन
जगमुकुत्सयुक्तं वृत्तघन्द्रादशेखर । एवरुपधरो देव सवध्यापी प्रहेश्वर ॥ ५७

अतसूया निरीक्ष्यैतद्देवाना दशन परम् । वेपमाना ततःसाध्वीसुरान्दृष्ट्वा मुहुमुहु
अतसूयोवाच

किञ्चिपारस्वरूपास्तुषिष्णुरद्रपितामहा । एतद्वैश्रोतुमिच्छामिहाशक्वथयतुमे
ब्रह्मोवाच

प्रावृत्कागेह्यद्ब्रह्मा आपञ्चैव प्रकीर्त्तिता । मेवरूपो ह्यहप्रोक्तोवपयामि च भूतये
अह सवाणि र्थजानि प्राक्सध्यासुदिते र्वा ।

एतद्वै कारण सर्वं रहस्य कथित परम् ॥ ६१ ॥

विष्णुरवाच

हेमन्तश्च भवेद्विष्णुर्विश्वरूपधराधरम् । पालनायनगतसर्वं विष्णोमाहात्म्यमुत्तमम्
रद्र उवाच

प्राप्सकालोह्यह प्रोक्त सचभूतक्षयङ्कर । कथयामि नगतसर्वं रद्ररुपस्तपस्विनि
एव ब्रह्मा चविष्णुश्चरद्रर्धैवमहाव्रते । त्रयोदेवास्त्रय सध्यास्त्रय कालास्त्रयोऽत्रय
तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रद्रर्धैकात्मता गत ।

वराद्दसुश्च ते भद्र यत्त्वया मनसोष्मितम् ॥ ६५ ॥

अनुसयोवाच

धन्या पुण्या ह्यह गेने श्लाघ्या घन्या च सयदा ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रद्रश्च प्रसन्नवदना शुभा ॥ ६६ ॥

यदि तुष्टास्त्रयो देवा ह्या इष्टया ममोपरि ।

अस्मिस्तार्थं तु साक्षिणाद्भरदा सन्तु मे सदा ॥ ६७ ॥

रद्र उवाच

एव भवतु त वाक्यं यस्त्वयाप्रार्थितशुभे । प्रत्यक्षावैष्णवीमायापरण्डीनामनामत

यस्यादर्शनमात्रेण नम्यतेपापसञ्चयः । चैत्रमासे तु सम्प्राप्तेऽहोरात्रोपितो भवेत्

परण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रभारते भोजयेद् द्विजान् ॥ ७० ॥

यथोक्तेनविधानेनपिण्डंद्वाद्यथाविधि । प्रदक्षिणां ततो दद्याद्द्विरण्यं चक्रमेव च

रजतं च तथा गावो भूमिदानमथाऽपिवा ।

सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमिति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

ये प्रियन्ति नरा देवि! परण्ड्याः सङ्गमे शुभे । याचद्युगसहस्रंतु रूढलोकेऽसन्ति ते

अहोरात्रोपितो भूत्वा जपेद्ब्रह्मांश्च वैदिकान् ।

एकादशैकसञ्जांश्च स याति परमां गतिम् ॥ ७२ ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।

पुत्रार्थी लभते पुत्राँल्लभेत्कामान्यथेप्सितान् ॥ ७३ ॥

परण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा रेवाया विमले जले ।

महापातकिनो वाऽपि ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

अनसूयोवाच

यदितुष्ट्रास्त्रयोदेवा मम भक्तिप्रचोदिताः । मम पुत्रा भवन्त्वेव हरिर्ब्रह्मपितामहाः

विष्णुरुवाच

पूज्या यत्पुत्रतां यान्ति न कदाचिच्छ्रुतं मया ।

शुभे ददामि पुत्रांस्ते देवतुल्यपराक्रमान् । रूपवन्तो गुणोपेतान्यज्विनश्च बहुश्रुतान्

अनसूयोवाच

इप्सितंतच्च दातव्यं यन्मया प्रार्थितंहरे ! । नान्यथाचैव कर्त्तव्याममपुत्रैषणा तु या

विष्णुरुवाच

पूर्वं तु भृगुसम्वादे गर्भवासउपार्जितः । । तस्याहं चैवपारंतु नैव पश्यामि शोभने

स्मरमाणः पुरावृत्तं धिन्तयामि पुनः पुनः । एवंसञ्चित्यतेदेवाः पितामहमहेश्वराः

अयोनिजामविष्यामस्तव पुत्रा वरानने ! । योनिवासेमहाप्राज्ञिदेवानैवव्रजन्तिच

सान्निध्यात्सङ्गमे दधि' लोकानां तु वरप्रदा ।
 परण्डी वैष्णवी माया प्रत्यक्षा त्व भविष्यसि ॥ ८३ ॥
 त्रयो देवा स्थिता पाथ' रेवाया उत्तरे तटे ।
 वरप्राप्ता तु सा देवी गता माहेन्द्रपवतम् ॥ ८४ ॥

क्षीणाङ्गीशुद्धदेहा च रुद्रकेशा सुदारुणा । वृतयज्ञोपवीतासातपोनिष्ठाशुभेक्षण
 शिवातलनिचिप्रोऽर्सा दृष्ट कान्तो महायशा ।
 हृष्टिसोऽभवद्देवि उत्तिष्ठोत्तिष्ठ साऽऽब्रवीत् ॥ ८६ ॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे' ह्यनसूये महाव्रते ।
 अचिन्त्य गालघादीनां वर प्राप्ताऽसि दुर्लभम् ॥ ८७ ॥

अनसूयोवाच

त्वत्प्रसादेनदेवर्षे वरप्राप्तास्मिदुर्लभम् । तेनदेवा प्रशसन्ति सिद्धाध्वरूप्योऽमला
 एवमुक्ता तु सा देवी हर्षेण महता युता । आलोकयेत्तत कान्ततेनाऽपि शुभदश ना
 ईक्षणाञ्चै च सखात ललाटे मण्डल शुभम् । नवयोजनसाहस्रमण्डलरश्मिभिवृ तम्
 वदम्बगोलकाकारत्रिगुण परिमण्डलम् । तस्यमध्ये तु दवेशि पुरयोदिव्यरूपधृक्
 हेमवर्णोऽमृतमय सूयकोटिसमप्रभ । आद्य पुत्रोऽनुसूयाया स्वयंसाक्षात्पितामह

चन्द्रमा इतिविरयात् सोमरूपो नृपात्मज ।

इष्टापूत च सम्पाति बलापोडशकेन तु ॥ ९३ ॥

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया च महेश्वरि ।

चतुर्थी पञ्चमा चैव अथ्यया षोडशी कला ॥ ९४ ॥

चतुर्विधस्य लोकस्य सूक्ष्मो भूत्वा घरानने ।

आप्रीणाति जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९५ ॥

सर्वे ते एव परजीवन्ति द्रुत दत्त शशिस्यितम् । धनरूपतिगतेसोमे धनयाश्च घरानने
 मुञ्च परगृहे मृदो ददेद्भङ्गवृत्त शुभम् । धनरूपतिगते सोमे यस्तु छिन्त्याद्दत्तस्यर्तान्

तेन पापेन देवेशि! नरा यान्ति यमालयम् ॥ ६७ ॥

वनस्पतिगते सोमे मैथुनं यो निषेवते । ब्रह्महत्यासमं पापं लभते नाऽत्र संशयः ॥

वनस्पतिगते सोमे मन्यान् योऽधिवाहयेत् ।

गावस्तस्य प्रणश्यन्ति याश्च वै पूर्वसञ्चिताः ॥ ६६ ॥

वनस्पतिगते सोमे ह्यध्वानं योऽधिगच्छति ।

भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेणुभोजनाः ॥ १०० ॥

अमावास्यां महादेवि! यस्तु श्राद्धप्रदो भवेत् ।

अब्दमेकं विशालाक्षि! वृषास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु । सर्वलक्ष्मणुणं देवि लभते नाऽत्रसंशयः

एवं गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः । सञ्जातःप्रथमःपुत्रो ह्यनसूयासुनन्दनः

द्वितीयस्तुमहादेविदुर्वासानामनामतः । सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वयंसाक्षान्महेश्वरः

ऋषिमध्यगतोदेवितपस्तपतिदुष्करम् । सोऽपि रुद्रत्वमायातिसम्प्राप्तेभूतविप्लवे

इन्द्रोऽपि शप्तस्तेनैव दुर्वाससा घरानने !।

द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ १०६ ॥

दत्तात्रेयस्वरूपेण भगवान्मधुसूदनः । जयद्वयापी जगन्नाथः स्वयंसाक्षाज्जनाहृन्तः

पते देवास्त्रयः पुत्रा अनसूयाया महेश्वरि । वरदानेन ते देवा ह्यवतीर्णा महीतले

पुत्रप्राप्तिकरंतीर्थं रेवायाश्चोत्तरे तटे । अनसूयाकृतं पार्थ ! सर्वपापक्षयं परम् ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्नर्मदायां पुरातनम् ।

भ्रूणहत्या गतास्तत्र ब्राह्मणस्य नराधिप ! ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

इतिहासं द्विजश्रेष्ठ कथयस्व ममाऽनव । सर्वपापहरंलोके दुःखार्त्तस्यचकथ्यताम्

॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुवर्णशिल्के ग्रामे गौतमान्वयसम्भवः । कृषीवलो महादेवि! भार्यापुत्रसमन्वितः

पमने तत्र गाधिन्द सत्रातो पितुः कुत्रे । पुत्रदारममोपेतो गृहक्षेत्रत मदा ॥

शकटं पूरयित्वा तु काष्ठानामगमद् गृहम् ।

प्रभितानि च काष्ठानि होकार्फी लुघयाऽन्वित ॥ ११४ ॥

रिद्रुमापन्नदा पुत्र पितुः शप्दारममागत ।

न दृष्टन्ततर्षं पुत्रः काष्ठं सप्रच्छादितोऽथरा ॥ ११५ ॥

आगतमन्वरितो मेहे पिपासासो नराधिप ।

शकटं माच्य तद्द्वारि सशृं रज्जुमयुतम् ॥ ११६ ॥

भायातम्यययादृणाचित्तत्रा धमवर्तिनी । दृष्टानिपातितपुत्रकाष्ठैर्निर्मिश्रमन्नक

अनयमाना कर्णं निक्षिप्तमोलिकां शिशुम् ।

शुभ्रुणे रता माध्वी प्रियस्य च नगाधिप ॥ ११८ ॥

नन भ्रानादिकं कृत्वा भोजनाच्छयन शुभम् ।

पुत्रपुत्रयता ध्रेष्टा ह्युत्थापयति सा शनैः ॥ ११९ ॥

यदाद्यनोत्थितः सुतः पुत्रपञ्चममागतः । तदा मा दीनवदना ररोद् च मुमोह च

तच्छ्रुत्वा रदित शकटं गाधिन्दस्वस्तमानसः ।

किमेतदिति शोक्त्या तु पतितो धरणीतले ॥ १२१ ॥

हावर्तामुत्तरेशोतुभूर्मानिपतिर्नानृष । विलेपानेधराकेन्द्रनिग्वासोच्छ्वासितेन च

पश्ये शकृणे पुत्र दृष्ट्वा र्हीडन्तमातुरम् । मधारयिष्येद्ददयं स्तुदितं तव कारणे

त्वन्नमाल यशो नियमक्षया कुम्भन्ततिम् ।

दृष्ट्वा किमनृणीभूतो यास्यामि परमा गतिम् ॥ १२३ ॥

मम बुद्धम्य दानस्य गतिस्त्वं किल पुत्रकः ।

एने मनोरथा सर्वे चिन्तिता विरला गताः ॥ १२५ ॥

इमा तु विक्रगा दीना विहीना सुतगान्धर्वैः ।

रदन्तीं पतिना पाहि मातर धरणातः ॥ १२६ ॥

सुतः । तेन पुत्र इति शोच स्वयमेव स्वयम्भुवा

त्रयधिकशततमोऽध्यायः]* सखीकस्यगोविन्दस्यपुत्रार्थेविलापकरणम् * ८४*

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्या ह्यवान्धवाः ।

मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दग्दिता ॥ १२८ ॥

सृष्टाऽयं घटतेलोकश्चन्दनंकिल शीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपि शीतलः
श्मश्रुग्रहणक्रीडन्तं धूलिधूसरिताननम् पुण्यहीनानपश्यन्ति निजोत्सङ्गसमास्थितम्
दिगम्बरं गतवीडं जदिलं धूलिधूसरम् ।

पुण्यहीना न पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥ १३१

वीणावाद्यस्वरो लोके सुस्वरः श्रूयते किल ।

रुदितं बालकस्यैव तस्मादाहादकारकम् ॥ १३२ ॥

सृगपक्षिषु काकेषु पशूनां स्वरयोनिषु । पुत्रं तेषु समस्तेषु बह्वमं ब्रूवते बुधाः ॥

मत्स्याश्वप्रकराश्चैव कूर्मग्राहादयोऽपि वा ।

पुत्रोत्पत्तौ च हृष्यन्ति विपत्तौ यान्ति दुःखिताम् ॥ १३४ ॥

वृगन्धर्वयक्षाश्च हृष्यन्तेपुत्रजन्मनि । पञ्चत्वेतेऽपिशोचन्तिमन्दभाग्योऽस्मिपुत्रक
सृष्टिमेलापकं चक्रे पुत्रार्थं राघवो नृप । इन्द्रस्थानेस्थितस्तस्यप्रोक्षतेह्यासनंयतः

स्वर्गवासं सुताद्ब्राह्मं विद्यते न तु पाण्डव ॥

चक्रे दशरथस्तस्मात्पुत्रार्थं यज्ञमुत्तमम् ॥ १३७ ॥

रामोलक्ष्मणशत्रुघ्नो भरतस्तत्र सम्मवात् ।

कार्तवीर्यो जितो येन रामेणाऽभिततेजसा ॥ १३८ ॥

स रामो रामचन्द्रेण अष्टवर्षेण निर्जितः । एकाकिनाहतोवाली प्लवगः शत्रुदुर्जयः
रावणो ब्रह्मपुत्रो यत्त्रैलोक्यं यस्य शङ्कते । हतः स रामचन्द्रेण सपुत्रःसहवान्धवः

एवं पुत्रं विना सौख्यं मर्त्यलोके न विद्यते ।

वंशार्थं मैथुनं यस्य स्वर्गार्थं यस्य भारती ॥ १४१ ॥

सृष्टान्नं ब्राह्मणस्यार्थं स्वर्गं वासं तु यान्ति ते ।

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पापपुण्ययोः ॥ १४२ ॥

पुत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां न परं सुखदुःखयोः ।

किं ब्रवीमीति भो धत्स' न तु सौख्यं मुन विना ॥ १४३ ॥

एव बहुविध दुःखं प्रलपित्वापुन पुन । जनैश्चाभ्वासितोविप्रो बालगृह्यवहिर्गत
ततः सस्कृत्य त बाल विधिदृष्टेनकर्मणा । समवेतोतुदुःखार्त्तायागतोस्वगृहं पुन
एवगृहागतो विप्रेरत्रिजांता युधिष्ठिर । भूमौ प्रमुक्तो गोविन्द पुत्रशोकैन्पीडित
यावन्निरक्षते भार्या भर्तारं दुःखपीडितम् ।

कृमिराशितं सर्वं गोविन्दं समपश्यत ॥ १४७ ॥

दुःखाद्दुःखतरे मग्ना दृष्ट्वा त पातमान्वितम् ।

एव दुःखनिमग्नाया श्वरी विगता तदा ॥ १४८ ॥

पशुपालस्तु महिरी मुक्त्वाऽरण्येऽगमद् गृहात् ।

अरण्ये महिरी सत्वा रक्षयित्वा गृहागतः ॥ १४९ ॥

विज्ञानं पशुपालेन गोविन्दो ब्राह्मणोत्तम ।

यावद्गोश्याम्यहं स्यामिन्महिरीस्त्वयं च २१ से ॥ १५० ॥

ततः सत्स्वरितोविप्रो नगाममहिरी प्रति । नतत्रमहिरीपश्येत्पञ्चात्क्षेत्राभिसन्मुक्तम्
धावमानश्च विप्रस्तु परण्डीसङ्घे गत । ततः प्रविष्टस्तुनले रथैरण्णोरुनुसगमे
तज्जल पीतमात्रं तु स्वरया चातितर्पितम् ।

अकामात्सलिलं स्वीत्वा प्रक्षाल्य नयने शुभे ॥ १५३ ॥

आनगामततः पश्चाद्भवन्दिषसक्षये ! भुक्त्वा दस्वान्वितो रात्रौ गोविन्दः शयनययौ
निद्राभिभूतः शोकेन धमेणैषनुसैदित । पुनस्तथाधरंरात्रे तु तस्य भार्या युधिष्ठिर
कृमिभिर्वेष्टितं गात्रं क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ।

पुनः सा विस्मयाऽविष्टा तस्य भार्या गुणान्विता ॥

उवाच दुष्टं तस्य साध्यमाविष्टेतसा ॥ १५६ ॥

भार्योवाच

अर्तानिपञ्चमेघाद्विन्विन्धनक्षिपतस्तुते । गृहपश्चाद्गता बालो ह्यज्ञानाद्वातितस्त्वया
मया तन्पातकं धोरं रहस्यं न प्रकाशितम् ।

तेन प्रच्छन्नपात्रेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ १५८ ॥
 न सुखं तव गात्रस्य पश्यामि न हि घात्मनः ।
 निद्रा मम शमं याता रतिश्चैव त्वया सह ॥ १५९ ॥
 श्रूयते मानवे शास्त्रे श्लोको गीतो महर्षिभिः ।
 स्मृत्वा स्मृत्वा तु तं चित्ते परितापो न शाम्यति ॥ १६० ॥
 कीर्त्तनान्नश्यते धर्मो वर्धतेऽसौ निगूहनात् ।
 इह लोके परे चैव पापस्याऽप्येवमेव च ॥ १६१ ॥
 एवं सञ्चित्यमानाऽहं स्थिता रात्रौ भयातुरा ।
 कृमिराशिगतं त्वां हि कस्याऽहं कथयामि किम् ॥ १६२ ॥

पुनस्त्वंचाऽद्यमेदृष्टोभ्रूणहत्याकृमिश्रितः । कश्चिद्विन्दन्तितेगात्रं कश्चिन्नष्टाः समन्ततः

एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशामि पुनः पुनः ।
 न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छन्त्याः कथयस्व मे ॥ १६४ ॥
 तडागं वा सरिद्धाऽपि तीर्थं वा देवतार्चनम् ।
 यं गतोऽसि प्रभावोऽयं तस्य नाऽन्यस्य मे स्थितम् ॥ १६५ ॥

श्वमुक्तस्तुविप्रोऽसौ कथयामास भारत । भार्याया यद्विवावृत्तं शङ्कमानो नृपोत्तम
 अद्य ! महिषीसार्थं परणडीसङ्गमं गतः । नाभिमात्रे जले गत्वा पीतवान्सलिलंबहु
 नान्यत्तीर्थं विजानामि सरितं सर एव वा ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं कथितं तव भामिनि ! ॥ १६८ ॥

एवं ज्ञात्वा सा सर्वमुपवासकृतक्षणा । सपत्नीको गतस्तत्र सङ्गमे वरवर्णिनि ! ॥
 स्नात्वा तत्र जले रम्ये नत्वा देवं तु भास्करम् ।

स्नापयामास देवेशं शङ्करं घोमया सह ॥ १७० ॥

पञ्चगव्यघृतक्षीरैर्द्रधिश्चैव तैर्जलैः । गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्च सुशोभनैः ॥
 पूज्यत्रयीमयं लिङ्गं देवीकात्यायनीशुभाम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा पत्यासहपतिव्रता
 ततः प्रभाते विमले द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः । गोदानेन हिरण्येन च खेपेणात्रेण भारत

गोविन्द पूजयामाम स्वराख्या ब्राह्मणाञ्जुमान् ।

मुनपापो गृहायात स्वभायांसहितो नृप ॥ १७३ ॥

एव च ऋगुने भक्त्या गोविन्दाख्यानमुत्तमम् ।

पठने परया भक्त्या स्रजहृष्या प्रणश्यति ॥ १७४ ॥

वीर्येण शत्रुं लोक याचदाभूतमञ्जलम् । यथैवाऽऽगुने मामि शैवेया नृपसत्

सतस्या च मिते पक्षे सोपवासो जितेन्द्रिय ।

सात्त्विकी वासना कृवा यो वसेच्छिष्यमन्दिरे ॥ १७५ ॥

ध्यायमाना विरूपायं त्रिदशकरसंस्थितम् ।

कमामुर्तिहन्तारं शतध्वजगदाधरम् ॥ १७६ ॥

पक्षिराजसम्राट् श्रीलोकवरादायकम् । पितामह ततो ध्यायेद्धर्म्यं चतुरात्म

सगप्रदं समस्तस्य कमलाकरशाशितम् । योग्यं च मनो नत्र त्रियमे स्थानउत्त-

मतं प्रभाते विमलपृथ्व्या च नराधिप । ब्राह्मणान्पूजयेत्कन्यामर्चयेद्यथैवजिता-

सवाचयवसम्पूजान्मदशास्त्रविशारदात् ।

वदाभ्यामगताश्रित्यं स्वदारनिरतान्मदा ॥ १८१ ॥

धाददानेयने याम्यान्ब्राह्मणान्वाण्डुनन्दन । प्रेताना पूजन तत्र देवपूर्वं समारभेत्

प्रतवान्मुच्यत शीघ्रमेण्ड्या पिण्डतपणी ।

नानानि तत्र दयानि शत्रुमुच्यन्ति सर्वदा ॥ १८४ ॥

हिरण्यभूमिकन्याश्च धुवाहो शुभलक्ष्मी ।

सीरण सहितो पाथ ' धान्य क्षाणकमडक्यया ॥ १८५ ॥

अलङ्कृता सवन्सा च शीरिणी तरुणी मित्राम् ।

रक्ता वा कृष्णवणा वा पाटला कपिला तथा ॥ १८६ ॥

काम्यद्रोहनसयुता एकमधुरविभूषणाम् ।

स्वणञ्जुनी सवत्सा च ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १८७ ॥

प्रीयतामे जगदाथा हरहृणपितामहा । सत्साररक्षणदेवी सुरमी मां समुदरेव

पुत्रार्थं याः स्त्रियःपार्थी! होरण्डीसङ्गमे नृप । ज्ञाप्यन्तेस्द्रसूत्रैश्चतुर्वेदोद्भवस्तथा
चतुभिर्ब्राह्मणैःशस्तं द्वाभ्यां योग्यैश्च कारयेत् ।

एकेन सार्द्रकुम्भेन दाम्पत्यमभिषेचयेत् ॥ १६० ॥

देवज्ञेनैव चैकेन अथवा सामगेन वा । पञ्चरत्नसमायुक्तं कुम्भे तत्रैव कारयेत् ॥

गन्धतोयसमायुक्तं सर्वापथिविमिश्रितम् । आप्रपह्वयसंयुक्तमध्वतमधुकं तथा
गुण्ठितं सितवस्त्रेणसितघन्दनघर्षितम् । सितपुष्पैस्तुसंच्छत्रंसिद्धार्थद्वृतमध्यमम्

कास्यपात्रे तु संस्थाप्य पुत्रार्थो देशिकोत्तमः ।

अङ्गलनं तु तद्वस्त्रं कटकामरणं तथा ॥ १६४ ॥

तत्सर्वं मण्डले त्याज्यं सिद्ध्यर्थं चात्मनस्तदा ।

प्रणम्य भास्करं पश्चादाचार्यं स्वरूपिणम् ॥ १६५ ॥

मधुरं च ततोऽश्रीयाद्देव्याभुवनउत्तमे । फलदानं च विप्राय छत्रं ताम्बुलमेव च
उपानहौ च यानंघसभवेद्द्रुःखवर्जितः । भास्करं क्रीडतेलोकेयावदाभूतसम्प्लवम्

दानं कोटिगुणं सर्वं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।

यथानदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति सङ्क्षयम् ॥ १६८ ॥

एवं पापानिनश्यन्तिहो रण्डीसङ्गमेनृणाम् । समन्ताच्छस्त्रपातेनहो रण्डीसङ्गमेनृप

भ्रूणहत्यासमं पापं नश्यते शङ्करोऽघ्नीत् ।

प्राणत्यागं च यो भक्त्या जातवेदसि कारयेत् ॥ २०० ॥

अनाशकं नृपश्रेष्ठ! जले वा तदनन्तरम् । पञ्चसाहस्रिकं मानं धर्षाणां जातवेदसि
जलेत्रीणिसहस्राण्यनाशकेयष्टिभुञ्जते । काकायकाःकपोतश्चष्टुलूकाःपशवस्तथा

सङ्गमोदकसंपृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम् ।

वृक्षाश्च तत्पदं ज्ञात्वा यां गतिं यान्ति योगिनः ॥ २०३ ॥

एरण्डिका मया देवी दृष्टो मे मन्मथेश्वरः । किसमर्थोयमोक्षोभद्रोभद्राणिपश्यति

मृत्तिकां सङ्गमोद्भूतां ये च गुण्ठन्ति नित्यशः ।

भ्रूणहत्यादि पापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ २०५ ॥

ततः स्वर्गावन्तीर्णस्तु जायते विशदे कुन्दे ।

धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम घनतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेयं उवाच

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवासो जितेन्द्रियः ।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! सर्वपापैः प्रभुञ्चरते ॥ १ ॥

अर्चयित्वा महादेवं दत्त्वा दानं तु भक्तितः । सुवर्णरजतं वाऽपि मणिमौक्तिकविद्रुमान्
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावरणानि च । कोटिकोटिगुणं सर्वं जायते नात्र संशयः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । सौभाग्यकरणं दिव्यं नरनारीमनोरमम्
तत्र यादुर्भगानारीनरो वा नृपसत्तम । स्नात्वाऽर्चयेद्दुमारुद्रौ सौभाग्यं तस्य जायते
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ।

तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥ ३५ ॥

दिवास्वप्ने त्रिरात्रं स्यान्प्राणायामशततथा । एकान्ते मधुमासे च नवधाद्धेतयैव
ग्रन्थश्लेषणे प्रोक्तः प्राजापय विशोचनम् ॥ ३६ ॥

ध्याननिष्ठस्य सतत नश्यतेसर्वपातकम् । तस्मान्महेश्वर ज्ञात्वातद्बुध्यानपरमोमवे
यद्ब्रह्मपरम ज्योति प्रतिष्ठाश्वरमव्ययम् । योऽन्तरापरम ब्रह्म स चिञ्चेयो महेश्वर
एष देवो महादेव केचल परम शिव । तद्देवात्परमर्द्धत तदादित्यानतरं परम् ॥ ३७ ॥
यस्मान्मर्ह्यायसो देव स्वधाग्निज्ञानसन्धिते ।

ध्यामयोगाद्भवे तत्त्वं महादेवस्तत स्मृत ॥ ४० ॥

नान्य देव महादेवाद्भवतिरिक्तप्रदयति । तमेवा मानमात्मेतिथ स्यातिपरम्प
मन्यन्ते ये स्वमा मान विभिन्न परमेश्वरान् ।

न ते पश्यन्ति तं देव वृथा तेषा परिश्रम ॥ ४१ ॥

एक ब्रह्म पर ब्रह्म ज्ञेय तत्तत्त्वमव्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बाध्यते ।
तस्माद्यनेन नियत यति स्वयतमानस । ज्ञानयोगरत शान्तो महादेवपरायण ।
एष च कथितोविप्रा यर्तानामाश्रम शुभ । पितामहेन विमुनामुनीना पूर्णमीरितः
नाऽत्र शिष्यस्य यागिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।

ज्ञान स्वयम्भुना, प्राक्त यतिधर्माध्यं शिवम् ॥ ४६ ॥

इति यतिनियमानामेतदुक्त विधानं पशुपतिपरितोषे यद्भूयेदकहेतु ।

न भवति पुनरेषामुद्घोषो वा विनाशः प्रणिहितमतसा ये नियमेवाश्वरन्ति ॥ ४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासर्गानासु यतिधर्मवर्णन

नामैकोनत्रिंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

तःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् । हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तरं

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च ।

दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २ ॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद्ब्राह्मणः क्वचित् ।

यद्ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत् ॥ ३ ॥

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान्द्विजः ।

स एव स्यात्परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥ ४ ॥

अनाहिताग्रयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः । यद्ब्रूयुर्धर्मकामांस्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनं

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः । वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्त्ति

मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः ।

एकविंशतिविरुधाताः प्रायश्चित्तं वदन्ति च ॥ ७ ॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च । महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह सम्बिं

सम्बत्सरन्तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भ

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः । सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः । सम्बत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव

ब्रह्महाद्वादशाब्दानिकुट्टिकृत्वावनेवसेत् । मैक्षमात्मविशुद्धयर्थं कृत्वाशवशिरोर्ध्वं

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वज्जयेत् ।

विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तच्च संस्मरन् ॥ १३ ॥

असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणिसम्बिंशत् । विधूमेशनकैर्नित्यं व्यङ्गारेभुक्तवज्ज

एककालश्चरेद्दक्षं द्रोणं विख्यापयन्तणाम् । वन्द्यमूलफलेवापि घत्तयेद्द्वै समाधित
 कपालपाणिं खट्वाङ्गीं ब्रह्मचर्यपरायणम् । पूर्णे तु द्वादशे घर्षे ब्रह्महत्या व्यपोहति
 अकामने कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।

कामतो मरणाच्छुद्धिर्भेया नान्येन केनचिन् ॥ १७ ॥

कुर्यादतश्चतस्रस्य भृगो पतनमेववा । ऽवलन्त वा विशेदग्निं जलवा प्रतिशे स्वयम्
 ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् ।

ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा स्मृतस्य तु ॥ १८ ॥

दीघामयाविन विप्रं कृत्वानामयमेव वा । दत्त्वा धाम सुविदुषे ब्रह्महत्या व्यपोहति
 अश्वमेधाचभृषके स्नात्वा च शुश्रूषे द्विन । सवस्व वा धेयिद् ब्राह्मणायप्रदाय च
 सरस्यन्यान्स्वरणया सद्गम लोकयिभ्रुते ।

शुश्रूषेत्रिष्वप्यपन्नानादिभ्ररात्रोपोगितो द्विज ॥ २२ ॥

गत्वा रामेभ्वरं पुण्यस्नात्वाचैवमहोदधी । ब्रह्मचर्यादिभिसुंक्तो दृष्ट्वा स्त्रविमोचयेन्
 कपालमोचन नाम तीर्थं देवस्य शूलिन ।

स्नात्वाभ्यर्च्य पितृन् देवान् ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥ २४ ॥

यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितोऽजसा । कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मण परमेष्ठिन ॥
 सामन्यर्च्यं ब्रह्मदेवंतत्र भैरवरूपिणम् । तपयित्वा पितृन् स्नात्वामुच्यते ब्रह्महत्याया

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासर्गातासुब्रह्महत्याप्रायश्चित्तवर्णनं

नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणःकपालस्थापनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा । कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजम्भुवि ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयःपुण्यांकथां पापप्रणाशिनीम् । माहात्म्यं देवदेवस्यमहादेवस्यर्धामतः
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः । प्रोचुः प्रणम्य लोकादिकिमैकं तत्त्वमव्ययम्
समाययामहेशस्य मोहितो लोकसम्भवः । अविज्ञायपरम्भावंस्वात्मानंप्राहधर्षिणम्
अहंधाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः । अनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्यविमुच्यते
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः । न विद्यते चाभ्यधिकोमत्तो लोकेषु कश्चन
तस्यैवंमन्यमानस्यजज्ञे नारायणांशजः । प्रोवाचप्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयंत्रिलोचनः
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम् । अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते
अहंकर्त्तादिलोकानांयज्ञे नरायणात्प्रभोः । न मामृतेऽस्यजगतो जीवनंसर्वथाक्नित्
अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः । मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ॥
एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैपिणोः । आजग्मुर्यत्र तां देवौ वेदाश्चत्वार एव हि
अन्वीक्ष्यदेवं ब्रह्माणंयज्ञात्मानञ्चसंस्थितम् । प्रोचुःसंविग्रहदया याथात्म्यंपरमेष्ठिनः

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्व्वं प्रवर्त्तते ।

यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥ १३ ॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते । यमाहुरीश्वरं देवं स देवःस्यात्पिताकधृक्
सामवेद उवाच

येनेदम्प्राप्त्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम् । योगिभिर्विद्यते तत्स्वमहादेवसशङ्करं
अर्धव्येद उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेश यजन्ते यतयः परम् । महेश पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् मयं
एवसभगवान्ब्रह्मावेदानामीरितशुभम् । श्रुत्वाविहस्य विश्वात्माततश्चाहचिमोहितः
कथं तत्परमं ब्रह्मसर्वसङ्गविवर्जितम् । रमतेभार्ययासाद्धं प्रमयेध्यातिगर्षितं ॥ १५ ॥
इतीरितेऽथभगवान्प्रणवात्प्रासनातन । अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वावचःप्राहपितामहः
प्रणव उवाच

न ह्येव भगवानीश स्वात्मनोऽवतिरिक्तया । कदाचिद्रमतेरुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः
अयं स भगवानीश स्वयज्ज्योतिःसनातन ॥ २० ॥

स्वानन्दमूर्ता कथिता द्वा आगन्तुका शिवा ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्तेऽपितदाथहमूर्त्तेरजस्य च । नाज्ञानमगमदाशमीश्वरस्यैवमायया ॥ २२ ॥
तदन्तरे महाज्ज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावन । प्रादर्शन्द्बुधं दिव्यम्पूरयन् गगनान्तरम्
तन्मयमस्थितञ्ज्योतिर्मण्डलतेजसोज्वलम् ।

व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुर्गसीदु द्विजोत्तमा ॥ २४ ॥

स दृष्ट्वा घटनं दिव्यमग्निं लोकपितामह । तेजसं मण्डले घोरमत्लोकयदनिन्दितम्
प्रज्ज्वालातिकोपेन ब्रह्मण पञ्चमं शिरः । क्षणादपश्यत्समहान् पुरुषोनीललोहितः
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् । तप्राहभगवान् ब्रह्मा शङ्करनीललोहितम्
ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटादयशङ्करम् । प्रादुर्भूतमहेशानं मामतःशरणव्रज ॥ २८ ॥
श्रुत्वा सगर्ववचनं पश्योनैरधेश्वरः । प्राहिणोत्पुरुषं कालभैरवं लोकदाहकम् ॥ २९ ॥
स हृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवं । प्रचरुर्त्तास्य घटनं विरिञ्चस्याथपञ्चमम्
निवृत्तवदतो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना । ममार चेशो योगेन जीघ्रितं प्राप विश्वभृक्
अथान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम् । समासीनं महादेव्यामहादेवंसनातनम्
भुजङ्गराजवलयं खन्दावपवभूषणम् । कोटिपूर्यप्रतीकाशजटाजूटविशङ्कितम् ॥ ३३ ॥
शङ्खलक्ष्मणसुतं दिव्यमालासमन्वितम् ।

त्रिशूलपाणिं दृष्ट्वेभ्यं योगिनं भूतिभूषणम् ॥ ३५ ॥

यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् । तमादिमैकं ब्रह्माणं महादेवं दृशं च ॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशमञ्जिता ।

सोऽनर्त्तभ्यर्षयोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥ ३६ ॥

यस्याशेषजगद्दुर्षोजञ्जिलयं याति मोहनम् । सञ्जन्मनाममात्रेण च रुद्रः सलु दृश्यते

येऽथ नाचारनिरस्तास्तद्वनाऽर्धेय केवलम् । चिमोचयनिलोकारमानायपोदृश्यतेकिल

यस्यब्रह्मादयोदेवा रूपयो ब्रह्मवादिनः । अर्चयन्तिसदात्किं स शिवः सलु दृश्यते

यस्याशेषजगत्सृष्टिर्विमानननुगीश्वरः । न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ च दृश्यते

विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम् । हिस्प्यगर्भपुत्रोऽसौऽश्वरोदृश्यतेपरः

पुष्पं वा यदि वा पर्शं यत्पादयुगलेजलम् । दृश्यातरति संसारंरुद्रोऽसौदृश्यतेकिल

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।

कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते ॥ ३७ ॥

जीवनेसर्वलोकानांश्रिलोकस्यैवभूषणम् । सांम.सदृश्यतेदेवःसांमोयस्य विभूषणम्

देव्या सहस्रदामाक्षाद्यस्य योगस्यमावतः । गीयते परमा मुक्तिर्माहादेवः स दृश्यते

योगिनो योगतन्वजा वियोगाभिमुखोऽनिशम् ।

योगं ध्यायन्ति देव्यासौ च योगी दृश्यते किल ॥ ४६ ॥

सोऽनुर्वाक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् । परासनेसमासीतमवापपरमांस्मृतिम्

लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यांसंस्मृतिभगवानजः । तोष्यामासवन्दंस्तोमंसोमार्द्धभूषणम्

ब्रह्मोवाच

नमोदेवाय महते महादेव्यै नमो नमः । नमः शिवाय शान्ताय शिवार्यै स्वतने नमः

शौं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विचार्यै ते नमो नमः । महेशाय नमस्तुभ्यंमूलप्रकृतये नमः ॥

नमो विशानदेहाय चिन्तार्यै ते नमोनमः । नमोऽस्तुकालकालार्यैश्वरार्यै नमो नमः

नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्रार्यै ते नमोनमः । नमोनमस्तेफालायमायार्यैते नमोनमः

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकार्यै नमोनमः । नमोऽस्तुतेप्रकृतये नमोनारायणाय च

योगदाय नमस्तुभ्यं योगिना गुरवे नम । नम ससारवासाय संसारोत्पत्तये नम
 नि-यातन्दाय विमरे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये । नम-कायविहीनाय विध्वंसकृतये नम
 ओंकारमूर्त्तयेतुभ्यतदन्त-संस्थिताय च । नमस्त व्योमसंस्थायव्योमशक्त्यै नमोनम
 इति सौभाग्यनेश प्रणिपत्य पितामह । पपात दण्डवद्भूमौ गृणन्त्यै शतरत्रियम्
 अथ देवो महादेव- प्रणतार्त्तिहरो हरः ।

प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्या प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम् ॥ ५८ ॥

दत्वास्मि परम योगमैश्वर्यमतुल महत् । प्रोवाचाप्रस्थितं रुद्र नाग्नेहिनर्मभ्वरम्
 एवप्रह्लास्यजगत सम्पूज्य प्रथम स्थित- । आत्मनारक्षणीयस्ते गुण-वैष्ण-पिनातव
 अयम्पुराण पुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ । स योगैश्वर्यमाहा म्यान्मात्रेश्वरगण गत
 अय-ज्यहोगर्षोऽसौसगर्षोभयताऽनघ । शास्त्रिनव्योविरिञ्चस्यधारणाय शिरस्त्वया
 ब्रह्महत्यापनोदार्यं व्रत लोक प्रशयन् । चरन्व सतत मिशा संस्थापयसुरद्विजान्
 इत्येतदुक्त्या वचन भगवान् परमेश्वरम् ।

स्थान स्वाभाविक दिव्य यथो त-परमम्पदम् ॥ ६४ ॥

तत स भगवानाश कपर्दी नाललोहित । प्राहयामास वदन ब्रह्मण कालभैरवम्
 चरत्व पापनाशायं व्रतलोक हितायहम् । कपालहस्तोभगवान् मिशागृह्णातुसवत
 उक्त्यैव प्राहिणो-कन्या ब्रह्मह-योत विधत्ताम् ।

*द्राकरालचदना ज्वालामालाविभूषणाम् ॥ ६७ ॥

यावद्द्वाराणसीं दि-यापुरामपगमिष्यति । तावद्धिभाषणाकाराद्युगच्छत्रिशूलिनम्
 एवमाभाष्यकालाग्निप्राहलोकमहेश्वरम् । अटस्वलोकातखिलानमैश्वर्योमसियोगत
 यदा द्रष्टव्यसि देवेश नारायणमनामयम् । तदासी वश्यतिस्पर्शमुपायं दापशोधनम्
 स द्वन्द्वतावाक्यमाकण्य भगवान् हरः । कपालपाणिर्विश्वात्मा चचारभुवनत्रयम्
 आस्थाय विवृत वैशदीप्यमान स्वतेजसा । श्रीमत्पवित्र रुचिर लोचनत्रयसयुतम्
 सहस्रसूव्यप्रतिम सिद्धे प्रमथपुङ्गवे । भाति कालाग्निनयनो महादेव समावृत ॥
 र्षीत्वा तदमृत दिव्यमातन्दम्परमष्टिन । लीलाविलासबहुलोलोकानागच्छतीश्वर

तं दृष्ट्वा कालवदनं शङ्करं कालभैरवम् । रूपलाघण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७५॥
गायन्ति गीतैर्विचित्रैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः । सस्मितं प्रेक्ष्यवदनञ्चक्रुर्भूभङ्गमेव च

स देवदानवार्दीनां देशानभ्येत्य शूलभृक् ।

जगाम विष्णोर्भुवनं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ॥ ७७ ॥

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशङ्करः । सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥७८॥

अविजाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् । न्यवारयत्त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासामहाभुजः । विष्वक्सेनइतिख्यातोविष्णोरंशसमुद्भवः

(अथ त शङ्करगणं युयुधेविष्णुनम्भवः । भाषणो भैरवादेशात्कालवेगइतिस्मृतः)

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः । दृष्ट्वावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्

अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत् । तमापतन्तं सावज्ञमालोक्यदमित्रजित्

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम् । शूलेनोरसिनिर्मिथ पातयामास तं भुवि ॥

स शूलमिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा म्वम्परमं बलम् ।

तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव ॥ ८४ ॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रमथपुङ्गवैः । विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ॥

वीक्ष्यतं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः । शिराललाटात्सम्भिद्यरक्तधारामपातयत्

गृहाणभिक्षां भगवन् ! मदीयाममितद्यते ! । न विद्यतेऽन्या ह्यृचिता तव त्रिपुरमर्दन !

न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता

अथाग्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः । संस्तूय विचित्रैर्भाषैर्वहुमानपुरःसरम् ॥

किमर्थमेतद्दहनं ब्रह्मणो भवता धृतम् । प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ॥९०॥

समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः । प्रार्थयामास भगवान्चिमुञ्चेति त्रिशूलिनम्

न तत्याजाऽथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।

चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥ ९२ ॥

ब्रजत्स्यदिव्यां भगवन्पुरीवारारणसीं शुभाम् । यत्राखिलजगद्गोपात्क्षिप्रन्नाशयतीश्वरः

ततः सर्वाणिभूतानितीर्थान्यायतनानि च । जगामलीलया देवोलोकानां हितकाम्यया

सम्नृत्यमान प्रमथैर्महायोगैरितिस्तत । नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवर
तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायण प्रभुः । समास्थाय पर कूर्प नृत्यदर्शनलालस ॥

निरीक्षमाणो गोविन्द वृषेन्द्राङ्घ्रितशासन ।

सस्मयोऽन्तयोगात्मा नृत्यतिस्म पुन पुन ॥ १७ ॥

धनु शानुघरो रुद्र स हरिर्ऋमवाहन । भेने महादेवपुरीं घाराणसीति विभ्रुताम् ॥
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि । हाहेत्युतचा सनादधै पाताल प्रापदु खिता
प्रविश्यपरम स्नान कपाल ब्रह्मणो हर । गणानामप्रतो देव स्थापयामास शङ्कर
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तत्र कलेवरम् ।

उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽस्त्री घृणानिधि ॥ १०१ ॥

ये स्मरन्ति ममाजस्र कापाल वैपमुत्तमम् । तेषांविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्रचपानकम्
भाग्य तीर्थप्रवरे स्नानकृत्वा विधानत । तपयित्वा पितृभ्देवान्मुच्यतेब्रह्महत्याया
अशाश्वतजगज्जाल्वा ब्रजध्व परमाम्पुरीम् । देहान्तेतत्परं ज्ञान ददाति परमम्पद्म्
इताद्मुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्यजनाद्दनम् । सहैषप्रमधेशानै क्षणादन्तरर्घीयते
स लब्ध्वा भगवान्दृष्णो विष्वक्सेन त्रिशूलिन ।

स्व देशमगमत्पूर्णीं गृहीत्वा परम बुध ॥ १०६ ॥

एतद् कथितपुण्य महापातकनाशनम् । कपालमोचनतार्थं स्थाणो प्रियकरशुभम्
यद्म पठतेऽध्याय ब्राह्मणाना नमापन । मानसैवाधिकं पापं कायिकैश्चप्रमुच्यते
इति धाकृष्णमहापुराणे उत्तराध्व व्यासगानासुकपालमोचनमाहात्म्य

नामैकत्रिंशोऽध्याय ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरांतमामग्निवर्णांस्पिवेत्तदा । निर्दग्धकायःस तयामुच्यते च द्विजोत्तमः
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा । पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः
जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वानारायणं हरिम् । ब्रह्महत्याव्रतञ्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये
सुवर्णस्तेयकृद्भिप्रो राजानमभिगम्य तु ।

स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्माभवाननुशास्त्विति ॥ ४ ॥

गृहीत्वामुसलं राजासकृद्ब्रूयात्तुतंस्वयम् । वधेनुशुद्धयतेस्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा
स्कन्धेनादायमुसलं गुडंवापिखादिरम् । शक्तिञ्चादायतीक्ष्णाग्रामायसंदृण्डमेववा
राजातेनचगन्तव्यो मुक्तकेशेनधावता । आचक्ष्णाणेनतत्पापमेतत्कर्मास्मिशाधिमाम्
शासनाद्वा चिमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।

अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ ८ ॥

तपसापनोत्तमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।

चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ॥ ६ ॥

त्वाश्वमेधावृथेपृतःस्यादथवाद्विजः । प्रदद्याद्वाथविप्रेभ्यःस्वात्मतुल्यंहिरण्यकम्
रेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यंपरायणः । ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये
गुरोर्भाग्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः ।

अवगूहेत्स्त्रियं तप्तं दीप्तं काष्ण्यासीं कृताम् ॥ १२ ॥

स्वयं वा शिश्रवृपणाशुत्कृत्याधाय चाञ्जलीं ।

अभिगच्छेद्दक्षिणाशामानिपातादजिह्मगः ॥ १३ ॥

गुर्व्वङ्गनागमः शुद्धयं चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ।

शाखा वा ऋष्यकोपेनां परिष्वङ्गाद्यथ वत्सरम् ॥ १४ ॥

अथ शार्पित नियतोमुच्यते शुद्धतल्पगः । वृक्षं धाद्भ्रुवेद्विप्रधीर्यामा समाहित
अभ्यमेधायभृषके स्नायायाशुद्धनेद्विजः । कालेऽप्येया भुञ्जानोमहचारीसदाप्रती
स्थानाशनाभ्या विहरखिरहोऽभ्युपयतत ।

अथ शार्पी त्रिमिष्येस्तद्वृषपोदति पातकम् ॥ १७ ॥

चान्द्रायणानि वा बुष्यान्पञ्च चचारि वा पुनः ।

पतिने सम्प्रयुक्तान्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ १८ ॥

पतिनेन तु मसर्गं यो येन बुद्धे द्विजः । म तन्पापापनोदार्थं तस्यैव प्रथमचरेत्
तत्रवृक्षभ्रुवेद्विजः सम्बत्सरमतन्द्रितः । पाण्मासिह तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्थमाचरेत्
एमिप्रतेरपोदन्ति महापातकिनो मलम् ।

पुण्यतार्थानिगमनात्पृथिव्या वायु निष्कृति ॥ १९ ॥

अथ ह्यथा सुरापान स्नेयं शुभं नृनामम् । वृक्षार्थेभ्यापि समगं प्रायणः कामचारतः
बुष्यादगमनं विप्र पुनस्तार्थं समाहितः ।

उत्पन्तम्या विदोदमि ध्याया द्य ऋषिदितम् ॥ २३ ॥

न हन्या निष्कृतिदृष्टा मुनिभिर्दुर्धर्मैवादिभि

तस्यान्पुण्येषु मीर्षेषु दहन्त्यापि स्वदेहकम् ॥ २४ ॥

इति धीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे ध्यायार्गीतासुरापयश्चित्तवचननामध्यात्रिसोऽध्यायः

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तकथनम्

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्तुपामपि ।

प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥ १ ॥

मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् ।

भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥ २ ॥

चान्द्रायणञ्च कुर्वीततस्यपापस्य शान्तये । ध्यायन्देवं जगद्योनिमतादिनिधनं हरिम्
भ्रातृभाष्यां समारुह्यकुर्यात्तत्पापशान्तये । चन्द्रायणानिचत्वारि पञ्चवासुसमाहितः
पितृष्वस्त्रेयींगत्वातुस्वस्त्रीयांमातुरेव च । मातुलस्यसुतांवापिगत्वाचान्द्रायणञ्चरेत्
सखिभाष्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा ततः कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ६ ॥

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति । चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः
शुद्धिःसान्तपनेनस्यान्नान्यथानिष्कृतिःस्मृता । मातृगोत्रांसमारुह्यसमानप्रचरांतथा
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मासमाहितः । ब्राह्मणोब्राह्मणींगत्वा कृच्छ्रमेकंसमाचरेत्
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु
रेतःसिक्त्वाजलेघैवकृच्छ्रंसान्तपनञ्चरेत् । चार्द्धिकागमने विप्रस्त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । वेश्यायांमैथुनं कृत्वाप्राजापत्यंचरेद्द्विजः
पतिताञ्च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रंविशुद्ध्यति ।

पुलकसीगमने घैव कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ १३ ॥

नट्टींशैलूपकीञ्चैवरजकींवेणुजीविनीम् । गत्वाचान्द्रायणंकुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम्
ब्रह्मचारी स्त्रियंगच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः । सप्तागारञ्चरेद्द्वैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम्

उपसृशोतित्रयषणं स्वपापम्परिकीर्त्तयन् । सम्बत्सरेणसैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते
 ब्रह्महत्याप्रतश्चापि पण्मासान्विधरन्वयी । मुच्यते ह्यवकीर्णोतुब्राह्मणानुमतेस्थित
 सनरात्रमष्टन्वा तु मैश्वर्याग्निपूजनम् । रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्त समाचरेत् ॥

ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ।

सम्बत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तमिशाशन शुचिः ॥ १६ ॥

सावित्रीञ्जपेन्नित्यं सत्वर क्रोधवर्जित । नदीतीरेपुनीर्येषु तस्मात्पापादिमुच्यते
 हत्वातुक्षत्रियविप्रकुर्वाद्ब्रह्महणोमतम् । अकामतोवै पण्मासान्दद्यात्पञ्चशतगवाम्
 अक्षरेद्वयानयुनो घनवासीसमाहित । प्राजापत्यसान्तपत ततश्चक्षुन्तुघासघयम्
 प्रमादात्कामतोवैश्य कुर्यात्सम्बत्सरत्रयम् । गोसहस्रन्तुपादन्तुप्रदद्याद्ब्रह्मणोमतम्

वृच्छातिच्छ्री वा कुर्याच्चाम्नायणमथापि वा ।

सम्बत्सर वनं कुर्याच्छूद्र हत्वा प्रमादत ॥ २४ ॥

गोसहस्रायंपादश्च दद्यात्तपापशान्तये । अष्टौवर्षाणिवाश्रीणि कुर्याद्ब्रह्महणोमतम्
 हत्वा तु क्षत्रिय वैश्य शूद्रश्चैव यथाक्रमम् ॥ २५ ॥

निहत्यब्राह्मणीविप्रन्त्वण्वपं प्रतश्चरेत् । राजन्यावरं पट्कतु वैश्या सम्बत्सरत्रयम्
 वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रो हत्वा द्विजोत्तम ।

वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद् द्विजातये ॥ २७ ॥

अन्त्यजानाम्बधे चैव कुर्याच्चाम्नायणमतम् । पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानज
 मण्डूक नकुलकाक्विडाल यरमूपकी । श्वान हत्वाद्विज कुर्यात्पौडशाशमहान्तम्
 पय पिपेतिरात्रन्तुश्वानं हत्वाद्यतन्द्रित । माज्जार वाथनकुल योजनश्चाध्वनोव्रजेत्
 वृच्छद्वादशरात्रन्तुकुर्याद्भवधेद्विज । अर्घ्याकाष्णांयसीदद्यात्सर्पहत्वाद्विजोत्तम
 पलालभारकं पण्डे सासकञ्चकमात्रकम् । घृतकुम्भ घराहे तु निलक्षोणन्तु तित्तिरे
 शुक् द्विहायतवत्स क्रीश्चहत्वा त्रिहायनम् । हत्वा हस बलाकाञ्चक बर्हिणमेवच
 वानर श्येनमासश्च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ।

अध्यादास्तु मृगान्दत्त्वा धेनु दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ३४ ॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुद्गं हत्वा तु कृष्णलम् । किञ्चिद्देयन्तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे
 अनस्थनाञ्चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति । फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्
 गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानाञ्च वीरुधाम् । अण्डजानां च सर्वेषां स्वेदजानां च सर्वशः
 फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । हस्तिनाञ्च वधे द्रुपं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्
 चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः ।

मतिपूर्ववधे चाऽस्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरादूर्ध्वं व्यासगीतासु प्रायश्चित्तनिरूपणं नाम
 त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तवर्णनम्

व्यास उवाच

मनुष्याणां तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च । वापीकूपजलानाञ्च शुद्धये चान्द्रायणेन तु

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ।

चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ २ ॥

धान्यान्नधनधौर्यं तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः ।

स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राद्धेन विशुध्यति ॥ ३ ॥

भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम्

तृणकाष्ठद्रुमानाञ्च शुष्कान्नस्यगुडस्य च । चैलचर्मामिषाणाञ्च त्रिरात्रं स्याद्भोजनम्

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कान्तोपलानाञ्च द्वादशाहं कणाशनम्

कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्य च । पुष्पगन्धोपधीनाञ्च पिवेच्चैव त्र्यहं पयः

नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् । काकञ्चैव तथाश्वानज्जग्ध्वा हस्तिनमेव वा

घराह कुक्कुटं घाय ततश्छ्रेण शुभ्यति । कन्यादानाञ्च मान्यानि पुरीषं मूत्रमेववा
गोगोमायुकपीनाञ्च तदेव यतमाचरेत् । शिशुमारं तथा घाय मत्स्यमास तथैव च
उपोष्यद्वादशाहञ्चकूप्माण्डैर्जुहुयाद्दधुतम् । नहुलोलूकमार्जारान्जग्ध्यासान्तपनञ्चरेत्
श्वापदोप्प्लवराश्चग्ध्या ततश्छ्रेण शुभ्यति । प्रकुर्याच्चैव सस्कारं पूर्वेण विधिनैवतु
वकञ्चैव यलाकाञ्च हस कारण्ड्यास्तथा ।

सत्रघाकपल जग्ध्या द्वादशाहमभोजनम् ॥ १३ ॥

कपोतटिट्टिभाक्षैश्च शुक सारसमेवच । उलूक जालपादञ्च जग्ध्याप्येतद्द्वयतञ्चरेत् ॥
शिशुमार तथा घाय मत्स्यमास तथैव च । जग्ध्याप्यैव कटाहारमेतदेव यतञ्चरेत्
कोकिलञ्चैवमत्स्यादान्मण्डूक भुजग तथा । गोमूत्रयावकाहारो मासेनैवेनशुद्ध्यति
जलेघराञ्चजलजान्प्रणुदानथ चिपिकरान् । रक्तपादास्तथाजग्ध्यासप्ताहञ्चैतदाचरेत्
शुनो मास शुष्कमासमात्मार्थञ्च तथाकृतम् । भुक्त्वा मासञ्चरेदतत्तत्त्वापस्थ्यापनुत्तये
वृन्ताक भूस्तृणे शिशु कुटकञ्चटक यथा । प्राजापत्यञ्चरेज्जग्ध्या खड्ग कुम्भीकमेवच
पलाण्डु लशुनञ्चैवभुक्त्वाघान्द्रायणचरेत् । नालिका तण्डुलीयञ्च प्राजापत्येनशुद्ध्यति
अश्मान्तक तथा पोत ततश्छ्रेण शुभ्यति ।

प्राजापत्येन शुद्धि स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे ॥ २१ ॥

अलावु किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्द्वयतञ्चरेत् । एतेपाञ्चविकाराणिपीत्वा माहेनवापुन'
गोमूत्रयावकाहार सप्तरात्रेण शुभ्यति । उडुम्बरञ्च कामेन ततश्छ्रेण शुभ्यति ॥
भुक्त्वा चैव नवधादे मृत्के सूतके तथा ॥ २३ ॥

घान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मण सुसमाहित । यस्याग्रीहृयनेनित्यमग्रस्याघ्नन्दीयने
घान्द्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्याग्रप्राशने द्विज ।

अभोज्याघ्नन्तु सर्वेषा भुक्त्वा घान्मुपस्वृतम् ॥ २५ ॥

अन्ताघसायिनाञ्चैव ततश्छ्रेण शुद्ध्यति ।

चण्डालाश्च द्विजो भुक्त्वा सम्यक् घान्द्रायणञ्चरेत् ॥ २६ ॥

पुद्धिपूवन्तु वृच्छाद् पुन सस्कारमेव च । असुराग्रघपानेन कुर्याच्चान्द्रायणयनम्

अभोज्यान्नन्तुभुक्त्वाच प्राजापत्येन शुध्यति । विष्मूत्रप्राशनंकृत्वारेतसश्चैतदाचरेत्
 अनादिष्टेतुचैकाहं सर्वत्रतुयथार्थतः । विड्वराहखरोप्राणां गोमायोः कपिकाकयोः
 प्राश्यमूत्रपुरीपाणि द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् । अज्ञानात्प्राश्यविष्मूत्रंसुरासंसृष्टमेवच
 पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः । क्रव्यादांपक्षिणाञ्चैवप्राश्यमूत्रपुरीपकम्
 महासान्तपनं मोहात्तथा कुर्याद्द्विजोत्तमः । भासमण्डककुररेविष्किकरेकृच्छमाचरेत्

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने ।

क्षत्रिये तप्तकृच्छं स्याद्वैश्ये घैवाऽतिकृच्छकम् ॥ ३३ ॥

शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।

सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ३४ ॥

समुच्छिष्टं द्विजोभुक्त्वात्रिरात्रेणविशुध्यति । गोमूत्रयावकाहारःपीतशेषञ्चवागवाम्
 अपो मूत्रपुरीपाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि । तदा सान्तपनं कृच्छं व्रतम्पापविशोधनम्
 चाण्डालकूपेभाण्डेपुयदिज्ञानात्पिवेज्जलम् । चरेत्सान्तपनंकृच्छंब्राह्मणःपापशोधनम्
 चाण्डालेनतु संसृष्टम्पीत्वावारिद्विजोत्तमः । त्रिरात्रव्रतमुख्येनपञ्चगव्येन शुध्यति
 महापातकिसंस्पर्शोभुक्त्वास्नात्वाद्विजोयदि । बुद्धिपूर्वं यदामोहात्तप्तकृच्छं समाचरेत्
 स्पृष्ट्वा महापातकिनंचण्डालञ्चरजस्वलाम् । प्रमादाद्भोजनंकृत्वात्रिरात्रेणविशुध्यति
 स्नानार्हो यदिभुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति । बुद्धिपूर्वंतु कृच्छ्रेण भगवानाह पञ्चजः

भुक्त्वा पर्युपितादीनि गवादिप्रतिदूषिताः ।

भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा ॥ ४२ ॥

सम्बत्सरान्ते कृच्छ्रन्तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः । अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः
 व्रात्यानां याजनं कृत्वापरेयामन्त्यकर्मच । अभिचारमर्हानञ्चत्रिभिःकृच्छ्रंविशुध्यति
 ब्राह्मणादिहतानांतु कृत्वादाहादिकं द्विजः । गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येनशुध्यति
 तैलाभ्यक्तोऽथवान्तोवा कुर्यान्मूत्रपुरीपके । अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्मणिमैथुने
 एकाहेन विहायाग्निपरिहाप्य द्विजोत्तमः । त्रिरात्रेणविशुद्ध्येतत्रिरात्रात्पण्डहःपरम्
 दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः । कृच्छ्रञ्चान्द्रायणंकुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये

पतिवाद्द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति । घरेद्यविधिनाष्ट्रमित्याह भगवान्मनु-
अनाशकाग्निवृत्तास्तु प्रज्यावसितास्तथा ।

चरेयुस्त्रीणि वृक्षाणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥ ५० ॥

पुनश्चातकर्मादिसंस्कारैः संस्वृता द्विजाः । शुद्धयेयुस्तदुपेत सम्यक्चरेनुर्धमं दर्शिनः
अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्थायके भवेत् । अनश्नन् सयतमना रात्रीं चैत्राग्निमव हि
यवृत्वा समिदाधानशुचिं स्नात्वासमाहित । गायत्र्यष्टसहस्रस्यजप्यकुयाद्विशुद्धये
उपवासो घरेत्सन्ध्या गृहस्थो हि प्रमादत ।

स्नात्वा विशुद्ध्यते मद्य पश्चिन्तश्च सयत ॥ ५३ ॥

वेदोदितानिनित्यानिकर्माणिषविलोप्यतु । स्नातकोत्तलोपतुष्ट्वाघोपषसंद्दिनम्
सम्बत्सरश्चरेत्कृच्छ्रमन्योत्सार्दी द्विजोत्तमः ।

चान्द्रायणक्षरेद्दु ब्राह्म्यो गोप्रदानेन शुध्यति ॥ ५६ ॥

नास्तिक्य यदि कुर्वीत प्राजापत्यक्षरेद्द्विनः । द्वादशोऽगुस्त्रोह तत्र वृष्टेण शुद्ध्यति
उत्प्रदान समाहृत्य खरयानश्च कामत । त्रिरात्रेण विशुद्धयेन्नग्रीवा प्रविशज्जलम्
पष्ठाक्षकालतामास सहिताजपएव च । हामाक्षशाकलानित्यभपाडकानाविशोधनम्
नील रक्त वसित्वा च ब्राह्मणोषधमेघदिः । महोत्तरोपित स्नात पञ्चगव्येनशुद्ध्यति
वेदधर्मपुराणानाद्यण्डालस्यतुभाषणे । चान्द्रायणेनशुद्धिं स्यात्प्रहृत्यातस्यतिष्ठति
उद्बन्धनादिनिहतं संप्लूय्य ब्राह्मणकचित्सु । चान्द्रायणेनशुद्धिं स्यात्प्राजापत्येनवापुन
उच्छिष्टो यचनाधान्तश्चाण्डालार्दीन्स्पृशेद्दु द्विज ।

प्रमादाद्दे जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ ६३ ॥

दुपदाना शत वापि प्रह्वचारीसमाहित । त्रिरात्रोपोपित सम्यक्पञ्चगव्येनशुद्ध्यति
चाण्डालपतितादींस्तु कामाय संप्लूशेद्दु द्विज ।

उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्य विशुद्धये ॥ ६५ ॥

चाण्डालसूतकिरापास्तथा नारीं रजस्वलाम् ।

स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टपतितास्तथा ॥ ६६ ॥

चाण्डालसूतकिशयैः संस्पृष्टं संस्पृशेद्यदि । ततः स्नात्वाथ आचम्य जपं कुर्यात्समाहितः
तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा तु द्विपूर्वं द्विजोत्तमः । स्नात्वा चामे द्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्पृशेद्यदि ।

कृत्वा शौचं ततः न्नायादुपोप्य जुहुयाद् व्रतम् ॥ ६६ ॥

चाण्डालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्ध्यति ।

स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ७० ॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात्प्राणायामत्रयं शुचिः । पलाण्डुं लशुनञ्चैव घृतं प्राप्य ततः शुचिः
ब्राह्मणस्तु शुना द्रष्टव्यं सायम्पयः पिबेत् । नाभेरूर्ध्वन्तु द्रष्टव्यं तदेव द्विगुणं भवेत्
स्यादेतत्त्रिगुणं वाहोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् । .

स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्दृष्टो द्विजोत्तमः ॥ ७३ ॥

अनिर्वर्त्तमहायज्ञान्यो भुङ्क्तेऽनु द्विजोत्तमः । अनातुरः सति धने कृच्छ्राद्धेन स शुद्ध्यति
आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।

ऋती न गच्छेद्वायां वा सोऽपि कृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ ७५ ॥

विना द्विरप्सुनाप्यार्त्तः शरीरं सन्निवेश्य च । सचैलोजलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति
तु द्विपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं घोषवसेद्द्विजः
धनुगम्येच्छया शूद्रं प्रतीभूतं द्विजोत्तमः । गायत्र्यष्टसहस्रञ्जपं कुर्यान्नदीषु च ॥ ७८ ॥

कृत्वा तु शपथं विप्रो विप्रस्यावधिसंयुतम् । स चैव यावत्कान्तेन कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्
पङ्क्तौ विपमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।

कायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ॥ ८० ॥

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाऽग्निञ्चन्द्रमेव वा ।

मानुषञ्चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ८१ ॥

कृत्वा तु मिथ्याद्ययनञ्चरेद्भिक्षन्तु घत्सरम् । कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्चसंवत्सरव्रती
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारञ्च गरीयसः । स्नात्वा नानाश्रन्नहःशेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्
ताडयित्वा तु णेनापि कण्ठं वद्ध्वाथ वाससा । चिवादेवापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्

अथगूर्यं (४) अरेत्स्वच्छमतिहृच्छं निपातने ।

हृच्छातिहृच्छं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ८५ ॥

शुरोराकोशमृतं कुवात्हृत्वा विशोधनम् । पकरात्रं निराहारं तत्पापस्यापनुत्तं
देवर्षीणामभिमुखं स्त्रीपनाकोशने हृते । उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दानप्यञ्च हिरण्यकम्
देवोपानेषु यं कुर्यान्मूर्धोच्छारं सृष्टं द्विज ।

छिन्धाच्छिधं विशुध्यधञ्जरेच्छान्द्रायणं प्रथमम् ॥ ८८ ॥

देवनाथकने मृत्रं हृत्वा मोहाद् द्विजोत्तम ।

शिरस्योत्करुणं हृत्वा चान्द्रायणमथाघरत् ॥ ८९ ॥

देवनाथामृषीणाञ्च देवानाञ्चैवकुत्सनम् । हृत्वासम्यक् कुर्वीतप्राजापत्यद्विजोत्तम
तैस्तु सम्मार्पणं हृत्वा स्नात्वा देवसमर्चयेत् ।

दृष्ट्वा धाक्षतं मास्यग्नं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरन् ॥ ९१ ॥

यं सर्वभूताधिपतिविश्वेशानविनिन्दति । न तस्यनिष्कृतिं शनयाक्लृप्तं वपशर्तं रपि
चान्द्रायणं अरेत्पूर्वं हृच्छं वातिहृच्छकम् । प्रपन्नं शरणं देवसंस्मृत्वात्पापाद्विमुच्यते
सपत्न्यदानविधिं सर्वपापविशोधनम् । चान्द्रायणस्यविधिना हृच्छं वातिहृच्छकम्
पुण्यक्षत्राभिगमनं सवपापविशोधनम् ।

भमावास्या तिथिं प्राप्य यं समाराधयेद्बुधमपम् ॥ ९५ ॥

ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९६ ॥

हृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा हृष्णस्यतुर्दशीम् । सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते
त्रयोदश्यां तथा रात्रीं सोपहारं त्रिलोचनम् । दृष्ट्वा प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः
उपोषितञ्चतुर्दश्यां हृष्णपक्षे समाहितं । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च । प्रत्येकं तिलसयुक्तान्द्रात्सप्तोदकावलीं
स्नान्त्वा दद्याच्छ पूर्वदिशि मुच्यते सर्वपातकैः ।

ब्रह्मचर्यमथ शय्या उपवासो द्विजाश्चनम् ॥ १०१ ॥

प्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तं सपत्न्यमानसं ।

अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्रदिश्य पितामहम् ॥ १०२ ॥

ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः । पृथ्यामुपोपितोदेवंशुक्रपक्षेसमाहितः
सप्तम्यामर्चयेद्दानुं मुच्यते सर्वपातकैः । भरण्याञ्चतुर्थ्याञ्च शनैश्चरदिने यमम्
पूजयेत्सतजन्मोत्थंमुच्यते पातकैर्नरः । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यजनार्द्रनम्
द्वादश्यां शुक्रपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते । तपोजपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ॥
ग्रहणादिषु कालेषुमहापातकशोधनम् । यः सर्वपापयुक्तांऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः । ब्रह्मचरंघातृत्वनं वा महापातकदूषितम्
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टासह पावकम् । एतदेव परंस्त्रीणांभ्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता । न तस्या विद्यतेपापमिहलोके परत्र च
(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा ।

पतिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका । न यास्तुपातकतस्यामिहलोके परत्रच)
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा । नास्याःपराभवंकर्तुं शक्नोतीहजनःकश्चित्
यथा रामस्य सुभगासीतात्रैलोक्यविश्रुता । पत्नीद्राशरथेर्देवीविजियेराक्षसेश्वरम्
रामस्य भार्या सुभगा रावणोराक्षसेश्वरः । सीतांविशालनयनांचक्रे कालनोदितः
गृहीत्वा माययाविषं चरन्तीं विजनेवने । समाहर्तुं मतिं चक्रेतापसःकिलकामिनीम्
विज्ञायसा घतद्वावंस्मृत्वादाशरथिम्पतिम् । जगामशरणं वह्निमावसथ्यंशुचिस्मिता
उपतस्थेमहायोगं सर्वलोकविदाहकम् । कृताञ्जलीरामपत्नीसाक्षात्पतिमिवाच्युतम्
नमस्यामि महायोगं कृशानुं गह्वरम्परम् । दाहकं सर्वभूतानामीशानां कालरूपिणम्
प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम् । योगिनं कृत्स्नवसनं भूतेशं परमम्पदम्
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम् । तम्प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रथमं सर्वतेजसाम्
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यम्परमेष्ठिनम् ॥ ११६ ॥

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाप्रासं त्रिशूलिनम् । कालाग्नि योगिनामीशंभोगमोक्षफलप्रदम्
प्रपद्ये त्वां चिरूपाक्षं भूर्भुवःस्वः स्वरूपिणम् ।
हिरण्यये गृहे गुप्तं महान्तममितीजसम् ॥ १२१ ॥

वैश्यान्तरग्रपत्तिर्ह सर्वभूतेष्वयस्मिन्निवृत्तम् । हृष्यकष्यवहं देव प्रपद्ये वह्निर्मीश्वरम् ॥
 प्रपद्येतत्परन्तरवरेण्यसवितु रिचम् । स्वर्गमग्निपरं उवाचि स्वाश्वहृष्यघाहम्
 इति षड्पट्टक जप्या रामपत्नी यशस्विनी ।

ध्यायन्ती मनसा तन्व्यो राममुन्मीलितेक्षणा ॥ १५ ॥

अथावमध्याह्नमपानहृष्यवाहो मनेश्वर । भागिरामोसुनीतारमा तेजसा निरहृषिप
 मृष्टा मायामयीसीतां स रावणपथेच्छया । मातामादायसमेष्टा पापकोऽन्तरधीयत
 ता दृष्टा तादृशी सीतां रावणो राक्षसेश्वर ।

समादाय ययो लड्डा मागता तरसन्धिताम् ॥ १२७ ॥

हृन्त्यानु रावणपथे रामोत्तममणसयुत । समादायामचत्सीतां शङ्काकुलितमानस
 सा प्रयपयभूताना सीतामायामर्यापुन । विवेशपादकक्षिप्रदहाहउषलनोऽपिताम्
 न्ध्या मायामयी साता भगवतुत्पदीधिति ।

रामायान्शयत्सीता पापकोऽभू सुरप्रिय ॥ १३० ॥

प्रमृशन्त धरणीं कराम्या सा सुमध्यमा । अकारप्रणतिम्भूमीरामायजनका मजा
 दृष्टा हृन्मना रामो विन्मयाकुललोचन । प्रणम्य वह्नि शिरसा तोपयामास रावण
 उवाच वह्नि भगवान् किमेवा धरणीर्जनी । दग्धा भगवता पूषं दृष्टा मत्पाश्वंमगता
 तमाह देवो लोकानां दाहको हृष्यवाहन । यथावृत्त दाशरथि भूतानामव सन्निधौ
 इयं सा परमा सार्थी पार्वतीष मिया तथ ।

आराध्य लब्ध्वा तपसा देव्याभ्रात्यन्तपद्ममा ॥ १३५ ॥

मत्तुं शुभ्रुणोपेतासुशीलेय पतिव्रता । भवानीवेश्वरे गुप्ता माया रावणकामिता
 या नाता राक्षसेशेन सीता भगवती इता ।

मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया ॥ १३७ ॥

तदयमभवता दृष्टो रावणो राक्षसेश्वर । मायोपसहता शैव हतो लोकविनाशन ॥
 गृहाण शैवा विमलाज्ञानकीवचनाममम । पश्यनारावणदेवं स्वात्मानग्रमपाव्ययम्
 हयुक्त्वा भगवाभ्रण्डो विश्वार्चिर्विभवतोमुक्त्वा ।

मानितो राघवेणाग्निभू तैश्चान्तरथीयत ॥ १४० ॥

एतत्पतिव्रतानां वैमाहात्म्यं कथितं मया । स्त्रीणां सर्वाग्रशमनम्प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्
अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः । न्वद्रेहं पुण्यतीर्थपुत्यक्तवामुच्येत कित्त्वियवान्
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु त्वात्वापुण्येषु वा द्विजः । मुच्यते पातकैः सर्वैः सश्चिर्नरपि पुरुषः

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया । महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः
योगेन विधिनायुक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत् । स पश्यति महादेवं नाभ्यः कल्पशतैरपि
स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पान्मेश्वरम् । न तस्माद्दधिकोलोके स योगी परमो मतः
यः संस्थापयितुं शक्नोत कुर्यान्मोहिनोजनः । स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवन्प्रियः
तस्मात्सदैव द्रातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः । धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै
यः पटेद्भवतां तित्यं सम्वादं मम सर्व हि । सर्वपापघनिर्मुक्तो गच्छेत् परमांगतिम्

श्राद्धे वा देविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।

पठेत् नित्यं सुमनाः श्रोतव्यञ्च द्विजातिभिः ॥ १५० ॥

योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन् ।

स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम् ॥ १५१ ॥

एतावदुक्तवाभगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः । समाश्वाम्यमुनीन्सूतं जगाम च यथागतम्

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तवर्णनं नाम

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

समाप्ता व्यासगीता ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गयादिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

अथ उचु

ताद्यानि यानि लोकेऽस्त्विन्विधृतानि महान्त्यपि ।

तानि त्वं कथयाऽस्माकं रोमहर्षणं साम्प्रतम् ॥ १ ॥

रोमहर्षण उवाच

शृणुष्वकथयिष्येऽहताद्यानिविविधानि च । कथितानिपुराणेपुमुनिभिर्ब्रह्मपादिभिः
यत्रज्ञानब्रह्मोहोम आद्दानादिकृत्तम् । एकैकशो मुनिभ्रेष्टा पुनात्यासप्तमकुलम्
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मण परमेष्ठिन । प्रयागप्रथितं तीर्थंयस्यमाहात्म्यमीरितम्
अन्यश्च तीर्थप्रवर कुरूणा देववन्दितम् । श्रुपीणामाश्रमेर्जुंश्च सर्वपापविशोधनम्
तत्र आत्वा विशुद्धात्मा दम्भहात्सर्ववर्जित ।

वदाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ६ ॥

परं गुरो गयानाथं पितृणाञ्जातिदुल्भम् । कृष्वापिण्डप्रदानं तु न भूयो जायते नर
सहृद्याभिगमनदृष्ट्यापिण्डप्रदातिषु । तारिता पितरस्तेन यास्यन्ति परमायतिम्
तत्र लोकहिताधाय रट्टेण परमात्मना । शिलातले पत्रं न्यस्तं तत्र पितृन्प्रसादयेत्
गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्नोनाधिगच्छति । शोचन्ति पितरस्तु ब्रह्मणा तस्य परिश्रम
गायन्ति पितरा भाषा कीर्त्तयन्ति महत्तय ।

गया यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्-सन्तारयिष्यति ॥ ११ ॥

यदि म्यापातकोपेत स्वधर्मपरिधर्जित ।

गया यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ १२ ॥

पृष्टव्यावहय पुत्रा शीलवन्तो गुणान्विता । नेशन्तु समवेतानाद्यथेकोऽपि गयावजेत्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः । प्रद्याद्विधिवद्विपण्डानायागत्पाममाहित-

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः ।

कुलान्युभयतः सप्त समुद्रधृत्याऽऽप्नुयुः परम् ॥ १५ ॥

अन्यच्चतीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् । प्रभासमिति चिख्यातं यत्रास्तेभगवान्भवः

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।

कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥

तीर्थन्त्रैयम्यकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् । पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत्

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम् । ब्राह्मणान्पूजयित्वा च गाणपत्यं लभेत सः

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः । सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रमालोक्य कारणम् ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम् । तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रुतम्

पण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।

उपित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम् ॥ २२ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम् । एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥ २३ ॥

दत्त्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम् ।

सार्धभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् । ग्रहणे तद्गुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २५ ॥

अन्याच्च विरजानामनदीत्रैलोक्यविश्रुता । तस्यां स्नात्वा नरोचिप्रो ब्रह्मलोकमर्हायते

तीर्थं नारायणस्यान्यं नान्ना तु पुरुषोत्तमम् । तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः

पूजयित्वा परं चिष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः ।

ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु चिष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ २८ ॥

तीर्थानाम्परमं तीर्थं गोकर्णं नाम विश्रुतम् । सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः

दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णम्परमुत्तमम् । ईप्सितांल्लभते कामान् रुद्रस्य द्रवितो भवेत्

उत्तरञ्चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः । महादेवञ्चार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्

तत्र देवो महादेवः स्थाणुरित्यभिचिथ्रुतः । तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणांमुच्यते नरः

अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्यं स्थानं चिष्णोर्महात्मनः ।

समृज्य पुर्यं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयने ॥ ३३ ॥

यत्र नारायणी देवो रद्रेण त्रिपुरारिणा । हृत्पा यज्ञस्य मयन दक्षस्यतु विसर्जितः
समन्ताद्योजनश्रेष्ठ सिद्धर्षिगणसेवितम् । पुण्यमायतनविष्णोस्तथास्मन्ते पुरयोत्तम
धन्यत्वोक्तानुचे विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मण ।

मुक्तोऽत्रपातकर्मस्त्रीं विष्णुसाकृष्यमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

शालिग्रामं महार्तीयं विष्णो प्रीतिविचर्दनम् ।

प्राणास्तत्र नरस्यकचा हृषीकेशमप्रश्यति ॥ ३७ ॥

अर्धतीर्थमिति स्यात् सिद्धावास सुशोभनम् ।

आस्ते ह्यशिरा तिर्यं तत्र नारायण स्वयम् ॥ ३८ ॥

तीर्थं शैलोक्यविष्यात् मिद्धाप्याम् सुशोभनम् ।

तत्राऽस्ति पुण्यद तीर्थं ब्रह्मण परमष्टित ॥ ३९ ॥

पुष्कर सर्वपापघ्न मृतानां ब्रह्मलोकदम् । मनसासस्मरेद्यस्तु पुष्करसर्वद्विजोत्तम
पूयते पातकैः सर्वैः शत्रेण सह मोदते । तत्र देवा सगन्धर्वा सयशोरगराशला
उपासतेसिद्धसद्वा ब्रह्माणवन्नसम्भवम् । तत्र आत्मा ब्रजेच्छुद्धौ ब्रह्माणपरमोष्ठनम्
पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माण मप्रप्रश्यति । तत्राभिगम्य देशेन पुरहृतमनिष्ठितम्
तद्रूपो जायते मर्त्यं सवान् कामानवाप्नुयात् ।

सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्मार्थं सेवितं परम् ॥ ४४ ॥

पूजयित्वा यत्र रुद्रमभ्यर्षयत् भवेत् । यत्र मङ्कणका रद्र प्रपन्न परमेध्वरम् ॥ ४५ ॥
आराधयामास शिव तपसागोतृपध्वजम् । प्रजङ्गालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तथा
ननतं हृषवेगेन शान्धा रुद्र समागतम् । तं प्राह भगवान् रुद्र किमर्थं नर्त्तितं वया ४७
दृष्ट्वापिद्वेषमिशाननृत्यतिस्म पुन पुन । सोऽन्वीक्ष्य भगवानीश सगर्वं गवशान्तये
स्वकदेहविचार्यास्मैमम्मराशिमन्शंयत् । पश्यैममच्छरीरोरथ भस्मराशिद्विजोत्तम
माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वाद्दृशोऽन्योऽपि विद्यते ।

यत्सगर्वं हि भवता नर्त्तितं मुनिपुङ्गव ॥ ५० ॥

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम् ।

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक् ॥ ५१ ॥

आख्याय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः । सहस्रशीर्षाभूत्वा स सहस्राक्षःसहस्रपात्
दन्द्वाकरालवदनो ज्वालामालीभयङ्करः । सोऽन्वपश्यदथेशस्यपार्श्वतस्य त्रिशूलिनः
विशाललोचनामेकां देवीञ्चारुविलासिनीम् । सूर्यायुतसमाकारांप्रसन्नवदनांशिवाम्
सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तममितद्युतिम् । दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वैपमानोमुनीश्वरः
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी । प्रसन्नो भनवानीशस्यभ्यकोभक्तवत्सलः
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत् । आलिङ्ग्य भक्तप्रणतं देवदेवःस्वयंशिवः
न भेतद्यं त्वया वत्स! प्राहकिन्नेदम्यहम् । प्रणम्यमूर्ध्नांगिरिशंहरं त्रिपुरसूदनम्
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः । नमोऽस्तुतेमहादेवमहेश्वरनमोऽस्तु ते
किमेतद्भवद्रूपंसुखोरंविश्वतोमुखम् । का च सा भगवत्पार्श्वेराजमानाव्यवस्थिता
अन्तर्हिते घ सहसा सर्वमिच्छामिघेदितुम् । इत्युक्ते व्याजहारंशस्तदामङ्गलकंहरः
महेशः स्वात्मनो योगं देवीञ्च त्रिपुरानलः । अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः
दाहकः सर्वपाशानां कालः कालकरोहरः । मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचितनात्मकम्

सोऽन्तर्ध्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः ।

तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥ ६४ ॥

प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनीः सनातनी ।

स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत् ॥ ६५ ॥

नारायणःपरोऽव्यक्तोमाथारूपइति श्रुतिः । एषमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्
योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविशकम् । तथा वै सङ्गतोदेवः कूटस्थःसर्वगोऽमलः
सृजत्यशेषमेवेदं स्वसूर्त्तः प्रकृतेरजः । स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः ॥
तवैतत्कथितंसम्यक्स्मृत्त्वंपरमात्मनः । एकोऽहंभगवान्कालोह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः
समास्थायपरम्भावं प्रोक्तोरुद्रोमनीषिभिः । मयैवसा पराशक्तिर्देवीविद्येति विश्रता
दृष्टो हि भवतानूनं विद्यादेहः स्वयं ततः । एषमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः ॥

चिष्णुग्रहाद्यभगवान्द्रुक् कालरतिधुति । अयमेतदनाद्यन्तग्रहण्येष ध्यवस्थितम्
नशामक तदव्यक्त तदक्षरमिति श्रुति । आमातन्दपर तस्य चिमात्रं परमः परम्
ब्राह्मणं निष्कं ग्रहं तस्मादन्यत्र चिद्यते ।

एष विज्ञाय भवता भक्तियोगाधयेष तु ॥ ७४ ॥

सम्पुञ्ज्योचन्दनीषाऽह नतस्तपश्यसाश्वरम् । एतावदुक्त्या भगवाञ्जगामाशनहर
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः । एतत्पवित्रमनुल तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ॥
मसेय ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सवपातरैः ॥ ७६ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे गयात्त्रिनातापिधताथमाहात्म्यवर्णननाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

पट्त्रिंशोऽध्याय

रुद्रकोटि कालञ्जरीयरणनेकालवधवर्णनम्

सुत उवाच

अन्यत्पवित्रविपुलं तार्थं ब्रह्मैक्यविधुतम् । रुद्रकोटिरितिख्यात रुद्रन्यपरमद्विन
पुरा पुण्यतमं काले द्यदशनतत्परा । कोटिग्रहण्यो दातास्त दशमगमन्परम् ॥

अहं द्रक्ष्यामि गिरिंशः पूर्वमेव पिनाकिनम् ।

अन्योऽन्य भक्तियुक्तानां विधानोऽभू महान् बिल ॥ ३ ॥

तथा भक्ति तया दृष्टा गिरिशो योगिना गुरुः ।

कात्रिरूपोऽभवद्गुडो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत् ॥ ४ ॥

न स्म सर्वे महादेव हर गिरिगुहाशयम् । अपश्यन् पार्श्वत नाथ हृष्टपुष्टधियोऽभवन्
अनाद्यन्त महादेव पूर्वमाहमाश्वरम् । दृष्टवानिति प्रसथा ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्
अथा तरिक्षेविमन्मपश्यन्तिस्ममहत्तरम् । ज्योतिस्तत्रैवतेसर्वेऽभिलषन्त परमपदम्
यन्म देवोऽभ्युपितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।

दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयुः ॥ ८ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम् । तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत्
अथान्या पन्ननगरी देशः पुण्यतमः शुभः । तत्रगत्वापितृनृपूज्यकुलानां तारयेच्छतम्
कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वरः । कालञ्जरं भजन्देवं तत्र भक्तप्रियो हरः ॥११
श्वेतो नाम शिवेभक्तो राजर्षिप्रवरःपुरा । तदाशीस्तन्नमस्कारैःपूजयामास शूलिनम्
संस्थाप्य विधिनारुद्रं भक्तियोगपुरःसरः । जजाप रुद्रमनिशं तत्र सन्न्यस्तमानसः
सितंकार्णाजिनं दीप्तं शूलमादायभीषणम् । नेतुमभ्यागतोदेशंस राजा यत्रतिष्ठति
वीक्ष्य राजा विष्टः शूलहस्तं समागतम् । कालंकालकरंधोरं भीषणं चण्डदीपितम्
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमुत्तमम् ।

ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥ १६ ॥

जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम् । एह्येहीति पुरः स्थित्वाकृतान्तःप्रहसन्निव
त्तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः । एकमीशार्चनरतं विहायान्यान्निपूद्य ॥
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम् । रुद्रार्चनरतो धान्यो मद्रशे को न तिष्ठति
एवमुक्त्वास राजानं कालो लोकप्रकालनः । वबन्ध पाशै राजापि जजापशतरुद्रियम्
अथाऽन्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभर्तुः पुराणम् ।

ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श ॥ २१ ॥

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।

तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो मेने चात्मानमप्रयागच्छतीति ॥ २२ ॥

आगच्छन्तं नाऽतिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम् ।

व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं राजर्षिस्तन्नेतुमभ्याजगाम ॥ २३ ॥

आलोक्यासौ भगवानुप्रकर्मा देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः ।

एवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालरूपं ममेति ॥ २४ ॥

श्रुत्वा वाक्यं गोपते रुद्रभावः कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम् ।

चद्भ्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशै रुद्रो रौद्रं श्चाभिदुद्राव वेगात् ॥ २५ ॥

प्रेक्ष्यायान्त शैलपुत्रीमधेश सोऽन्वीक्ष्यान्ते चिश्वायाविधिम् ।

सावज्ञ धै धामपादेन काल त्वेतस्यैव पश्यतो व्याजयान ॥ २६ ॥

ममार सोऽभिभाषणो महेशपाद्यातित । विराजते सहोमया महेश्वर पिताकधृत्
निरीक्ष्य देवमीश्वर प्रहृष्टमानसो हरम् । ननाम धै तमव्यय स राजपुङ्गवस्तदा ॥
नमोभवाय हेतने हराय चिश्वाशम्भवे । नम शिवाय धामते नमोऽपचर्गदायिने ॥
नमो नमो नमो नमोमहाविभूतये नम । चिभामर्हानरूपिणे नमो नराधिपाय ते ॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदु खशासन । अनादिनित्यभूतये घराहृष्टधरिणे ॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः । नमो महानगाय ते शिवाय शङ्कराय ते
अथानुगृह्य शङ्कर प्रणामतत्परं नृपम् । स्वगाणपत्यमव्यय स्वरूपतामधो ददी
सहोमया सपार्षद् सराजपुङ्गवो हर । मुनीशसिद्धचन्द्रित क्षणाददृश्यतामगाल् ॥
काले महेशनिहने लोकनाथ पितामहः । अयाचन धरं रुद्र सर्जीवोऽय भवित्यिति

नाऽस्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज ।

एतान्तस्यैव भविता तत्कार्यं चिनियोजित ॥ ३१ ॥

स देवदेवयवनाद्देवदेवेश्वरोहर ।

तथास्तिथ याह चिश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत् ॥ ३१ ॥

इत्येतत्परम तीर्थं बालञ्जरमिति धृतम् । गरुडाम्यर्च्यं महादेवगाणपत्य सचिन्द्रति

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे रुद्रकोटि-कालञ्जरीर्धवर्णनेकालधधवर्णन

नाम पटत्रिंशोऽध्याय ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

इदमन्यत्परंस्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत् । महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा । शिवातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्भूलितविग्रहाः । उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः

स्नात्वा तत्र पदं शाब्दं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।

नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अन्यच्चदेवदेवस्यस्थानं शम्भोर्महात्मनः । केदारमितिचिख्यातं सिद्धानामालयंशुभम्
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् । पीत्वा चैवोदकंशुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभतेफलम् । द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः
तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् । तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम् । अक्षयं चिन्दते स्वर्गं तत्र गत्वाद्विजोत्तमः
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् । यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥

तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः । मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः
महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।

तत्राऽभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥ १२

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नाश्रीपर्वतं शुभम् । अत्रप्राणान्परित्यज्य रुद्रस्यदयितो भवेत्
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः । स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम्
गोदावरीनदीपुण्या सर्वपापप्रणाशिनी । तत्रस्नात्वापितृन्देवांस्तर्पयित्वायथाविधि
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत् । पवित्रसलिला पुण्याकावेरी विपुला नदी
तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः । त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोपितेनवा

द्विजानानां तु कथितं तीर्थानामिह सेषणम् ।

यस्य घाट्मनसी शुद्धे हस्तपार्श्वे च संस्थिता ॥ १८ ॥

अन्तोलुपोद्भवत्पार्वतीतायां तावत्प्रमाप्नुयात् । स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिपुलोकेषु विप्रुत-
तत्र त्रिद्वितीत्येव स्वन्दोऽमरतमस्त्वत् । स्यात्प्राप्तुमारघारायां वृत्वा देवघाटितपत्र
आराध्य पण्मुल देवस्वन्देन सह मोदते । नदीत्रैलोक्यविष्णवाता तावत्पणोतिनामा
तत्र प्रात्वा पितृन्मकरातपयित्वा यथाविधि । पापकर्तृनपि पितृ स्तारयेन्नात्र सश-
चन्द्रनाथमिति पदानं कायेषा प्रमथेऽक्षयम् । तीर्थे तत्र भवेद्भक्तमृत्तानासङ्गनिप्र-
विन्द्यापाद् प्रवश्यन्ति दशदशं सदाशिवम् । भक्तायेतेन पर्यन्ति यमस्य यद्नद्विज
देविकायां वृषा नाम तीर्थं सिद्धिनिपेधितम् ।

तत्र स्यात्पितृभ्यः कृत्वा यागमिद्विज्ज चिन्दति ॥ १९ ॥

श्राद्धमधिकं तार्थं मयपापविनाशकम् । दशानामभ्येधाना तत्राप्नोति फलं न
पुण्डराय तथा तार्थं श्रद्धार्थं यथाशक्तिम् । तत्राभिगच्छयुक्तामापुण्डरीकफलमे-
हार्थं च परमं तार्थं श्रद्धार्थं मिति स्मृतम् । श्राद्धमथयित्वात्र ब्रह्मर्षिके मर्त्यां
मरस्यन्त्या पितृशतं पृथक्प्रवणं शुभम् ।

व्यामनार्थमिति श्रुत्वा मनाश्च नगोलम ॥ २० ॥

यमुनप्रमथक्षेत्रे मयपापविनाशकम् । पितृणां बुद्धिना देवा गन्धकालीति विभूत
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृता जातिस्मरते मंगलम् ।

बुधेनुद्ग पापघ्नं सिद्धकारणं विवितम् ॥ २१ ॥

प्राप्तास्तत्र परित्यज्य बुधेनुघतो भयम् । उमाबुद्गमिति श्रुत्वा यत्र सा वृषपत्न्य
तत्रान्यत्र महादेवी गोमहेश्वरत्वं लभेत् । भृगुबुद्धे तत्र स्नानं ध्यात्वा तत्रावृत्त
बुधेनुमयत मय पुनर्जाति मतिमम । श्राद्धपत्रस्य महातीर्थे श्राद्धं पितृनिधना
तत्र ध्यात्वा दिव्यानि कियं पापघ्नेच्छया ।

दशापायां तथा दानं ध्यात्वा दीयं मयो जय ॥ २२ ॥

मशुपञ्चमपञ्चैव कृतं भवति सार्धं । तार्थं विजातिभिर्हृदं कथापैतृत्ताङ्गुलम्

त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते । वैतरण्यां महातीर्थं स्वर्णवेद्यां तथैवच
 र्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे । भरतस्याश्रमे पुण्येपुण्येगृध्रवनेशुभे ॥ ३८ ॥
 महाहृदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् । मुण्डपृष्ठे पदंन्यस्तंमहादेवेन धीमता
 हेताय सर्वभूतानां नस्तिकानां निदर्शनम् । अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः
 पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णं त्वचमिवोरगः ।

नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ४१ ॥

उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्यब्रह्मर्षिगणसेवितम् । तत्रस्नात्वादिव्यान्तिसशरीराद्विजातयः
 दत्तं वापिसदाश्राद्धमक्षयंस्मुदाहृतम् । ऋणैस्त्रिभिर्नरःस्नात्वामुच्यतेक्षीणकल्मषः
 मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।

उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ४४ ॥

तस्मान्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथावलम् ।

स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥ ४५ ॥

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः ।

योजनानां सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरिः ॥ ४६ ॥

सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः । तत्र पुष्करिणी रम्या सुपुष्पानामनामतः
 तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।

श्राद्धं भवति चाक्षयं तत्र दत्तं महोदयम् ॥ ४८ ॥

तारयेच्च पितृन्सम्यग्दशपूर्वाद्दशापरान् । सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गापुण्यासमन्ततः
 नद्यःसमुद्रगाः पुण्याःसमुद्रश्चविशेषतः । वदयांश्रममासाद्य मुच्यतेसर्वकिल्बिपात्
 तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः । अक्षयं तत्रदानंस्याच्छ्राद्धदानादिकञ्चयत्
 महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः । तारयेच्च पितृन्सर्वान्दत्वा श्राद्धं समाहितः
 देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । महता देवदेवेन तत्र दत्तंमहेश्वरम् ॥ ५३ ॥

मोहयित्वा मुनीन्सर्वांन्समस्तैः सम्प्रपूजितः ।

प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भाचितान् ॥ ५४ ॥

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा । मद्वाचनासमायुक्तास्तन सिद्धिमवाप्स्यथ
यत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणा । तेषां ददामि परमगाणपत्यं हि शश्वतम्
अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु ।

प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयाद् ॥ ५७ ॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थदेशान्तरगतजनाः । तेषाञ्च सर्वपापानिनाशयामिद्विजोत्तमा
श्राद्धदानतपोहोमपिण्डनिर्वपणतथा । ध्यात उपध्नियमसर्वमप्राप्तयं कृतम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः । देवदारुपत्रपुष्पं महादेवनिपेदिताम्
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः । तत्र सन्निहितागङ्गा तीर्थान्यायतनानि च
इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे महाख्याद्वितीयवर्षनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दारुवनाख्यानदर्शनम्

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनम्प्राप्तो भगवान्गोवृषभ्यज । मोहयामास विप्रेन्द्रान्सूतं तद्वक्तुमर्हसि ॥
सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिपेधिते । सपुत्रदारुतनयास्तपश्चेत् सहस्रशः ॥ २ ॥
प्रवृत्तं विधिर्धर्मं प्रकुर्वाणा यथाविधि । यजन्तिविविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः
तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलशृन् । ध्याख्यापयन्सदा दोषं यथोदारुवनहर
कृत्वा विभ्रगुर विष्णु पार्श्वे देवोमहेश्वर । यथो निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थञ्चशङ्कर
आस्थाय विपुलञ्चैवजनविशतिघटसम् । लीलालसो महाबाहु पीताङ्गश्चारलोचन
चामीकरसपु श्रीमान्पूर्णाचन्द्रनिभानन । मत्तमातङ्गगमनो दिग्धासा जगदीश्वर
जातरूपमयीं मालासर्बर्त्तनैरल्लृप्ताम् । दधानो भगवानीश समागच्छतिसस्मित

योऽनन्तः पुरुषो योनिलोकानामव्ययोहरिः ।

स्त्रीवैषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् (शूलिनम्) ॥ ६ ॥

सम्पूर्णवन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् । शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणनूपुरकद्वयम् ॥ १० ॥

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलञ्चारुलोचनम् । उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम् ॥

एवं स भगवानीशो देवदारुचनं हरः । चञ्चार हरिणा साद्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥

दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् । मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः

विस्त्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।

सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥ १४ ॥

ऋषीणां पुत्रकायेत्युयुं वानोजितमानसाः । अन्वागमन्द्दृषीकेशं सर्वकामप्रपीडिताः

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता तःरीगणा नायकमेकमीशम् ।

दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति ॥ १६ ॥

ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः ।

आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं शुभाङ्ग (भ्रूभङ्ग) मन्ये विचरन्ति तेन ॥ १७ ॥

आशतमथैकामपि वासुदेवो मार्या मुरारिर्मनसि प्रविष्टः ।

करोति भोगान्मनसि प्रवृत्तिं मायानुभूयन्त इतीव सम्यक् ॥ १८ ॥

विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाध्रवस्त्रीगणसन्निविष्टः ।

अशेषशक्त्या समयं निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेवः ॥ १९ ॥

करोति नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः पुनरेव भूयः ।

ययौ समाख्य हरिः स्वभावं तर्मीदृशं नाम तमादिदेवम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम् ।

मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं सन्दधिरं भृशम् ॥ २१ ॥

अतीवपरुषं वाक्यं प्रोचुर्देवंकपद्दर्दिनम् । शेषुश्चविचिधैर्वाक्यैर्माययातस्यमोहिताः

तपांसि तेषां सर्वेषांप्रत्याहन्यन्तशङ्करे । यथादित्यप्रतीकाशेतारकानभसिस्थिताः

तं भर्त्स्य तापसा चिप्राः समेत्य नगच्छन्तः ।

को भवानिति देवेश पृच्छन्ति मम विमोहिता ॥ २४ ॥

सोऽप्रर्वाहमधानीशस्वपद्यन्तुमिडागत । इदानीं भार्यया देश भवद्भिरेहि सु-

तम्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृश्यादा मुनिपुङ्गवा ।

ऊचुर्गृहात्वा घसन त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ॥ २६ ॥

अथोवाच घिहृन्देश पिनाकी नीललोहिन ।

सन्प्रेक्ष्य जगतं योनिं पादवस्थञ्च जनादनम् ॥ २७ ॥

कथं भवद्भिरदितं स्वभाषापापपातसुकं ।

त्यक्तव्या मम भार्येति घमञ्च शान्तनात्मै ॥ २८ ॥

श्रुत्वा (मुनय) ऊचु-

व्यभिचाररता भार्यां सन्त्यान्या पतिनेरिता ।

अस्माभिमक्ता सुमगा नेदृशास्त्यागमहति ॥ २६ ॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रमिनसाप्यन्यमिच्छति । नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामिकदा

कथय ऊचु-

दृष्ट्वा व्यभिचरन्ताह ह्यस्माभिः पुरुषधम । उक्त्वा मत्य भयता गम्यता क्षिप्रमे

एवमुक्ते महादेव सत्यमेव मयेरितम् । भवता प्रतिभा ह्येषा त्यक्त्वासीं विध्वज

सोऽगच्छद्दरिपासाङ्गमुनीन्द्रस्यमहात्मनः । घसिष्टस्याधमपुण्यमिक्षार्थोपरमे

दृष्ट्वा समागत देव भिक्षमापन्नरुन्धती । घसिष्टस्य प्रियभक्त्याप्रत्युद्गम्यननाम

प्रस्थाल्यपादौ विमलदत्त्वाचासनमुत्तमम् । सम्येक्ष्यशिथिल गात्रमभिघातहर्तुं

सन्धयामास भैरव्यैर्विषण्णवदना सती ॥ ३० ॥

चकार महतीं दूढाप्रार्थयामास भार्यया । को भवान्कुतभावात् किमाचारो भवति

उच्यतामह भगवान्निन्दानामप्रवरो हाहम् ॥ ३६ ॥

यदेतन्मण्डलं शुभ्रं भाति ब्रह्ममयसदा । एतैव देवता महाधारयामि सर्वैश्च तु ॥ ३

इत्युक्त्वा प्रथमार्थमातनुगृह्यपतिमताम् । ताडयाञ्चकिरेदण्डैर्लोहिभिर्मुष्टिभिर्द्वि

दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नम्रं विकृतिलक्षणम् । प्रोचुरेतद्वदह्निङ्गमुत्पाट्य सृष्टुर्मते! ॥
 तानब्रवीन्महायोगीकरिष्यामीतिशङ्करः । युष्माकं मामकेलिङ्गेयदिद्वेषोऽभिजायते
 उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा । नापश्यंस्तत्क्षणाच्चोशं केशावं लिङ्गमेव च
 तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः । न राजते सहस्रांशुश्चवाल पृथिवी पुनः
 निम्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुभुभे च महोदधिः ॥ ४२ ॥

अपश्यच्चानुसूत्रात्रेःस्वप्नं भार्यापतिव्रता । कथयामासविप्राणांभयादाकुलितेन्द्रिया
 तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।

भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ॥ ४४ ॥

तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः । सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्
 उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मचित्तैः । चतुर्वेदैर्मुक्तिमद्भिः सावित्र्यासहितंप्रभुम्
 आसानमासनेरम्येनानाश्चर्यंसमन्विते । प्रभासहस्रकलिलेशानंश्वर्यादिसंयुते ॥ ४७

विभ्राजमानं वपुया सन्मितं शुभ्रलोचनम् ।

चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम् ॥ ४८ ॥

चिलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् । शिरोभिर्द्वरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्
 तान्प्रसन्नोमहादेवश्चतुर्मुक्तिश्चतुर्मुखः । ध्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ॥
 तत्तन्म्य वृत्तमखिलंब्रह्मणःपरमात्मनः । क्षापयाञ्चकिरे सर्वे कृत्वा शिरसिचाञ्चलिम्

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्गुरुचनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः । भार्ययाचारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नम्रपवांह
 मोहयामास वपुया नारीणांकुलमीश्वरः । कन्यकानांप्रियोयस्तुदृपयामासपुत्रकान्
 अस्माभिर्विविधाः शापाः(वाताःप्रदत्ताः) प्रवृत्तास्ते पराहताः ।

ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गन्तु विनिपातितम् ॥ ५४

अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च । उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयङ्कराः
 क एष पुरुषो देवः भीताः स्मः पुरुषोत्तम ! भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युतः ॥
 त्वंहि वेत्सि जगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम् । अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय

विष्णोपितोमुनिगणैर्विभारमाकमलोद्भव । ध्यात्वादेव त्रिशूलाद्गुं हताञ्जलिमापत
ब्रह्मोवाच

हा षष्ट्यमवतामद्य जातंसर्घार्चनाशनम् । धिग्वलधिक्वतपञ्चयौ मिथ्यैव भवतामिदं
सम्प्राप्य पुण्यसंस्काराभिधीनापरमनिधिम् । उपेक्षितं वृथाचारैर्भयद्विरिहमोहितं
काङ्क्षन्नेयोगिनो नित्यं यतन्तो यतथोनिधिम् । यमेव त समासाद्यहामघद्विरपेक्षितम्
यजन्ति यज्ञैर्विधिधैय-प्राप्तेर्वेदधादिन । महानिधिं समासाद्य हा भवद्विरुपेक्षितम्
यमर्चयित्वा सततं विश्वेशन्वमिदमम । स द्यापेक्षितो दृष्ट्वा निधानम्भाग्यवर्जिता
यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम् ।

तमासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्विरुं धारणम् ॥ ६४ ॥

एष देवो महादेवो विशेषस्तु महेश्वर । न तस्य परम किञ्चिदपदं समन्निगम्यते ॥
देवतानामृ-रीणा धा पितृणाञ्चापिशाभवत् । सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥
संहृत्येव भगवान्कालो भूत्वा महेश्वर । एषैव प्रजा सर्वा सृजत्येव स्वतेजसा
एष चर्का धमघर्ती धीवत्सहृत्लक्षण । योगी हृतयुगे देवस्त्रेताया यज्ञ एव च
द्वारे भगवान्कालो धमकेन कर्त्ता युगे (भव) ॥ ६८ ॥

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्त्रो यामिर्विश्वमिदं ततम् ।

तमो ह्यग्री रजो ब्रह्मा सत्त्वंचिष्णुरिति स्मृति ॥ ६९ ॥

भूर्तिरन्यास्मृतावास्य दिग्वासा च शिवा ध्रुवा ।

यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ॥ ७० ॥

यावास्य पार्श्वगा भार्याभवद्विरभिभाषिता । सहिनारायणोदेव परमात्मासनातन
तस्मात्सर्वमिदं जात तत्रैव च लयवनेत् । स एषमोक्षयेत्तत्स्व स एष च परागति
सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् । एकभृङ्गो महानात्मानारायण इति ध्रुति
रेतोऽस्यगर्भो भगवानापोमायातनु प्रभु । स्तूपतद्विधिधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकाङ्क्षिभि-
सहृत्स्य सकल विश्व कल्पान्ते पुरुरोत्तम ।

ज्ञेते योगामूर्त्त पीत्था यत्र चिष्णो परम्पदम् ॥ ७१ ॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणाकथित यथा । अज्ञानन्तपर भाव घांतरागाविमत्सरा
स्थण्डिलेषु विधिवेषु पर्यन्तानागुहासु च । नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनैषु शुभेषु च
शैवालमोजता केचित्केचिदन्तर्जलेशया ।

केचिदन्नायकाशास्तु पादाङ्गुष्ठे ह्यधिष्ठिता ॥ १० ॥

न्तोऽल्लुब्धलिनस्ये ह्यरमकुट्टास्तथापरे ।

शाकपणाशना केचिन्सम्प्रक्षाला मरीचिषा ॥ ११ ॥

वृक्षमूलनिशेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे । कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तोमहेश्वरम्
ततन्तेषां प्रसादार्थं प्रपद्मार्तिहरां हर । चकार भगवान्बुद्धिं योष्यन्पूषभध्वज ।
देव एतयुगं ह्यस्मिच्छृद्धे हिमवत शुभे । दशदास्यनम्राप्त प्रसन्न परमेश्वर ।
मम्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नमो विद्वत्क्षण । उल्मुबव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गलोचन
कचिच्च ह्मनेरीद्रकचिद्रायतिचिन्मित । कचिन्वृत्त्यतिभृद्गारावचिद्रातिमुहुर्मुहु
याश्रमे ह्यटने भिषुयाचन च पुन पुन । माया ह्य्यात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागत
वृत्वा गिरिसुता गौरी पार्वदेव पिनाकभृक । साचपूर्ववद्देवेशी देवदास्यनङ्गता
दृष्ट्वा समागत देव देव्या सह कपर्दिनम् । प्रणेषु शिरसा भूमौतोवयामासुरीश्वरम्
वैदिकैर्विधेमन्त्रैस्तात्रमाहेश्वरं शुभं । अथर्षशिरसाचान्ये रद्राष्टीरचयाभवम् ।
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय त नम । व्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिदूलवरधारिणे ।
नमो दिवाससे तुभ्य विद्वताय पिनाकिने । सर्वप्रणतदेवाय स्वयम्प्रणतात्मने ।
अन्तकान्तहृते तुभ्य सर्वसहरणाय च । नमोऽस्तु नृत्यलीलाय नमो भ्रंवरूपिणे
नरनाराशरीर्य यागिना गुरवे नम । नमो दान्ताय शांताय तापसाय हराय च
विभाषणाय रद्राय नमस्ते वृत्तिवाससे ।

नमस्त लेलिहताय ध्यायणाय च ते नम ॥ २५ ॥

अधोरथोररुपाय धामदेवाय च नम । नम कनकमालाय देव्या प्रियकराय च ॥ २६ ॥
गङ्गास्तल्लिधाराय शम्भवे परमर्षिणे । नमो योगाधिपतये भृताधिपतये नम ।
प्रणाय च नमस्तुभ्यं नमो भम्माङ्गधारिणे । नमस्ते ह्यव्यवाहाय षष्ठिणे ह्यवरेतसे

ब्रह्मणाश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे । आगतिं ते न जानामो गतिं नैव च नैवच
विद्मश्चर ! महादेव ! योऽमि सोऽमि नमोऽस्तुते ।

नमः प्रमथनाथाय द्राघे च शुभसम्पदाम् ॥ ३० ॥

कपालपाणये नुम्यं नमोज्जुष्टनाय ते । नमः कनकपिङ्गाय चारिलिङ्गाय ते नमः ॥
नमो वक्रकर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः । नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥ ३२ ॥

महादेव ! महादेव ! देवदेव ! त्रिलोचन ! श्रम्यतां यत्कृतं मोहात्त्वमेव शरणं हि नः ॥
परितानि चिन्वित्राणि सुखानिगहानि च । ब्रह्मार्दानाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोहिशङ्करः
अज्ञानाद्यदि धामानात्किञ्चिद्वत्कुरुते नरः । तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥
एवं म्नुत्वा महादेवं प्रविष्टंन्तरान्मभिः । उन्तुःप्रणम्यगिरिशं पश्यामस्त्वांगधापुरा
तेषां संस्तवमाकर्ष्यं स्वोमः स्वोमचिभूषणः । स्वयमेव परंरुपं दर्शयामास शङ्करः ॥
तं ते दृष्ट्वायगिरिशं देव्यात्महपिनाकिनम् । यथापूर्वमिथ्यता विप्राः प्रणेःमुहं प्रमाननाः
ततस्तेमुनयः सर्वे संसृत्य च महेश्वरम् । भृगवद्भिर्ग वसिष्ठस्तुविश्वामिश्रन्तथैवच
गौतमोऽग्निः मुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । मरीचिः कश्यपश्चापिन्सर्वर्तकमहातपाः
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४० ॥

कथं त्वां देवदेवेश ! कर्मयोगेनवा प्रभो । ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सर्वेव हि ॥
केन वा देवमार्गेण सम्पूज्योभगवानिह । किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद्दृष्ट्वाहीनः
देवदेव उवाच

एतद्दः सम्प्रवक्ष्यामि गृहं गहनमुत्तमम् । ब्रह्मणा कथितम्पूर्वं महादेवे महर्षयः ॥
साङ्ख्ययोगाद् द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम् ।
योगेन सहितं साङ्ख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥
न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः । ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्तफलप्रदम् ॥ ४५ ॥
भवन्तःकेवलं योगं समाश्रित्वचिमुक्तये । विहाय साङ्ख्यं विमलमकुर्वतपरिश्रमम्
एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम् ।

आगतोऽहमिमं देशं क्षापयन्मोहसम्भवम् ॥ ४७ ॥

तस्माद्भवद्विर्विमलं ज्ञानं केवल्यसाधनम् । ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन ध्योतव्यं दृश्यमेव च
एकं सचरुगो ह्यात्मा केवलश्चित्तिमात्रकः ।

आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै सारयदर्शतम् ॥ ४८ ॥

एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुगीयते । एतं केवल्यमग्रं प्रह्लादाद्यश्च वर्णितं ॥ ४९ ॥
आश्रित्य चैनं परमं तद्विष्टाम्बुतपरायणाः ।

पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥ ५० ॥

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम् । अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरियं शिवा
बहूनि साधनानीह निद्वये कथितानि तु । तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवा
ज्ञानयोगरता शान्तामामेव शरणङ्गताः । ये हि मां भजन्ति रता ध्यायन्ति सततं हि
मद्भक्तितत्परा नित्ययतयः क्षीणकल्मषाः । नाशयाम्यशिरात्तेषां शिरः ससारगङ्गम्
निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम् । गुह्याद्गुह्यतरं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये
प्रशान्तं स्वयतमना भस्मोन्मूलितविग्रहं । प्रह्लादचरुगो नम्रो व्रतं पाशुपतञ्चरेत् ॥
यद्वाक्यं पीनवसनस्यादेकवसनो मुनिः । वेदान्ध्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पाशुपतिशिवम्
यत्पाशुपतो योगसेवतीशो मुमुक्षुभिः । तन्मिन्मिन्स्यते स्तुपडितं निष्कामैरिति हि ध्रुतम्
वातरागमयब्रूयात् मन्मया मामुपाश्रिताः । बहवोऽनेन योगतः पूता मद्वाचमागताः ॥

अ यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।

वेत्वाद्द्विद्वानि मयं च कथितानि तु ॥ ६१ ॥

वामं पाशुपतं सोमं लाकुरञ्च भवम् । असेव्यमनत्कथितं यद्वाह्यं तथेतरम् ॥
चन्मूर्तिर्हं विप्रा नान्यशाखाद्यदिभिः । ज्ञायतं मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा दशमनातनम्
स्थापयन्ध्वमिन् मार्गं पूजयन्ध्वं महेश्वरम् । ततोऽचिराद्दूरं ज्ञानमुपत्स्यति नमःशय
प्रथि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः ।

ध्यानमात्रं हि साविध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।

नेऽपि दाखने स्थित्वा ह्यर्घयन्ति स्म शङ्करम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः । समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः

विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥ ६८ ॥

पिस्यात्सर्वभावानां हेतुरीश्वर एव च । इत्येवं मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम्

आचिरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥ ६६ ॥

कोटिसूर्यप्रताकाशा ज्वालामालासमावृता ।

स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥ ७० ॥

तामन्वपश्यद्विरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।

प्रणोमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति शैतत्परमस्य वीजम् ॥ ७१ ॥

अस्माकमेया परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।

पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामर्थेते मुनयः प्रहृष्टाः ॥ ७२ ॥

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्

पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥ ७३ ॥

आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणोमुरानन्दमचापुरग्रथम् ।

ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्वभौ जन्मचिनाशहेतु ॥ ७४ ॥

इयं या सा जगतो योनिरैका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।

माहेश्वरी शक्तिरनाद्रिनिद्रा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥ ७५ ॥

अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।

चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥ ७६ ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।

स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं ब्रजन्ति ॥ ७७ ॥

अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तथासह देवाधिदेवः ।

आराधयन्ति स्म तमादिदेवं धनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥ ७८ ॥

भागतोऽहमिमं देवं ज्ञापयन्मोहमग्मयम् ॥ ५७ ॥

तस्माद्गुणद्विचिन्तनं ज्ञानं वैश्वानराधनम् । ज्ञानार्थं हि प्रयत्नेन धोत्स्यं दृश्यमेव च
एकः सर्वत्रगो ज्ञान्मा वैश्वानराधितिमात्रकः ।

धानन्दो निमंलो निन्य एतद्वै माहृष्यदर्शनम् ॥ ५८ ॥

एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुर्गीयते । एतर्क्षित्यममलं इन्द्रमथश्च घटितं ॥ ५९ ॥
भाधित्यं धनं परमं तद्विद्यास्तपसायत्नः ।

पर्यन्ति मा महामानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥ ५९ ॥

एतत्परमं ज्ञानं वैश्वानराधनम् । अहं हि येषो भगवान्मम मूर्त्तिरियं रिषा
बृहन्निवाचनानीह निद्वये कथितानि तु । तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गव
ज्ञानयोगरता शान्तामामेषशरणद्वृताः । ये हि मां भजन्ति रक्षा ध्यायन्ति सततं हि
मद्भक्तित्वात्परा निन्ययतय र्क्षाणकल्मषा । नाशायाम्यधिराक्षेपां घोरं संसारद्वन्द्वं
निर्मितं हि मया पूर्वं यत पाशुपतं शुभम् । शुभाद्गुणतमं सूक्ष्मं वेदस्मारं विमुक्तये
प्रशान्तं संयतमना भजन्मोद्गुह्यतचिप्रह । प्रथमयंरतो नशो यतं पाशुपतञ्जरेत् ॥
यद्दार्ढ्यापीतवसनं स्यादेकवसनोमुनिः । वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पाशुपतिश्लेषम्
एतपाशुपतोयोगं सेवनीयोमुमुषुभिः । तस्मिन्निन्यनेस्तुपटिर्निर्वाणैरितिहिधृतम्
धीनरगमयक्रोधा मन्मया मामुपाधिता । यद्दयोऽनेन योतेन पूता मद्वायमागतः ॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।

वेद्याद्विस्तृद्धानि मयंष कथितानि तु ॥ ६१ ॥

धामं पाशुपतं सोमं लाङ्गुलं च भंरवम् । असेव्यमेतत्कथितं वेद्याद्यं तथेतन्म ॥
वेदमूर्त्तिर्हं विद्या नान्यशास्त्राथवेदिभिः । ज्ञायते मन्मथरूपन्तु मुक्तया वैश्वानराधनम्
स्वापयथ्यमिदं मामं पूजयथ्व महेश्वरम् । ततोऽचिराद्दूरं ज्ञानमुत्पस्यति नसशय
प्रथि भक्तिश्च विपुला भयतामस्तु सत्तमा ।

ध्यातमात्रं हि साधिव्यं दास्यामि मुनिसत्तमा ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।

नचत्वारिंशोऽध्यायः] * ऋषीणांसर्मापेदेवीप्रादुर्भाववर्णनम् *

३३३

नेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्घयन्ति स्म शङ्कुम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः । समेत्य ते महान्मानो मुनयो ब्रह्मवादि- ३
विचक्रिरे ब्रह्मन्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥ ६८ ॥

कोऽपि स्यात्सर्वनावानां हेतुरीश्वर एव च । इत्येवं मन्यमानानां श्रयानमार्गावलम्बि-
धाचिरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥ ६९ ॥

कोटिसूर्यप्रताकाशा ज्वालामालासमावृता ।

स्वभानिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥ ७० ॥

तामन्वपश्यद्विरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।

प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति घेतत्परमस्य बीजम् ॥ ७१ ॥

अस्माकमेवा परमन्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।

पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥ ७२ ॥

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्

पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥ ७३ ॥

आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्रथम् ।

ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्वभौ जन्मविनाशहेतु ॥ ७४ ॥

इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।

माहेश्वरी शक्तिरनादिभिर्द्वा व्योमाभिधाना दिवि राजती च ॥ ७५ ॥

अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।

चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥ ७६ ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।

स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥ ७७ ॥

अन्तर्हितोऽभृद्भृगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेवः ।

भाराधयन्ति स्म तमादिदेवं घनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥ ७८ ॥

एतद्वा कथितं मयं द्वयद्वयस्य चेष्टितम् । देवगणघने पूर्वं पुराणेष्वप्यथा धृतम् ॥
यं पठच्छुण्वान्निव मुच्यते सवपातकैः ।

ध्यायेद्वा द्विजाऽऽस्तातस्स याति परमा गतिम् ॥ ८० ॥

इति श्रीकृष्णमहापुराणे उत्तरार्द्धे देवगणघनप्रदेशो नामैकान

१ । १ । रसोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेयपुषिष्टिरमम्बादनमदामाहात्मपरर्षानम्

मत्र ग्वाघ

एता पुण्यमता देवा देवगणघनसेविता । नमन्ताशाश्च विक्रयता तीर्थानामुत्तमा श्री
तस्या मण्डुवनदास्यमम्बापदयेन भावितम् । पुषिष्टिरायतुनुभ सवपादप्रणशानम्

पुषिष्टिर उवाच

धनान्त्रिचिधा धनान्त्रिमादा महामुने ।

महास्यञ्च प्रयागस्य तीर्थान्त्रिचिधानि च ॥ ३ ॥

नम्यदासवनाधानामुच्यतेदिभवनरिता । तस्यास्त्रिधातीर्थाहास्ययत्नमहसिसत्तम
मन्त्रस्य ग्वाघ

नमन्ता सरितां धृष्टा म्प्रेष्टाऽऽनिवृत्ता । नारदेष्वप्यनुनि स्यावराणि चरानि च
नमन्तास्त्रिमाहास्यपुत्रान् यमपाधृतम् । इदानीन्तन्मन्त्रायामिच्छुण्व्यश्चमताशुभम्

पुण्या कनकल गङ्गा कुदशैश्च सरस्वती । धाम या यदि वारणे पुण्या सवत्र नमदा
त्रिभिः शारस्वततर्षं नारादाद्यमुने जगम् । एष एवति एतद्व्यवहारस्य नामरम्

कलिङ्गुरगधर्षं पवनऽन्तरकण्ठक । पुण्या त्रियु त्रिलोकेषु स्मरणाया मतोरेना ॥ ३
मद्व्यमुरास्यया म्बुदध तत्राधत्ता । तत्रमन्त्रस्यैषु शक्येद्द सिद्धिं तु परमांस्त

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।

उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ११ ॥

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा । विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता
पष्टितीर्थमहन्नाणि पष्टिकोट्यस्तथैव च । पर्वतस्य समन्तान्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके
ब्रह्मचारी शुचिभूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ॥ १४ ॥

एवंशुद्धसमाचारोयस्तु प्राणान्परित्यजेत् । तस्यपुण्यफलं राजन्च्छृणुष्याद्यदितोऽनघ
शतवर्षसहस्राणिस्वर्गो मोदतिपाण्डव ! । अप्नरोगणसन्कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिचान्तिः
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः । क्रीडते दिव्यलोके तु विशुभैः सहमोदते
ततः स्वर्गात्पश्चिद्योराजा भवति धार्मिकः । गृह्णतु लभतेऽसौर्धनानारत्नसमन्वितम्
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैद्यैर्भूषितम् । शालेभ्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम्
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः । जीवेद्दृष्यशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः ॥
अग्निप्रवेशेऽथ जले वाथवानशने कृते । अनिर्वर्त्तिकागतिमन्तस्य पवनम्याम्यरे यथा
पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः । हृदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा । दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्यामहानदी । सरसाजुं नसञ्जानातिदूरं व्यवस्थिता
सा तु पुण्यामहाभागा त्रिपुलोकेषु विश्रुता । तत्रकोटिशतं साग्रं तीर्थानान्नुयुधिष्ठिर
तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।

नर्मदानोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमाङ्गतिम् ॥ २६ ॥

द्वितीयानुमहाभागा विशाल्यकरणीशुभा । तत्रतीर्थेनरः स्नात्वा विशलयो भवति क्षणात्
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे । ईश्वरेण पुराप्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया
अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ! । सर्वपापविशुद्धात्मारुद्रलोके सगच्छति
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेघफलं लभेत् । ये वसन्त्युत्तरं कूले रुद्रलोके वसन्ति ते
स्तरस्वत्याश्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ! । समं स्नानञ्च दानञ्च यथामेशङ्करोऽब्रवीत्

परित्यजति य प्राणान्पर्यन्तेऽमरकण्ठके । धर्मकोटिशतं नाम रद्रलोके महीयते ॥
 नमदाया जलं पुण्यं केनोर्मिसर्लीकृतम् । पवित्र शिरसा धृत्वा सर्वपापं प्रमुच्यते
 नर्मदा सर्वं पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी । महोरात्रोपवासं मुच्यते ब्रह्महत्याया
 जालेश्वरं तीर्थं वरं सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र गत्वा नियमयान्सर्वं कामाल्लभेत्
 चन्द्रमूर्ध्निपरागे घ गत्वा ह्यमरकण्ठकम् । अभ्येधं द्वादशगुणं पुण्यमाप्नोति मानव
 एव पुण्या गिरिवरो देवगन्धर्वसंघित । नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभित
 तत्र सन्निहितो राजन्द्वया सहमहेश्वर । प्रह्ला विष्णुस्तथा रुद्रो विद्यावरणो सह
 प्रदक्षिणन्नुय कुर्यात्पर्यन्तेऽमरकण्ठके । पौण्डराक्षस्य ब्रह्मस्य परमप्राप्नोति मानव
 कायेरी नाम विख्याता नदी कल्मषनाशिनी । तत्र स्नात्वा महादेवप्रदं येत्तृणमध्यमम्
 सङ्गमे नर्मदायास्तु रद्रलोके महीयते ॥ ४० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्धे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसवादे नर्मदासाहाय्य
 धर्षणनाम चत्वारिंशोऽध्याय

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदासाहाय्यर्षणनेनानातीर्थसाहाय्यर्षणम्

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा सर्वपापघनाशिनी । मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुना
 मुनिभिः सस्तुता ह्येवमदाप्रवरानदी । रुद्रगात्रादिनिष्क्रान्तालोकानाहितकाम्यया
 सर्वपापहरानित्यसर्वदेवनमस्त्वता । सस्तुता देवगन्धर्वेत्सरोभिस्तथैव च ॥ ३ ॥
 उत्तरे खेव कूले च तीर्थे त्रैलोक्यविभुते । नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते । ततो गच्छेत्त रात्रेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्नासहस्रफल्लभेत् । ततोऽङ्गारकेश्वरगच्छेन्नियतो नियताशन-

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! केदारं नाम पुण्यदम्

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

निष्फलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ॥ ८ ॥

तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! वाणतीर्थमनुत्तमम्

तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।

ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १० ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजर्निसहासनपतिर्भवेत् । शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूलेचैवतुदक्षिणे

स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्रशूलभेदइतिश्रुतिः

तत्रस्नात्वाघपीत्वाघगोसहस्रफलंलभेत् । उपोप्यरजनीमेकांस्नानं कृत्वायथाविधि

आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः । गोसहस्रफलम्प्राप्य विष्णुलोकंसगच्छति

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकेमहीयते

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्

यत्रतंतपः पूर्वनास्देन सुरर्षिणा । प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ॥१७॥

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।

यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ॥ १८ ॥

ऋणतीर्थं ततो गच्छेद्दृष्टान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् । वटेश्वरंततो गच्छेत्पर्याप्तं जन्मनःफलम्

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिघिनाशनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिलां यः प्रयच्छति ।

यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ २२ ॥

तावद्दर्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप ॥

अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः

ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।

ततो दीप्तिेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥ २५ ॥

त्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी । कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तुपूजयेत्
तत्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियो भवेत् । स्त्रीबलभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः
तद्विरागं समासाद्यतीर्थं शक्रस्यचिश्रुतम् । स्नातमात्रोनरस्तत्र गोसहस्रफलंलभेत्
सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।

स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥

सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् । त्रैलोक्यचिश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तत्रतीर्थं समाहितः । सर्वपापविशुद्धात्मासोमलोकंसगच्छति
अग्निवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थं नराधिप ! जले चानशनम्वापिनासौ मर्त्यो हि जायते
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।

स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ॥ ५१ ॥

ततो गच्छेत् राजेन्द्र! विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।

योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः । तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां ध्यपोहति । नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥

कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्घ्यद्धरिम् ।

तस्मिंस्तोर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ॥ ५५ ॥

कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत् राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥ ५६

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितृन् ।

पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ ५७ ॥

प्राजरूपाशिलातत्रतोयमध्येव्यवस्थिता । तस्मिंस्तुदापयेत्पिण्डान्वैशाखे तु समाहितः
स्नात्वासमाहितमना दम्भम्रात्सर्ववर्जितः । तृप्यन्ति पितरस्तस्य तावत्तिष्ठति मेदिनी
विश्वेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्

ततो गच्छेत् राजेन्द्र! लिङ्गो यत्र जनार्दनः ।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ६१ ॥

यत्र नारायणोद्देवो मुनीना भावितात्मनाम् ।

स्वात्मान दशयामास लिङ्ग तत्परमप्रदम् ॥ ६२ ॥

अकोलन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । स्नानदानञ्च तत्रैव ब्राह्मणानाञ्च भोजन
पिण्डप्रदानञ्च कृत प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।

त्रियम्बकेन तोयेन यश्चरु भ्रपयेदुद्विज ॥ ६४ ॥

अङ्गुलमूलेदद्याच्चपिण्डाञ्चैव यथाविधि । तारिता पितरस्नेनतृप्यन्त्याच-द्रताए
ततो गच्छेतराजेन्द्रनापसेध्वरमुत्तमम् । तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रप्राप्नुयात्तपस फल
शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । नास्ति तेनममतीर्थं नर्मदायां युधिष्ठि
दशनात्स्पर्शनात्सस्य स्नानद्वानात्तपोजपात् ।

होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम् ॥ ६८ ॥

योजनतस्मृतं क्षेत्र देवगन्धर्वसेवितम् । शुक्लतीर्थमिति श्रुत्वा त सर्वपापविनाशन
पादपायेण दृष्टेन ब्रह्महत्या व्यपोहति । देव्या सह सदा भगंस्तत्र तिष्ठति शङ्कर
हृष्णपशे चतुर्दश्या वैशाखे मासि सुव्रत । लोकात्स्वकाद्विनिर्गम्य तत्र सश्रितो ह
देवदानवगन्धर्वा सिद्धविद्याधरास्तथा । गणाध्याप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्गव
रञ्जिनं हि यथायत्र शुक्र भवति धारिणा । आजगम जनितां पाप शुक्लतीर्थे व्यपोहति
स्नान दान तप ध्यादनन्तं तसु दृश्यते । शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भविष्यति पावन
पूर्वे ययसि कर्माणि हृत्वा पापातिमानव । महोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति
कार्तिकस्य तु मासस्य हृष्णपशे चतुर्दशी । पुनेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेध्वरा
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीध्वराणां । तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पु
न तां गतिमपाप्नोति शुक्लतीर्थं तु यां लभेत् । शुक्लतीर्थं महातीर्थं गृयिषि सद्निपेक्षित
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्म न विन्दति । भयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विपुषे तथ
स्नात्वा तु सोपवास सन्विजितारमा समाहृत ।

दान दद्याद्याराति प्रीयेता हरिः शङ्करो ॥ ८० ॥

शुक्लतीर्थं प्रमायेण सर्वं भवति चाशयम् । भनाथं दुर्गं तत्र नाधकारतमथापि ॥

उदाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु । यच्चतद्रोमसंगत्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च
तावद्दर्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! यमतीर्थमनुत्तमम् ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर !

स्नानं कृत्वा नक्तमोजी न पश्येद्योनिःसङ्कटम् ॥ ८४ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र! एरण्डीतीर्थमुत्तमम् । संगमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः
ब्राह्मणं भोजयेदेकंकोटिर्भवतिभोजिताः । एरण्डीसङ्गमेस्नात्वाभक्तिभावात्तुरङ्गतः
मृत्तिकांशिरसिस्थाप्यश्वगाह्य चतजलम् । नर्मदोदकसंमिश्रंमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः
नरो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थकल्लोलकेश्वरम् । गङ्गाऽधतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८६ ॥

निदतीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाधरेत् । प्रीयते तत्र नन्दीशःसोमलोकेमहीयते
तो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं त्वनरकं शुभम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नरकं नैव पश्यति
तस्मिन्स्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थानि चिन्तिक्षिपेत् ।

रूपवाञ्छायते लोके धनभोगसमन्वितः ॥ ९२ ॥

ततो गच्छेत्त राजेन्द्रकपिलानीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्
शुभमासे तु सम्प्राप्तेषु चतुर्दश्यां विशेषतः । तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दत्त्वा दीपं घृतेन तु
घृतेन स्नापयेद्दुद्रं ततो चै श्रीफलं लभेत् । वण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां चै प्रदापयेत्
सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः । शिबतुल्यचलो भूत्वा शिबवत्क्रीडते सदा ॥

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।

स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥ ९७ ॥

सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके । गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो धृतिमान्भोगवान्भवेत् । अङ्गारकनवम्यां तु अमावास्यां तथैव च
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र! गणेश्वरमनुत्तमम्
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी । स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोकेमहीयते

पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यतेसंज्ञणत्रयात् । गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्त
अकामो वा संकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानघ' ।

आजन्मजनिते पापैर्मुच्यते नात्र सशय ॥ १०३ ॥

तस्य वै पश्चिमे भागे समीपेनातिदूरत । दशाश्वमेधिक तीर्थं त्रिषु लोकेषुविशु
उपोष्य रजनीमेका मासिभाद्रपदे शुभे । अमावास्या हर स्नाप्यपूजयेद्गोवृषभ्य
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । गत्वा रद्रपुर रथ रुद्रेण सह भो
सर्वत्र सर्वदिग्से स्नानं तत्र समाचरेत् । पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं

इतिश्रीकूर्ममहापुराणेउत्तरार्द्धेनर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनार्थं

कथत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र! भृगुतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवो भृगु पूर्वं रद्रमारुधयत्
दर्शनात्सम्य देवस्य सद्य पापा-प्रमुच्यते । एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाश
तत्रमन्वाद्यादियथास्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा । उपानर्होतथायुग्य देयमश्वकाञ्च

.....

यत्राराध्यत्रिशूलाद्ग्रीतम सिद्धिमाप्तवान् । तत्र स्नात्वापरो राजन्नुपवासपराय
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके मर्ह्यते ।

अथोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाभ्यर्त पदमाप्नुयान् ॥ ८ ॥

न जानन्ति नरा मृदाधिष्णोर्मायाविमोहिताः । धूर्तपापंततो गच्छेद्धीतं यत्र वृन्देण तु
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र! प्राणत्यागं करोति यः । घतुर्भुजस्त्रिनेत्रध्वहरतुल्यबलो भवेत्
वसेत्कन्यायुतं सार्धं शिवतुल्यपराक्रमः । कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड्भवेत्
ततो गच्छेत् राजेन्द्र! एतत्तीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते
ततो गच्छेत् राजेन्द्रयत्र सिद्धोजनार्दनः । घराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्
ततो गच्छेत् राजेन्द्र! चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् । पूर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड्भवेत् । देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! देवतैः सह मोदते । ततो गच्छेत् राजेन्द्र! शङ्खतीर्थमनुत्तमम्
यत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् । ततो गच्छेत् राजेन्द्र! तीर्थं पंतामहं शुभम्
यत्र दीयते ध्रादृचंसर्वतन्याक्षयं भवेत् । साचित्रीतीर्थमासाद्य स्तुप्राणान् परित्यजेत्
विभूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते । मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥ २०
तत्र स्नात्वा नरो राजप्रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत् राजेन्द्रकन्यातीर्थमनुत्तमम्
स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते । शुकुपक्षे तु तीयायां स्नानमात्रं समाचरेत्
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड्भवेत् । सर्गचिन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वानरो राजन्दुर्गतिं घनं पश्यति । अप्सरेशंततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्
क्रोडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः सह मोदते । ततो गच्छेत् राजेन्द्र! भारभृतिमनुत्तमम्
उपोषितो यजेतेशं रुद्रलोके महीयते । अस्मिन्तीर्थे मृतो राजन्गाणपत्यमघाप्नुयात्
कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम् । अश्वमेधाद्दृशुणं प्रचदन्ति मनीषिणः
वृषभं यः प्रयच्छेत् तत्र कुन्देन्दुसप्रभम् । नृगयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं सगच्छति
एतत्तीर्थं समासाद्य स्तुप्राणान् परित्यजेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं सगच्छति
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिन्तीर्थे नराधिप । हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं सगच्छति
परण्ड्या नर्मदायास्तु सङ्गमलोकविश्रुतम् । तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्
उपवासकृतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्रमुच्यते ब्रह्महृत्यया

ततो गच्छेत् राजेन्द्र ! नर्मदीदधिसङ्गमम् ।

जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥ ३३ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजधर्मदीदधिसङ्गमे । त्रिगुणज्ञाध्वमेधस्य फलभ्राप्नोति मन्त्र
ततो गच्छेत् राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते

तथोपघामं यः कृत्वा पश्येत् विमलेश्वरम् ।

सप्तजन्मवृत्तं पापं हित्वा याति शिवालयम् ॥ ३६ ॥

ततो गच्छेत् राजेन्द्र भलितीर्थमनुत्तमम् । उपोष्य रजनीमेका नियतोनियताया
वह्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यतेब्रह्महृत्यया ।

एतानि तत्र सङ्क्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च ॥ ३८ ॥

न शक्या विस्तराद्भक्तं सख्या तीर्थेषु पाण्डव !।

एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ॥ ३६ ॥

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा महादेवस्य बल्लभा । मनसा संस्मरेद्यस्तुनर्मदा धै युधिष्ठिर
चान्द्रायणशत साग्रं लभते नात्र सशयः ।

अश्रद्धधधानाः पुरुषा नास्तिवर्थं घोरमाधिताः ॥ ४१ ॥

पतन्ति नरके घोर इत्याह परमेश्वरः । नर्मदा सैधने नित्यं स्पर्शं देवो महेश्वर
तेन पुण्या नदी श्रेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ ४२ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये नानातीर्थमाहात्म्यवर्णननाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सुत उवाच

इदं ब्रह्मलोकपवित्र्यान्-तीर्थं नैमिषमुत्तमम् । महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्
महादेवंद्रिदृक्षणासृषीणां परमेष्ठिना । ब्रह्मणा निर्मितंस्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा ।

भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं फमलोद्भवम् ॥ ३ ॥

समेत्यसर्ववरदं चतुर्मुनिं चतुर्मुग्गम् । पृच्छन्तिप्रणिपत्येनंविश्वकर्माणमध्ययम्
पद्कुलीया ऊचुः

भगवन्देवमीशानं तमेवंकं कपर्दिनम् । केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव! नमस्तव
ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासध्वंवाङ्मनोदोषवर्जिताः । देशञ्चवःप्रवक्ष्यामियन्मिन्देशेचरिष्यथ
मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संस्पृष्ट्वा तानुवाच ह । क्षितमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मान्निगम्
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः । ततो मुमोच तच्चक्रं नेचतत्समनुव्रजन्
तस्य धै व्रजतः क्षिप्रं यत्रनेमिर्शीर्येत । नैमिषं तत् स्मृतंनान्नापुण्यं सर्वत्रपूजितम्
सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम् । स्थानं भगवतः शम्भोरितर्त्रैमिषमुत्तमम्
अत्र देवाः सगन्धर्वाःसयक्षोरगराक्षसाः । तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरेप्रवरान्वरान्
इमं देशं समाश्रित्य पद्कुलीयाः ममाहिताः ।

सत्रेणाऽऽराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥ १२ ॥

अत्रदानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत् । एकैकं नाशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा
अत्र पूर्वं स भगवानृषीणांसत्रमासताम । स धै प्रोवाचब्रह्माण्डपुराणं ब्रह्मभाषितम्
अत्र देवो महादेवोरुद्राण्याकिल विश्वदृक् । रमतेऽद्यापिभगवान्प्रमथैः परिचारितः

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातय ।

ब्रह्मलोक गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥ १६ ॥

अन्यथा तार्यप्रवरं जाप्येश्वरमितिभ्रुतम् । जर्नाप रुद्रमनिश यत्रनन्दी महागण
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सहस्रिणाकभृक् । ददावा मसमान ध मृत्युवञ्जनमेव च
अमृदपि न धर्मात्मा शिलादो नाम धमधिन् ।

आराधयन्महादेव प्रसादायं वृषध्वनम् ॥ १६ ॥

तन्वयपसहस्रान्तेतप्यमानस्य विश्वभृक् । शर्यं मोमोगणपुतोवरदोऽस्मीयभात
न धने धरमीशान धरेण्यं गिरिजापतिम् ।

अयोनिज मृत्युर्दान याचे पुत्र त्वया ममम् ॥ २१ ॥

तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सटमहेश्वर । पश्यतस्तस्यधिप्रर्वरतन्धान गतोहर
तनो युयोज ता भूमिशिलादोधमचित्तम । अकपलाङ्गलेनोर्वी भित्वादृश्यतशोभन
संचलकोऽनलप्रख्य कुमारं प्रहसन्निय ।

रूपलाघण्यमम्पप्रस्तेजसा भासयन्तिश ॥ २४ ॥

कुमारतुटयोऽप्रतिमोमेवगम्भीरया गिरा । शिलाद् तात तातेतिप्राह नन्दी पुनपुन
तं दृष्ट्वा नन्दन जातं शिलाद् परियन्चने ।

मुर्नाता दशयामास तत्राभ्रमनिवासिनाम् ॥ २६ ॥

जातकम्मादिका सर्वा क्रियास्तस्य अकार ह ।

उपनीय यथाशास्त्र वेदमभ्यापयत् स्वयम् ॥ २७ ॥

अर्धातवेदो भगवान् नन्दी मनिमनुत्तमाम् । धत्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेप्ये मृत्युमिव प्रभुम्
स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्र अधुधयान्वित ।

जनाप रुद्रमनिश महेशासक्तमानस ॥ २६ ॥

तस्य कोट्याञ्च पूजाया शङ्करोभक्तवसल ।

आगत सर्वसगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥ ३० ॥

अत्रोपनरपेश जपेयं कोटिर्माेश्वरम् । भवदाह महादेव देर्हाति वरमेत्वम्

एवमस्त्विति सम्प्रोज्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।

जजाप कोटि भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥ ३२ ॥

द्वितीयायाञ्चकोट्यां वैष्णवायाश्चतुर्थजः । आगत्यचरदोऽस्मीतिप्राहभूतगणैर्बृत्तः
तृतीयाञ्जमुमिच्छामि कोटि भूयोऽपि शङ्कर !

तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या घान्तरधीयत ॥ ३३ ॥

कोटित्रयेऽथसम्पूर्णे देवः प्रीतमनाभृशम् । आगत्यचरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्बृत्तः
जपेयं कोटिमन्यां धं भूयोऽपि तवतेजसा । इत्युक्तेभगवानाह न जमव्यं त्वयापुनः
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वं गतः सदा । महागणपतिर्द्वेष्याः पुत्रो भवमहेश्वरः
योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः ।

सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वयज्ञमयो हितः ॥ ३८ ॥

ज्ञानं तन्नामकं दिव्यं हस्तामलकसञ्जितम् ।

आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ ३९ ॥

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहय शङ्करः । अभिपंकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक् ।

मरुताञ्च शुभां कन्यां स्वयमेति च विष्णुताम् ॥ ४१ ॥

एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः । यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते
इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यच्च ताथप्रवरं जप्येश्वरसमीपत । नास्त्रा पञ्चन पुण्य सवपापप्रणाशनम् ।
त्रिरात्रमुपितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम् । सवपापविशुद्धात्मा रद्रलोके महीयत
अन्यच्च तीर्थप्रवर शक्रस्यामिततेजस । महाभैरवमित्युक्त महापातकनाशनम् ।
तीर्थानाञ्च पर तीर्थं वितस्ता परमा रदी । सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेवगिरी द्रजा
तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजस । यत्र देवाधिदेवेन शक्रार्थे पूजितो भव
पिण्डदानादिक तत्र प्रेयानन्दसुखप्रदम् । मृतस्तप्राथ नियमाहुर्ब्रह्मलोके महीयते
कायाधरोहण नाम महादेवालयशुभम् । यत्र माहेश्वराधर्मांमुनिभि सम्प्रवर्तिता

श्राद्ध दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षय ।

परित्यजति य प्राणान्द्रद्रलोकं स गच्छति ॥ ८ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवर कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।

तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणह्लोकात् प्राप्नोति शाश्वतान् ॥ ९ ॥

जामदग्न्यस्य चशुभ रामस्याङ्घ्रिद्वयमण । तत्रस्नान्वा तीर्थवरेणोसहस्रफल लभेत्
महाकालमितिहयातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।

गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

गुह्याद्गुह्यतमतीर्थं नकुलाभ्वरमुत्तमम् । तत्र सन्निहित धीमात् भगवाभ्रकुलाभ्वर
दिमवच्छिन्नरस्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने । दृष्या सहमहादेवो नित्यं शिष्यैश्च सम्भृत

तत्र स्नात्वा महादध पूजयित्वा वृषध्वजम् ।

सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्जानमाप्नुयान् ॥ १४ ॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्नान पुण्यतमं शुभम् ।

भीमेश्वरमितिल्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ॥ १५ ॥

तथान्यश्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः । तत्रस्नात्वाद्यपीत्वाद्यमुच्यतेऽहहृत्पया
सर्वेषामपि सैतेपांतीर्थानां परमापुरी । नाम्नाचारणसीदिध्याकोटिकोट्ययुताधिका
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं सोमयात्विह । नान्यत्रलभते मुक्तियोंनेनाप्येकजन्मना
एतेप्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम् । गत्वा सद्गालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि

यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि ।

न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥ २० ॥

प्रायश्चित्ता च विधुरस्तथायावरांगृही । प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवां यश्चान्यस्तादृशोजनः

सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तं गतिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

ऋणानित्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वातीर्थसेवनम् । विधायवृत्तिपुत्राणां भार्यातेषु विधाय च
प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विधप्रलयवर्णनम्

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम् । कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छ मुनयः प्रभुम् ॥ १ ॥

मुनय ऊचुः

कथितो भवता धर्मो मोक्षज्ञानसविस्तरम् । लोकानां सर्गविस्तारो वंशो मन्वन्तराणि च
इदानीं देववेश! प्रलयं वक्तुमर्हसि । भूतानां भूतभव्येश! यथा पूर्वं त्वयोदितम् ॥

सुत उवाच

धत्वातेषां तदावाक्यं भगवात् कूर्मरूपधृक् । ध्याजहारमहायोगीभूतानां प्रतिसञ्चर

कूर्मं उवाच

नि यो नैमित्तिकश्चैव प्राटृताऽप्यन्तिकस्तथा ।

घतुर्द्धाऽय पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चर ॥ ५ ॥

योऽयसंद्दश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह । नित्यं सङ्कीर्त्यते नानामुनिभिः प्रतिसञ्चर

प्रदानैमित्तिको नाम क्वपान्ते यो भविष्यति ।

त्रैलोकस्यास्य कथितं प्रतिसर्गो मनीषिभिः ॥ ७ ॥

महदाद्यं विशेषान्तं यदास्वयाति सक्षयम् । प्राकृतं प्रतिसर्गाऽयं प्रोच्यते कालचिन्तनं

ज्ञानादात्यन्तिकं प्रोक्तं योगिनः परमात्मनि ।

प्रलयं प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरं द्विजैः ॥ ६ ॥

आत्यन्तिकस्तु कथितं प्रलयो ज्ञानसाधनं । नैमित्तिकमिदानीं कथयिष्ये समासः

घतुर्व्यूहसद्वान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे । स्वात्मसंस्थां प्रजाकर्तुं प्रतिपेक्ष्य प्रजापति

ततोऽभयत्वनानृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी । भूतक्षयकरी घोरा सार्धं भूतक्षयद्व

ततो यान्यल्पसाराणि सस्त्वानि पृथिवीपते ॥

तानि घात्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ १३ ॥

सप्तशिरसो भून्वासमुत्तिष्ठन्दिवाकरः । असह्यरश्मिभक्तपिबन्नभोगमस्तिनि

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे ।

तनाऽऽहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्या भगन्द्युत ॥ ११ ॥

सप्तस्ते रश्मयः सप्त शोपयिन्वा घतुर्दिशम् । घतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनो य

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्ध्वध्वञ्जाश्च रुचरश्मिभिः ।

दीप्यन्त भास्करा सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः ॥ १७ ॥

ते सूर्याधारिणा दीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः । ख समावृत्य तिष्ठन्ति प्रवहन्तो घसुन्धरा

सप्तस्नेहा प्रतापेन दद्यामाना घसुन्धरा । साद्रिनघणघदीपा नि स्नेहा सम्प्रपद्यं

अनलोके घर्त्तमानान्तापसायोगचक्षुषा । अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो चिभुः
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात ।

मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ नमिध्रो ह्यहम् ॥ ५७ ॥

प्रोक्षणीयं स्वयञ्जैवसोमोवनमथास्म्यहम् । संघर्त्तकोमहानात्मा पवित्रं परमंथशः
मैधाप्यहं प्रभुर्गानागोपतिर्ग्राह्यणोमुख्यम् । अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतांवरः

हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्तिः सनातनः ।

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्वीजमधामृतम् ॥ ६० ॥

माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।

आदित्यवर्णा भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्तिः ।

तं पश्यन्ते यतयो योगनिष्ठा श्लात्वात्मानं मम तत्त्वं व्रजन्ति ॥ ६१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तगर्द्धे चतुर्विंशप्रलयवर्णनंतामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पट्टचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

इन्द्रगोपनिमा केचिद्भ्रितालनिमास्तथा । इन्द्रवापनिमा केचितुत्तिष्ठन्तिन्नदिं
 केचित्पवतमङ्काशा केचिद्भ्रजकुलोपमा । कृटाङ्गारनिमाश्चान्ये केचिन्मीनुकुलैश्च
 चद्रुपा घोररूपा घोरस्वग्निनादिन । तदा जलधरा सर्वे पूरयन्ति नमस्ततन
 तनस्ते जलदा घोरा राविणो भास्कारा मजा ।

सप्तधा मधृतात्मान तमग्नि शमयन्त्युत (शमयेत्पुन) ॥ ४१ ॥

ततस्ते जलदा धर्ममुञ्जन्ताह महोद्यवन् । सुधोरमशिय धर्मं नाशयन्ति च पव
 त्रतिवृद्धस्तदात्यर्थमम्मसा पूर्यते जगत् ।

अद्विस्नेऽम्भोऽमिभूतत्वात्तदग्निं प्रविशरयण ॥ ४३ ॥

नष्टे चाग्नीं धर्मशत पयोदा क्षयसम्भवा । गुणयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिभ्रवे
 धाराभि पूरयन्ताद्दे मोद्यमानाः स्वयम्भुवा । अत्यन्तसलिलौघास्तु विलासमहोर्
 साद्रिद्रापा तनपृथ्वीजले सञ्जघद्यतेशै । आदित्यरश्मिभिपातजलमग्नेपुतिष्ठं
 पुनपतितनदुर्मूर्मापूयन्नेतनचाणवा । तनसमुद्रास्वावेलामतिक्रान्तास्तुष्ट्या
 पर्वताश्च विलायन्ते महा चापसु निमज्जति । तस्मिन्नेकाणं च घोरे नष्टे स्यावत्तदु
 योगनिद्रासमाप्थाय शते देव प्रजापति । चतुषुं गसहस्रान्तं कल्पमाहुर्मर्तापि
 धाराहो वसन्ते कल्पो यस्य विस्तर ईरित ।

असख्यातान्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवा मका ॥ ५० ॥

कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालघिन्तकैः ।

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥ ५१ ॥

तानसेषु हरस्योक्तं राजसेषुप्रजापते । योयं प्रवसन्ते कल्पो धाराह सात्त्विकोम
 अन्ये च सात्त्विका कल्पा मम तेषु परिग्रह ।

ध्यान तपस्तपा ज्ञान लब्ध्वा ते योगिन परम् ॥ ५३ ॥

भाराध्य तच्च गिरिश यान्ति तत्परमम्पदम् ।

सौऽहं तत्त्वं समाप्थाय मार्था मायामयां (र्थी) स्वयम् ॥ ५४ ॥

एकान्तरेजगत्यस्मिन्योगनिद्राप्रजामि नु । मा धरयन्तिमहात्मानसप्तकालेमहर्षय

स्वापिका मोहिनी शक्तिनारायण इति श्रुतिः ।

हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदृसद्वात्मकम् ॥ २६ ॥

सृजेदशोपं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ।

दुर्बलाः सर्वगाः शान्ताः स्वान्मन्येव व्यवस्थिताः ।

शक्तयो ब्रह्मविष्णुर्वाशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २७ ॥

सर्वेश्वराः सर्वयन्त्राःशाश्वतानन्तभोगिनः । एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुम्प्रधानेश्वरात्मकम्

अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः ।

इत्येते विचित्रैर्यज्ञैः शक्त्यादित्यादयोऽमराः ।

एकैकमथाः सहस्राणि देवानां च शतानि च ॥ २८ ॥

कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा ।

तां शक्तिं स्वयमान्धाय म्चयं देवो महेश्वरः ॥ ३० ॥

रोगि विविधान्देहान्दृश्यते चैव लीलया । इत्येते सर्वयज्ञेषु प्राणैर्वेदेवादिभिः

विक्रामप्रदो रुद्र इत्येषा चंद्रिका श्रुतिः । सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

अन्येनस्मृता देवाःशक्तयःपरमात्मनः । आभ्यःपरस्ताद्भगवान् परमात्मासनातनः

नियते सर्वमायात्माशूलपाणिर्महेश्वरः । एकमेके चदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ॥ ३४ ॥

न्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः । ब्रह्मविष्णुश्चिखरुणाः सर्वेदेवास्तथर्षयः ॥

एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदान्तेपरिकीर्त्तिताः । यंत्रभेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्

तत्तद्रूपं समाख्यायप्रददातिफलं शिवः । तन्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्

आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम् । किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्

आराधयेह गिन्शिं सगुणं वाथ निर्गुणम् ।

मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ॥ ३६ ॥

आरुरुक्षुस्तु सगुणं पुजयेत्परमेश्वरम् । पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्

र मं ... अन्तयेद्देविकीश्रुतिः । एषयोगःसमुद्दृष्टः सवीजोमुनिपुङ्गवाः

। अथ चेदसमर्थः स्वात्तत्रापि मुनिपुङ्गवाः

दग्धेष्वशेषदेवेषु देवीगिरिवरात्मजा । एषा भामाक्षिणीशम्भोस्तितृप्तैर्बुद्धिकाभूर्ण
शिरःकपालैर्देवानां हृतस्त्रय्यरभूषण । भादित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन्त्योममण्डल
सहस्रनयनो देव सहस्राक्ष इतीश्वरः । सहस्रहस्तधरण सहस्राक्षिर्माहाभुज
दृष्टाकरालघदन प्रदीप्तानललोचन । त्रिशूलवृत्तिघसनो योगमैश्वरमास्थित
पीत्वा तदपरमानन्द प्रभूतममृत स्वयम् । करोति ताण्डवं देवीमालीक्यपरम
पीत्वा नृत्यामृतदेवीभक्तुः . परममङ्गलम् । योगमास्थाय देवस्य देहमायातिर्दृति

स भुक्त्वा ताण्डवरस स्वेच्छयैव पिनाकधृक् ।

ज्योति स्वभाय भगवान्द्रव्या ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ १३ ॥

सस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णु पिनाकधृक् ।

गुणैरशेषं पृथिवीं विलय याति धारिणु ॥ १४ ॥

स धारितस्त्व सगुण प्रसते हृद्यदाहन ।

तत्र स्वगुणसमुक्त धार्यो संयाति सडक्षयम् ॥ १५ ॥

आकाश सगुणोवायु प्रलययातिविश्वभृत् । भूतादीं चतथाकाशोलीयतेगुणम

इन्द्रियाणि च सचाणि तैजसे यान्ति संक्षयम् ।

षेकारिको देवगणैः प्रलय याति सत्तमा ॥ १७ ॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महति प्रलयेवनेत् । महान्नमेभि सहितब्रह्माणममितीज

अव्यक्तजगतो योनि संहरेदकमध्ययम् । एव, सहस्रय भूतानि तत्त्वानि च महैः

वियोजयति चान्योऽन्यप्रधान पुरुषमदगम् । प्रधानेषु सौरजयोरेव महारह

महेश्वरेच्छाजितो न स्वयं . विद्यते लय । गुणसाम्यं तद्व्यक्तं प्रकृतिपरिण

प्रधान जगती योनिमायातस्वमचेतनम् ।

कूटस्थश्चिन्मयो हात्मा वेधल पञ्चविंशक ॥ २२ ॥

गीयते मुनिभिः साक्षा महानेषपितामह । एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरी

प्रधानाय विशेषान्तं देहेऽद्र इतिभूति । योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानचिन्मस्तचेत

आत्यन्तिकश्चैव लय विदधार्ताह राडूर । इत्येव भगवात्पुनः संहारं कुरुते ।

नमो गूढशरीराय 'निर्गुणाय नमोऽस्तुते । पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे
नमः साङ्ख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तुते ।

धर्मध्या (ज्ञा) नाभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते (नमोनमः) ॥५६

नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च । पराचराणां प्रभवे वेदवेद्यायते नमः ॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे । नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वैधसे नमः
नमोऽस्तुते घराहाय नारसिंहाय ते नमः । घामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः
स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने । नमो योगाधिगम्याय योगिने योगद्रायिने
देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनायते । भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम् ॥

अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।

श्रुताश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च ॥ ६५ ॥

सर्गश्चप्रतिसर्गश्चब्रह्माण्डस्यास्यविस्तरः । त्वंहिसर्वजगत्साक्षीविश्वोनारायणःपरः
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ।

सूत उवाच

एतद्दः कथितं चिप्रा भोगमोक्षप्रदायकम् ॥ ६७ ॥

कौर्मपुराणमखिलंयज्जगादगदाधरः । अस्मिन्पुराणेलक्ष्म्यास्तुसगभवःकथितःपुरा
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः । प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्चवृत्तयः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावलक्षणं शुभम् । पितामहस्यविष्णोश्चमहेशस्यचर्धामतः
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः । भक्तानालक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्चभोजनम्
वर्णाश्रमाणांकथितं यथावदिह लक्षणम् । आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डाचरणसप्तकम्
हिरण्यगर्भः सर्गश्चकीर्त्तितोमुनिपुङ्गवाः । कालसदस्याप्रकथनंमाहात्म्यञ्चेश्वरस्यच

ततो धाञ्चग्रिंशुत्रादीन् पूजयेद्भक्तिसयुत ।
 तस्मात्सर्वांन् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ४३ ॥
 आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसस्थितम् ।
 भक्तियोगसमायुक्तं स्वध (क) मनिरत शुचि ॥ ४४ ॥
 तादृश रूपमास्थाय आसाद्यात्यन्तिकं शिवम् ।
 एव योग समुद्दिष्टं सवीजोऽत्यन्तभावन ॥ ४५ ॥
 यथाविधि प्रकुर्वाण प्राप्तुयाद्देश्वरम्पदम् ।
 द्वे सान्ये भावने शुद्धे प्रायुक्ते भवतामिह ॥ ४६ ॥

अथापि कथितो योगो निर्बीजश्चसवीजक । ज्ञान तदुक्तनिर्बीजपूर्वं हिमयताम्
 विष्णु र्द्र विरश्चि (ज्ञ) च सचाजे साधयेद् बुध ॥

अथ धाञ्चादिकान्देवान्तत्परो नियतात्मवान् ॥ ४८ ॥

पूजयेत्पुत्र्यं विष्णुं चतुर्भुजं हरिम् । अनादिनिघनं दध धासुदेव सनातन
 नारायणं जगद्योनिमाकाश परम्पदम् । तल्लिङ्गधारी नियतं यद्युक्तस्तदुपाश्रितम्
 एष एष विधिब्राह्मे भावने सान्तिमे मत । इत्येतत्कथितं ज्ञान भावनासधयम्
 इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मयापुरा । अत्यन्तमकमेवेद् चेतनाचतन जगत्
 तदीश्वर परं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्ममयं जगत् ।

सुत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्गिरराम जनाङ्गनम्
 तृप्तुर्बुमुनयो विष्णु शु (श) मेण सह माधवम् ॥ ५३ ॥

मुनय ऊचुः

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने । नारायणाय विश्वाय धासुदेवाय ते न
 नमोनमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनम । माधवाय च ते नित्यं नमो यज्ञेश्वराय
 सहस्रशिरसं नुभ्यं क्षत्रशाशाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥
 ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने । आनन्दाय नमस्तुभ्यमायातीताय ते न

नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गाचनं तथा ।

मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ॥ ६६ ॥

लिङ्गाचननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ।

याथात्म्यकथनञ्चाथ लिङ्गाद्धं भीतिरेव च ॥ १०० ॥

ब्रह्मचिण्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः ।

मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोदुर्ध्वतो ह्यथः ॥ १०१ ॥

संस्तवोद्देवदेवस्यप्रसादःपरमेष्ठिनः । अन्तर्दानञ्च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततःपरम्

कीर्त्तिता चाऽनिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः ।

कृष्णस्य गमने बुद्धिर्भ्रूषीणमागतस्तथा ॥ १०२ ॥

अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः । गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्

कृष्णद्वैपायनस्योक्त्युगन्धर्माःसनातनाः । अनुग्रहोऽथपार्थस्य वाराणस्यांगतिस्ततः

पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।

वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ॥ १०६ ॥

व्यासस्य तीर्थयात्राच देव्याश्चैवाथ दर्शनम् । उद्वासनञ्च कथितं वरदानं तथैव च ॥

प्रयागस्यचमाहात्म्यं क्षेत्राणामथकीर्त्तनम् । फलञ्चविपुलंविप्रामार्कण्डेयस्यनिर्गमः

भुवनानांस्वरूपञ्चज्योतिषाञ्चनिवेशनम् । कीर्त्तितश्चापिवर्षाणां नदीनाञ्चैवनिर्णयः

पर्वतानाञ्चकथनंस्थानानिच दिवोकसाम् । द्वीपानांप्रविभागश्चश्वेतद्वीपोपवर्णनम्

शयनं केशवस्याथ माहात्म्यञ्चमहात्मनः । मन्वन्तराणांकथनंविण्णोर्माहात्म्यमेवच

वेदशाखाप्रणयनं व्यासानांकथनं ततः । अवेदस्यच वेदस्य कथितं मुनिपुङ्गवाः ॥

योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाञ्चाथ कीर्त्तनम् ।

गीताञ्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः ॥ ११३ ॥

सुपर्णामाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः । कपालित्वञ्चरुद्रस्य भिक्षाचरणमेवच

पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानाञ्च विनिर्णयः ।

तथा मङ्गलकस्याथ निष्कर्णः कीर्त्तितो द्विजाः ॥ १२५ ॥

दिव्यद्रुषिप्रदानञ्च ब्रह्मण परमष्टित । सस्तथो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥३८॥
 प्रसादो गिरिशस्याथ वरदान तथैव च । समघादे विष्णुनासाङ्गे शङ्कुरस्य महामरु-
 वरदान तथा पूर्वमन्तर्दानं पिनाकिन । धधञ्च कथितो विष्णो मधुकैभयो पुत्रा ।
 अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् । एकीभाषञ्च देवेन ब्रह्मणाकथितपुत्र-
 विमोहो ब्रह्मणश्चाथ सवानान्तु हरेस्तत । तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य वीरत ।

प्रादुर्भावो महेशस्य कलादात्कथितस्तत ।

रुद्राणां कथिता सुषिब्रह्मण प्रतिदेधनम् ॥ ८३ ॥

भूतिञ्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकी । अन्तर्दानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डज्ञस्य च
 दशन देवदेवस्य नरनाराशरारता । देव्या विभागकथन देवदेवात्पिनाकिन ॥८५॥
 देव्याश्च पञ्चात्कथित दक्षपुत्रात्त्वमव च । हिमचद्रुदुहितृत्वञ्चदेव्या याथात्म्यमेव
 दशन दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षदशनम् । नास्त्रा सहस्रकथित पित्राहिमवतात्त्वय
 उपदेशो महादेव्या वरदान तथैव च । भृग्यादीना प्रजासर्गो राजा वशस्य विन्त
 प्राचतसत्य दक्षस्य दक्षयज्ञविमद्वनम् । दधीचस्य च यज्ञस्य विधाद कथितस्त-
 ततश्च शाय कथितो मुनीना मुनिपुङ्गवा ।

रुद्रागति प्रसादश्च अन्तर्दानं पिनाकिन ॥ ९० ॥

पिनामहोपदेश स्यात्कीर्यतर्वे रणाय तु । दक्षस्यैवप्रजासर्ग कश्यपस्यमहाम-
 हिरण्यकशिपोर्नाशोहिरण्याक्षवधस्तथा । ततश्चशाप कथितो देवदारवर्नोक्त्स
 निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् । प्रहादतिग्रहश्चाथ बले स्यमन्तवध-
 बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शान्ति ।

ऋषाणां वंशविस्तारो राज्ञा वशा प्रकीर्त्तिता ॥ ९४ ॥

वसुदेवात्ततो विष्णोरेरपतिः स्वैच्छया हरे । दशनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणस-
 वरत्नामो महादेव दृष्ट्वासायत्रिलोचनम् । कैलासगमनञ्चाथनिवासस्तस्मैशाङ्ग-
 ततश्च कथ्यतेमातिद्वारवत्यानिवासिनाम् । रक्षणगरुडेनाथ जित्वाशबूम्भहाय-
 नात्दागमनञ्चैव यात्रार्थैव गरुत्मत । ततश्च कृष्णागमन मुनीनाम्राधमस्तत ॥

ज्ञान्ते तु चिदोपेण सर्वदोषविशोधनम् । मुमुक्षुणामिदं शास्त्रमध्येतद्यं चिदोपतः

श्रोतव्यञ्जाय मन्तव्यं वेदार्थपरिसृष्टणम् ।

ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्वक्तिसंयुतान् ॥ १३६ ॥

सर्वपापचिन्मूक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।

योऽश्रद्धधाने पुरुषे दद्याद्वाधार्मिके तथा ॥ १३७ ॥

सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोनिव्रजःश्रधः । नमस्त्यक्तारिविष्णुं जगद्योतिसनातनम्

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णहृत्पायनं तथा । इत्याजा देवदेवस्य विष्णोरमितनेजसः

पाराशर्यस्यविप्रर्वैर्व्यासस्यच महात्मनः । श्रुत्वा नारायणाद्देवादेरदो भगवानृषिः

गौतमाय ददौपूवं तस्मान्चैव पराशरः । पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारं मुनीश्वराः

मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमौक्षदम् ।

ब्रह्मणा कथितं पूवं सनकाय च धीमते ॥ १४२ ॥

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् । सनकादृभगवान् साक्षाद्देवलो योगचित्तमः

अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् । सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवर्तीमुतः

पतत्पुराणंपरमं व्यासः सर्वार्थसञ्जयम् । तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्

ऊन्निवान्चै भवद्विश्च दातव्यं धार्मिके जने । तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये

पाराशर्याय शान्ताय नमोनारायणान्मने । तस्मात्सञ्जायने कृन्मनं यत्रचैवप्रलीयने

नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धप्रतिसर्गवर्णनं नाम

चारिशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

तमाप्तैपात्राह्नीसंहिता

शिवार्पणमस्तु ।

चघक्ष कथितो विप्रा कालस्यचसमासत । देवदारुयने शम्भो प्रवेशो माधवस्त
दशन पटकुलीयाना देवदेवस्य धीमत । धरदानञ्च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तित
नैमित्तिकश्च कथित प्रतिसर्गस्तत परम् ।

प्राकृत प्रलयश्चोद्भूयं सबाजो योग एव च ॥ ११८ ॥

एव ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेपं कात्तयेत्त य । सर्वपापविनिमुक्तो ब्रह्मलोके महीय
एवमुक्त्वा श्रिय देवामादाय पुरुषोत्तम । सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्त
देवाश्चसर्वमुनय स्वानिस्थानानिभेजिरे । प्रणम्यपुरुषविष्णु गृहीत्वा ह्यमृतद्विज
एतत्पुराणं सकलं भाषितकूर्मरूपिणा । साक्षाद्देवाधिदेवेनविष्णुना विभ्वयोनित
य पठसतत विप्रा नियमेन समासत । सघपापविनिमुक्तो ब्रह्मलोके महीयने ।

लिखित्वा चैव यो दद्याद्दशाब्दे कार्तिकेऽपि वा ।

विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ॥ १२४ ॥

सघपापविनिमुक्तं सघभयसमन्वितम् ।

भुक्त्वा तु विपुलान्मन्थीं भोगात्दिव्यान् सुशोभनान् ॥ १२५ ॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणा जायत कुले ।

पूर्वसंस्कारमाहाभ्याद्ब्रह्म विद्यामवाप्नुयात् ॥ १२६ ॥

पठित्वाध्यायमेवैकसर्वपापं प्रमुच्यते । योऽर्थंविचारयेत्सम्यक्प्राप्नोतिपरमम्परम्
अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्यणिपथणि । श्रोतव्यञ्च द्विजध्रेष्ठा महापातकनाशनम्
एकतन्तु पुराणानि सैतिहासानिऋत्स्मश । एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते ॥
एतत्पुराणं मुक्त्वैकं नान्यत्साधनकम्परम् । यथावदत्र मगधान्देवो नारायणो हरि
कात्यतहियथा विष्णुनतथान्येषुमुव्रता । प्राङ्गीर्षीराणिकाचेयसहितापापनाशनी
अत्र तत्परमं ब्रह्म कात्यत हि यथायतम् । तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परन्तप ॥
ज्ञानानां परमं ज्ञानं धनानां परमं धनम् । नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं हृष्यलस्य च सन्निधी
योऽधीनं च यो मोहात्मा स याति नरवान् बहून् ।

भ्रातृ वा दधिके कार्ये ध्रावणाय द्विजातिभिः ॥ १२४ ॥

ज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् । मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः
श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिवृंहणम् ।

ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ॥ १३६ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।

योऽश्रद्धधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ॥ १३७ ॥

सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोर्निव्रजःत्यधः । नमस्कृत्यहरिचिष्णुं जगद्योर्निसनातनम्

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा । इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः

पाराशर्यस्यविप्रर्षेर्व्यासस्यच महात्मनः । श्रुत्वा नारायणाद्वैवान्नारदो भगवानृषिः

गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः । पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः

मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ॥ १४२ ॥

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् । सनकाद्भगवान् साक्षाद्वैवलो योगवित्तमः

अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् । सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवर्तासुतः

एतत्पुराणंपरमं व्यासः सर्वार्थसञ्चयम् । तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्

ऊचिवान्चै भवद्विश्च दातव्यं धार्मिके जने । तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये

पाराशर्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने । तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रलीयते

नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धप्रतिसर्गवर्णनं नाम

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥



सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

